हिन्दू विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला।

प्रारम्भिक

प्रांगारिक-रसायन

फूलदेव सहाय वर्मा

एम० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०,

प्रोफेसर ऑफ ऑर्गेनिक केमिस्ट्री

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स

बनारस।

प्रथम संस्करण]　　१९४८　　[मूल्य ३॥)

प्रस्तावना

भारतीय विश्वविद्यालयों की मध्यमा कक्षा के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। प्रांगारिक रसायन की यह प्रारम्भिक पुस्तक है। इस कारण विषयों का प्रतिपादन जितना सरल ढङ्ग से हो सकता है करने की कोशिश की गई है। हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में आज बहुत कुछ वाद-विवाद चल रहा है। कुछ लोगों का मत है कि अंग्रेजी की शब्दावली ज्यों की त्यों रख ली जाय। कुछ लोग अंग्रेजी के शब्दों को तोड़-मरोड़ कर भारतीय रूप देकर अपनाने के पक्ष में हैं। कुछ लोग अंग्रेजी के सारे शब्दों को हिन्दी में अनुवाद करने के इच्छुक हैं। इस सम्बन्ध में हिन्दी की किसी प्रमुख संस्थाने अपना निश्चत मत अभी तक प्रगट नहीं किया है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने कुछ वैज्ञानिक विषयों की एक शब्दावली प्रकाशित की है। प्रयाग की विज्ञान परिषद्ने डा० सत्यप्रकाश जी के सहयोग से शब्दों के निर्माण में कुछ प्रयत्न किया है। प्रयाग की भारतीय हिन्दी परिषद् भी एक वैज्ञानिक कोष छपवा रही है। पहले लाहौर के और अब नागपुर के डा० रघुवीर आङ्गल-भारतीय महाकोष के निर्माण में संलग्न है और उन्होंने इस दिशामें प्रयास प्रगति की है। इस महाकोष की कुछ वैज्ञानिक शब्दावली छप गई है। इन सब कोषों के शब्दोंपर गहरा विचार कर कुछ अन्तिम निर्णय करलेने से पुस्तकलेखकों के लिए बड़ी सुविधा हो जायगी।

डा० रघुवीर के महाकोष की विशेषता यह है कि इस के शब्द आप के कथन के अनुसार भारत के सभी प्रमुख भाषाओं में प्रयुक्त हो सकते हैं और उन्होंने एक अंग्रेजी शब्द के लिए केवल एकही हिन्दी शब्द निश्चत किया है। शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं के हो जाने से इन पारिभाषिक शब्दो के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय

हो जाने का अब समय आ गया है। ऐसे निर्णय के पहुँचने में सहायक होने के लिए ही इस पुस्तक में डा० रघुवीर के महाकोष के शब्दों का ही मैंने प्रयोग किया है। इस पुस्तक के कुछ अंश को डा० रघुवीर ने स्वयं देखा है और शब्दों के सम्बन्ध में उन्हों ने अपनी सह्-मति दी है। इसके लिए मैं डा० रघुवीरका आभारी हूँ।

पारिभाषिक वैज्ञानिक शब्दों के चुनाव और निर्माण में यदि हमारे शासकों की ओर से प्रयत्न हो तो यह समस्या शीघ्र हल होगी ऐसी मेरी आशा है।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
गंगादशहरा, २००५ वि०

फूलदेव सहाय वर्मा

विषय-सूची

प्रांगार रसायन
Organic Chemistry

अध्याय १

विषय-प्रवेश (INTRODUCTION)

विज्ञान का एक प्रमुख अङ्ग रसायन है। रसायन का परिमाण (size) आजकल इतना बढ़ गया है कि इसे कई शाखाओं में विभक्त करने की आवश्यकता पड़ी है। व्यावहारिक दृष्टि से रसायन की अनेक शाखाएँ हैं जिनमें कृषि रसायन, भेषज रसायन, जीव रसायन, औद्योगिक रसायन, वैश्लेषिक रसायन, विद्युद् रसायन कुछ हैं। शुद्ध रसायन की दृष्टि से रसायन की तीन प्रमुख शाखाएँ हैं जिन्हें प्राङ्गार रसायन, अप्रांगार रसायन (inorganic chemistry) और भौतिक रसायन (physical chemistry) कहते हैं। प्रांगार रसायन रसायन की वह शाखा है जिसमें प्रांगारिक संयोगों (organic compounds) का अध्ययन होता है। प्रांगार रसायन के अध्ययन के आरम्भ में लोगों की धारणा थी कि प्रांगारिक संयोग बिना किसी विशेष जीव-बल (force of vitality) के नहीं बन सकते पर पीछे यह धारणा असत्य प्रमाणित हुई।

प्रांगार रसायन अपेक्षया बहुत आधुनिक विज्ञान है। यद्यपि प्रांगारिक पदार्थ जैसे तैल, घी, स्नेह (**fat**), गोंद (gum), उद्यास (resin) शक्कर (sugar) और मण्ड (starch) बहुत प्राचीन काल से हमें ज्ञात हैं पर वैज्ञानिक रीति से इनका अध्ययन बहुत थोड़े समय से ही आरम्भ हुआ है। कुछ रसायनिक क्रियाएँ भी जैसे

स्वफेन (soap) बनाना, उद्भिद्‌रंगों से रंगना और किण्वन (fermentation) से आसव तथा सुषव (alcohol) बनाना बहुत प्राचीन काल से ज्ञात है पर इनके होने के कारणों का ठीक-ठीक पता पहले न था। फ्रांसीसी **रसायनज्ञ** लेमेरी (Lemery) ने अपनी पुस्तक कूरदशिमी (cours de chimie) में पहले पहल प्रांगारिक और अप्रांगारिक पदार्थों में भेद किया था। उन्होंने उन संयोगों को प्रांगारिक कहा था जो पेड़ पौधों और प्राणियों से प्राप्त होते थे और दूसरे संयोगों को जो खनिजों से प्राप्त होते थे अप्रांगारिक कहा था।

प्रारम्भ में अनेक वर्षों तक **रसायनज्ञों** ने उद्भिद्‌ और प्राणी पदार्थ (vegetable and animal matter) से शुद्ध प्रांगारिक संयोगों के पृथक्करण की चेष्टाएँ की और इसके फलस्वरूप १८ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में अनेक पदार्थों से कई प्रांगार संयोग शुद्ध रूप में प्राप्त हुए। इनमें सेवसे उत्कोलिक (malic) अम्ल, निम्बु से **निम्बविक** (citric) अम्ल, खट्टे दूध से दुग्धिक (lactic) अम्ल, द्रुस्फोटों (gallnuts) से द्रुस्फटिक (gallic) अम्ल, अम्लीका (wood sorrel) से तिग्मिक (oxalic) अम्ल और **तैलबदरतैल** (olive oil) से मधुरव (glycerol) थे। १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रांगारिक संयोगों की संख्या शीघ्रता से बढ़ने लगी। पर इन संयोगों के परस्पर सम्बन्ध दर्शाने तथा वर्गीकरण की कोई प्रणाली (system) नहीं थी। उस समय लोगों में यह धारणा (notion) भी थी कि बिना किसी विशेष **जीव-बल** (vis vitalis, life force) के ऐसे संयोगों का निर्माण नहीं हो सकता था। इन संयोगों के अपूर्ण ज्ञान से लोग ऐसा भी समझते थे कि प्रांगारिक संयोग रासायनिक संयोजन (combination) के साधारण नियमों को पालन नहीं करते। इससे इन संयोगों के अध्ययन में कुछ शिथिलता आगई और कुछ काल के लिए इसकी उन्नति रुक गई।

इसी समय **लावाज्येर** (Lavoisier) ने प्रांगारिक पदार्थों का अध्ययन प्रारम्भ किया और देखा कि इन अधिकांश संयोगों में

प्रांगार (carbon), उदजन (hydrogen) और जारक, (oxygen) होते हैं, कुछ में भूयाति (nitrogen) और कुछ में शुल्वारि (sulphur) और भास्वर (phosphorus) होते हैं। लावाज्येर के पश्चात् लिबिग (Liebig) इन संयोगों का अध्ययन करते रहे और उन्होंने सिद्ध किया कि सर्वथा भिन्न भिन्न गुणोंवाले शक्कर, शुक्तिक अम्ल (acetic acid), सुषव (alcohol), मधड और मधुरव (glycerol) में केवल तीन ही तत्व, प्रांगार, उदजन और जारक विद्यमान हैं। इन्हीं बातों मे यह धारणा फैली थी कि प्रांगारिक संयोग रसायनिक संयोजन के साधारण नियमों को नहीं पालन करते।

इसी समय बर्ज़ीलियस (Berzelius,, १७७९ से १८४८ ई०) ने विश्लेषण की उन्नत और यथार्थ (accurate) रीति (methods) से शक्कर और अन्य प्रांगारिक संयोगों का विश्लेषण कर प्रमाणित किया कि वे संयोग भी संयोजन के उन्हीं नियमों को पालन करते हैं जिन्हें अप्रांगार संयोग। १८२८ ई० में वोलर (Woller) ने पहले-पहल तिक्तातु श्यामीय (ammonium cyanate) से मिह (urea) प्रस्तुत कर प्रांगार संयोगों के निर्माण में जोव-बल के होने की धारणा को असत्य प्रमाणित किया। इस अन्वेषण से रसायनज्ञों में खलबली मच गई और अब अधिक संख्या में प्रांगारिक संयोग प्रयोगशालाओं में निर्माण होने लगे। बर्तले (Barthelot) दूसरे रसायनज्ञ थे जिन्होंने सुषव नामक सुप्रसिद्ध प्रांगारिक संयोग को प्रांगार, उदजन और जारक के योग से रसशाला में पहले-पहल प्रस्तुत किया था।

अब प्रांगारिक और अप्रांगारिक संयोगों में कोई भेद नहीं रह गया है। ये दोनों ही प्रकार के संयोग एक ही नियम को पालन करते और एक सी सरलता से प्रयोगशालाओं में तैयार हो सकते हैं। प्रांगार रसायन और अप्रांगार रसायन में अब कोई भेद नहीं रह गया है तौ भी सुविधा के विचार से इन दोनों का अलग-अलग

अध्ययन किया जाता है। प्रांगार रसायन के अलग अध्ययन करने के पक्ष में निम्न बातें कही जा सकती है।

१—प्रांगारिक संयोगों की संख्या बहुत बड़ी है, प्रायः पाँच लाख तक अब पहुँच गई है। बिना अलग अध्ययन किए इनका अच्छा ज्ञान नहीं हो सकता।

२—यद्यपि प्रांगारिक संयोगों में प्रायः वे ही रसायनिक क्रियाएँ प्रयुक्त होती है जो अप्रांगार रसायन में, पर कुछ क्रियाएँ जैसे स्फटन (crystallisation), प्रभागशः (fractional) स्फटन, उत्सादन (sublimation), प्रभागशः आस्रवन (fractional distillation), प्रवाष्प आस्रवन (steam distillation), प्रह्रासित निपीड में आस्रवन (distillation under reduced pressure), द्रावांक (melting point), और बुद्बुदांक (boiling point) के निश्चयन (determination) इत्यादि ऐसी हैं जिनका प्रयोग प्रांगार रसायन में बाहुल्य से होता है।

३—प्रांगारिक संयोग अयनों (ions) में विबद्ध (decomposed) नहीं होते। इससे अधिकांश प्रांगारिक क्रियाएँ मन्द होती हैं। ये जल में प्रायः प्रविलीन (soluble) भी नहीं होते हैं।

४—प्रांगारिक संयोगों के विश्लेषण की विधाएँ (processes) कुछ भिन्न होती हैं।

५—प्रांगारिक संयोगों में केवल व्यूहाणु सूत्र (molecular formula) से काम नहीं चल सकता। अनेक ऐसे संयोग होते हैं जिनके गुण तो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं पर उनके व्यूहाणु सूत्र एक ही होते हैं। प$_{१०}$ उ$_{१६}$ ज, १२० संयोगों का व्यूहाणु सूत्र है। इससे केवल व्यूहाणु सूत्रके ज्ञान से प्रांगार रसायन में काम नहीं चल सकता। यहाँ यह जानने की भी बड़ी आवश्यकता है कि इन संयोगों के व्यूहाणुओं में परमाणु (atom) किस प्रकार मिले हुए हैं। जिस सूत्र से हमें ज्ञात होता है कि व्यूहाणु में परमाणु किस प्रकार संयुक्त है उस सूत्र को 'संस्थापना सूत्र" (constitutional

formula) अथवा 'विन्यास सूत्र' (structural formula) कहते हैं। प्रांगार रसायन में संयोगों के विन्यास सूत्र का ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

६—प्रांगारिक संयोग अन्य संयोगों की अपेक्षा अधिक जटिल (complex) होते हैं। इनकी जटिलता का कुछ आभास कर्पूर, इक्षुशर्करा, वसि (stearin) और विलेय मण्ड (soluble starch) के **व्यूहाणु** सूत्र से मिल सकता है। कर्पूर का **व्यूहाणु सूत्र** प १० उ १६ ज, इक्षुशर्कराका प १२ उ २२ ज ११, **वसि** का प ५७ उ ११० ज ६ और विलेय मण्ड का प १२०० उ २००० ज १००० है।

प्रांगारिक संयोगों का वर्गीकरण (Classification)

प्रांगारिक संयोग प्रधानतः दो वर्गोंमें विभक्त किये जाते हैं। एक वर्ग को **स्नैहिक** (aliphatic) और दूसरे को **चक्रिक** (cyclic) कहते हैं। स्नैहिक संयोग इसलिए नाम पड़ा है कि अधिकांश तैल, स्नेह और सिक्थ (मोम, wax) इसी वर्ग के पदार्थ हैं। इन संयोगों में प्रांगारके परमाणु एक दूसरे के साथ **विवृत अथवा ऋजु** (open or straight) शृंखला (chain) में **संबद्ध** होते है। इसी कारण कभी कभी स्नैहिक संयोगों को **विवृत शृङ्खला संयोग** (open chain compounds) भी कहते हैं। दूसरे वर्ग के संयोगोंका नाम **चक्रिक** इसलिए पड़ा कि इनमें प्रांगार के परमाणु परस्पर संवृत शृङ्खला अथवा चक्र अथवा वलय (closed chain or cycle or ring) में संबद्ध होते हैं। इन चक्रिक संयोगों के एक वर्ग को **'सौरभिक"** (aromatic) भी कहते है क्योंकि प्रारम्भ में इस वर्ग के अनेक ऐसे संयोग पाये गये थे जिनमें **सौरभ** (सुगंध, aroma) होता था।

*

अध्याय २

प्रांगारिक संयोगों का शोधन

PURIFICATION

अधिकांश प्रांगारिक संयोगों में केवल तीनही तत्त्व प्रांगार, उदजन और जारक—होते हैं। इस कारण यदि इनमें थोड़ी सी भी अशुद्धताएँ रह जाय तो इनका परीक्षण (testing) कठिन हो जाता है। इसलिए प्रांगारिक संयोगों के अध्ययनकी पहली सीढ़ी उन्हें शुद्ध रूपमें प्राप्त करना होता है। इसके लिए प्रांगारिक संयोगों को किसी **उपयुक्त विलायक** (suitable solvent) में घुलाने की आवश्यकता पड़ती है। इन विलायकों को **प्रांगारिक विलायक** (organic solvent) कहते हैं। किसी पदार्थ का उपयुक्त विलायक वह है जो उच्च ताप (temperature) पर उसे अधिक घुलावे और निम्न ताप पर कम। ऐसे उच्च ताप पर निर्मित विलयन (solution) के ठंढा करने से उस पदार्थ के स्फट (crystal) निकल आते हैं। साधारणतया निम्न विलायक प्रांगार संयोगों के स्फटन में प्रयुक्त होते हैं।

विलायक	बुद्बुदांक
दक्षु (ether)	३५° श०
प्रांगार द्वि शुल्बेय (carbon disulphide)	४६° श०
शुक्ता (acetone)	५६° श०
नीरवम्रल (chloroform)	६१° श०
मार्त्तैल दक्षु (petroleum ether)	६०–९०° श०
प्रोदल सुषव (methyl alcohol)	६६° श०
प्रांगार चतुर्नीरेय (carbon tetrachloride)	७६° श०
दक्षुल शुक्तीय (ethyl acetate)	७७° श०

द्क्षुल सुपव (ethyl alcohol)	७८ श°
धूपेन्य (benzene)	८०° श०
जल (water)	१००° श०
शुक्तिक अम्ल (acetic acid)	११८° श०
भूय-भूपेन्य (nitro-benzene)	२०८° श०

सान्द्र (Solid) संयोगों का शोधन।

स्फटन (crystallisation) **और प्रभागशः स्फटन** (fractional crystallisation)। जिस पदार्थ को शुद्ध करना है उसका थोड़ा अंश (०·०५ से ०·१ धा०) परीक्षण नाल (test tube) में रखकर अलग अलग विलायक (solvent) डालकर **दाहक** से बारी बारी से तपाते और हिलाते हैं। स्वच्छ तरल को निकंडन (decantation) कर ठंढा होनेको छोड़ देते हैं उसमें अब स्फट बनते हैं। जिस विलायक से अच्छे स्फट बने उसको चुन देते हैं। उसीके **याग** (aid) से सारे पदार्थ को कोराकार पालिघ (conical flask) में रखकर घुलाकर विलयन बनाते हैं। यदि विलयन स्वच्छ नहीं है तो उसे निवाप (funnel) में पावपत्र (filter paper) रखकर छान लेते हैं। अब विलयनको स्फटन के लिए ठंढा होने देते है। ठंढा होनेपर स्फट निकल आते हैं। उन्हें पावन (filtration) से अलग कर विलायक से ही धो डालते हैं। स्फट को मातृ-तरल (mother liquor) से शीघ्र अलग करने के लिए **पृथु** (Buchner) निवाप द्वारा स्फट को अलग करते है। स्फट में चिपका हुआ रस इससे जल्दी टपक जाता है (चित्र१)।
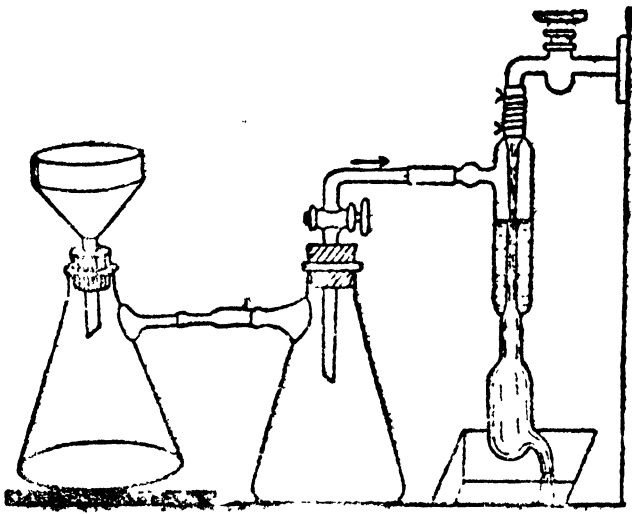
चित्र १

शेष तरल से स्फट को सुखाने के लिए या तो पावपत्र के स्तर में रखकर दबाने अथवा रन्ध्री पट्ट (porous plate) पर रखते हैं। यदि विलायक दक्षु सुषव है तो शोषित्र (desiccator) जिसमें शुल्बारिक अम्ल (sulphuric acid) व चूर्णातु नीरेय (calcium chloride) रखा है रखकर सुखने के लिए छोड़ देते हैं। स्फट के सूख जानेपर उसको तौलते और तब उसकी शुद्धता का परीक्षण करते हैं।

चेतावनी । अनेक विलायक जैसे धूपेन्य और प्रांगार द्विशुसुल्बेय **प्रबल अभिज्वाल्य** (highly inflammable) होते हैं। उन्हे सीधे दाहक की ज्वाला में न तपाना चाहिए। इनको तपाने के लिए जल-तापन (water bath) का प्रयोग ठीक है। जल-तापन को भी सतर्कता से और धीरे-धीरे तपाना चाहिए।

संपरीक्षा १—धूपिक अम्ल (benzoic acid) का ५ धान्य (gram) किसी चीनमृत्स्ना शराव (porcelain dish) में रखकर थोड़ा पानी डालकर जल-तापन पर तपा कर प्राय: अनुविद्ध (saturated) विलयन बनाओ। यदि कोई **निलम्बित** (suspended) सान्द्र उसमें हो तो उष्ण विलयन को छान लो। विलयन को अब कांच व चीनमृत्स्ना शराव में रखकर ठंडा होने को छोड़ दो। अब स्फट बनेंगे। जब पर्याप्त स्फट बन जाय तब स्फट को छान कर अलग कर लो। **मातृ तरल** को बह जाने दो और उसे रन्ध्री पट्ट पर सुखा

डालो। जब सूख जाय तब उसे तौल लो और तब शुद्धता का परीक्षण करो।

उत्सादन (sublimation)—अधिकांश प्रांगार संयोग तपाने से विवद्ध (decomposed) हो जाते हैं पर कुछ ऐसे हैं जो तपाने पर बिना तरल बने ही वाष्प बनकर उड़ जाते हैं। इस वाष्प को यदि संघनित (condensed) किया जाय तो वह फिर बिना तरल बने ही सान्द्र में परिणत हो जाता है। ऐसे पदार्थों को उत्सादन द्वारा शोधित कर सकते हैं। उत्सादन से अच्छे स्फट भी बनते हैं। इस विधा से उत्पात (volatile) संयोग ही अनुत्पत अशुद्धताओं से शुद्ध हो सकते हैं। इस विधा से धूपिक अम्ल (benzoic acid) उत्तैलेन्य (naphthalene) और कपूर सरलता से शोधित हो जाते हैं। कुछ पदार्थ साधारण निपीड (ordinary pressure) पर विवद्ध हो जाते हैं। ऐसे पदार्थों के लिये **प्रह्रासित** व शून्य निपीड पर उत्सादन का प्रयोग होता है।

चित्र २
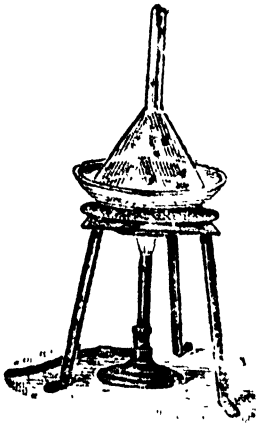
संपरीक्षा २—सामान्य लवण और धूपिक अम्ल के ३ धान्य मिश्र (mixture) को एक चीनमृत्सा शराव में रखकर उसे निवाप से ढँक दो। निवाप के स्तम्भ (stem) को कर्पास से बन्द कर दो। अब शराव को सिकता-तापन (sand bath) पर मन्द-मन्द आँच से तपाओ (चित्र२)। धूपिक अम्ल उड़कर निवापके शीतल तल पर संघनित हो जायगा और लवण शराव में ही रह जायगा।

सान्द्र संयोगों की शुद्धता का परीक्षण—स्फटों की शुद्धता का परीक्षण उनके द्रावांक के निश्चयन से होता है। शुद्ध संयोग का द्रावांक तीव्र होता है अर्थात् तपाने पर पिघलना आरम्भ होने पर १°श० के अन्दर पूर्ण रूप से पिघल कर स्वच्छ (clear) तरल बन जाता है। साधारणतया दूसरे संयोगों की उपस्थिति से संयोग का

द्रावांक घट जाता है। इसका अपवाद केवल सरूप (isomorphous) पदार्थ हैं जिनका द्रावांक मिश्र होने पर भी तीव्र और स्थिर होता है। अन्य संयोगों की उपस्थिति में उच्च ताप पर पिघलने वाला संयोग का द्रावांक नीचा हो जाता है और निम्न ताप पर पिघलने वाला संयोग का द्रावांक ऊँचा हो जाता है। सबही दशाओं में अशुद्धताओं के कारण संयोग का द्रावांक सुनिश्चित और तीव्र नहीं होता। यदि द्रावांक सुनिश्चित और तीव्र है तो वह संयोग शुद्ध है अन्यथा अशुद्ध।

द्रावांक का निश्चयन—निम्न दो रीतियों से प्रांगार संयोगों के द्रावांक का निश्चयन होता है। पहली रीति से शुद्धतर (more accurate) परिणाम प्राप्त होता है पर इसमें अधिक मात्रा लगती है। दूसरी रीति से बहुत कुछ (fairly) यथार्थ (accurate) परिणाम प्राप्त होता है पर इसमें बहुत अल्प मात्रा से ही काम चल जाता है। इस कारण साधारणतया दूसरी रीति ही **रस शालाओं में** प्रयुक्त होती है क्योंकि कभी कभी संयोग की अल्पमात्रा ही प्राप्य होती है।

संपरीक्षा ३—रीति १—२० धान्य **मिह** (urea) को एक बड़े काँचनाल में रखकर पिनाल ज्वाला (Bunsen flame) के मन्द आँच से तपाओ जब तक वह तरल न बन जाय। अब उस तरल में तापमान रखकर कांचनाल को **संधर** (clamp) से लटका दो। जब सान्द्र बिलकुल पिघल जाय तब दाहक को (burner) हटा लो और तरल को सान्द्र बनने दो। इस बीच काँच विचालक (stirrer) से उसे बराबर हिलाते रहो। तरल का ताप धीरे-धीरे कम होने लगेगा और सान्द्र टुकड़े बनने लगेंगे अब आधी-आधी कला (minute) पर तापमान के अंक को पढ़ो। जब तापमान का अंक दो-तीन कला तक स्थिर रहे वही अंक मिह का द्रावांक है।

संपरीक्षा ४—**रीति २—मृदु** काँच के नाल के टुकड़े का पिनाल दाहक में तपाओ और जब वह कोमल हो जाय तब पहले उसे धीरे-

धीरे और पीछे शीघ्रता से खींचो। इससे काँच की एक पतली नली बन जायगी जिसमें अतिसूक्ष्म छेद होगा। इस नली के एक छोर को दाहक में तपाकर उसका छेद एक ओर से बन्द कर दो। ऐसी नली को '**द्रावांक नाल**' कहते हैं।

इस द्रावांक नाल में थोड़ा सूखा क्षुण्ण स्फट डालकर थपथपाओ जिससे क्षोद नाल के **बुध्न** (bottom) में चला जाय। अब नाल को तापमान में घृषि पट्टी (rubber band) से ऐसे बाँधो कि तापमान के कन्द के पारद के निकटतम में नाल का क्षोद (powder) रहे। अब तापमान को चंचुकी (beaker) में रखो जिसमें संकेन्द्रित (concentrated) शुल्बारिक अम्ल (sulphuric acid) अथवा मधुरव (glycerol) आधा भरा हुआ है (चित्र ३)। अब चंचुकी के तरल को छोटी ज्वाला से धीरे-धीरे तपाओ। ज्योंही स्फट के पिघलने के चिह्न प्रगट हों, दाहक की ज्वाला को और छोटा कर दो। तब तक तपाते रहो जब तक नाल का सान्द्र पिघल कर पारदर्श (transparent) न हो जाय। इस बीच तापमान के अंक को पढ़ो। चंचुकी के तरल को काँच विचालक से बराबर हिलाते रहो जिससे उसके सारे तरल का ताप एक सा रहे। तापमान के जिस अंक पर वह सान्द्र तरल होकर पारदर्श (transparent) हो जाय वही उसका द्रावांक है।
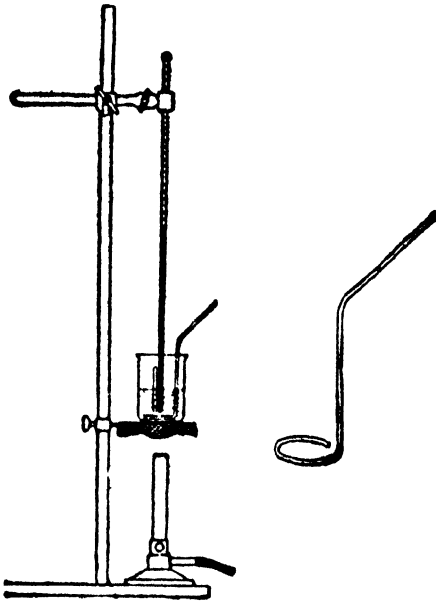
चित्र ३

इस रीति में द्रावांक नाल में बहुत थोड़ा पदार्थ लेना चाहिए और उसे मन्द-मन्द आँच से तपाना चाहिए। जब पिघलना आरम्भ हो जाय तब ज्वाला को बहुत छोटा कर देना चाहिए। यदि द्रावांक

१००° श० से नीचा है तो उसके लिए चंचुकी में जल प्रयुक्त हो सकता है। १००° श० से ऊपर पिघलनेवाले सान्द्र के लिए ही जल के स्थान में सकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल अथवा मधुरव प्रयुक्त हो सकता है।

कभी कभी संयोगों **की प्रकृति** (nature) का निश्चयन **'मिश्रित द्रावांक रीति'** से होता है। **मिश्रित द्रावांक का** सिद्धान्त यह है। यदि परीक्ष्य संयग मिह है तो वह १३२° श० पर पिघलेगा। यदि इस अज्ञात संयोग के साथ थोड़ा शुद्ध मिह मिलाकर उसका द्रावांक निकालें तो यदि उपर्युक्त संयोग मिह है तो इस शुद्ध मिह के मिश्रण से उसके द्रावांक में कोई भेद न होगा। यह मिश्र अब भी १३२° श० पर ही पिघलेगा। पर यदि अज्ञात संयोग मिह नहीं है तो इस मिश्र का द्रावांक १३२° श० से भिन्न होगा। साधारणतया मिश्रका द्रावांक १३२° श० से न्यून ही होगा।

तरलों का शोधन।

१—विवरी निवाप (tap funnel) **द्वारा अविलेय तरलों का वेधन** (separation)। यदि तरल एक दूसरे में विलेय नहीं हैं तो उन्हे विवरी निवाप द्वारा अलग कर सकते हैं (चित्र ४)

संपरीक्षा ५ —जलके ५० सि. स्था. और धूपेन्य के ५० सि. स्थ. को विवरी निवाप में रख पिधा (stopper) लगा कर बल से हिलाओ, अब निवाप को थोड़ी देर के लिए स्थिर होने को छोड़ दो। मिश्र के दो स्तर (layers) अलग अलग हो जायँगे। पिधाको हटाकर शिखिपिधा (stop cock) को खोलकर जल के **निम्न** स्तर को निकाल लो। निवाप में अब केवल धूपेन्य रह जायगा।
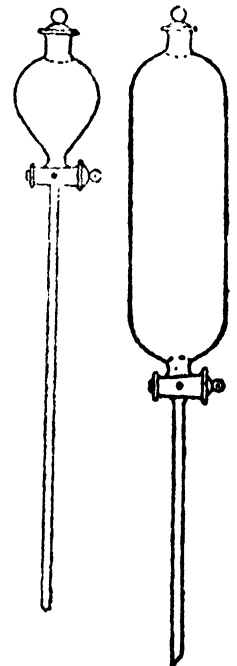
चित्र ४

२—विलेय तरलों का वेचन—यदि दो अथवा दो से अधिक तरल विलेय हैं तो उन्हें आसवन (distillation) द्वारा अलग कर सकते हैं। शुद्ध तरल किसी स्थिर निपीड पर एक स्थिर तापांक पर उबलता है। आसवन से तरलों का शोधन होता है। यदि दो तरलों के बुद्बुदांक एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर हैं तो केवल एक आसवन से वे शुद्ध रूप में प्राप्त हो सकते हैं। अधिक उत्पत अंश वाष्प बनकर इस मिश्र के बुद्बुदांक पर पहले निकल जाता है और तब मिश्र का बुद्बुदांक एका-एक उठ जाता है और उच्च तापांश पर उबलने वाला अवशिष्ट तरल उबलने लगता है।

यदि दो तरलों का बुद् बुदांक एक दूसरे के बहुत निकट है तो केवल प्रथम बार के आसवन से वे दोनों पूर्णतया अलग नहीं हो सकते। उन्हें पूर्ण रूप से अलग करने के लिए आसवन विधा को दोहराने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे आसवन को प्रभागशः आसवन (fractional distillation) कहते हैं। यही अर्थ निकलता है यदि आसवन को बार बार दोहराने के स्थान में प्रभाजक वंश (fractionating column) का प्रयोग हो। ऐसे वंशों के कई रूप होते है। जो वंश सामान्यतः प्रयुक्त होते हैं उनका चित्र यहाँ दिया हुआ है (चित्र ५)।

क गुटिका वंश (Hempel's column) का चित्र है। इस वंशमें एक लम्बा कांच नाल कांच की गुटिकाओं (beads) से भरा रहता है। यह अति सरल साधित्र है और सरलता से बन जाता है।

ख ऐसा वंश है जिसमें कांच के बिम्ब (disc) एक शलाका (rod) पर गलाकर जड़े होते हैं। यह बिम्ब वाला शलाका कांच नालमें रखा होता है।

ग एक कांचनाल है जो सेब के आकार के कन्द में बना होता है।

घ एक चौड़ा नाल है जिसमें उपसंकोचों (constrictions) की माला (series) बनी होती है। प्रति उपसंकोच में, एक छोटा मुड़ा हुआ कांचनाल होता है जो जाली-मल्लक (gauge cup) में लटका रहता है।

चित्र ५
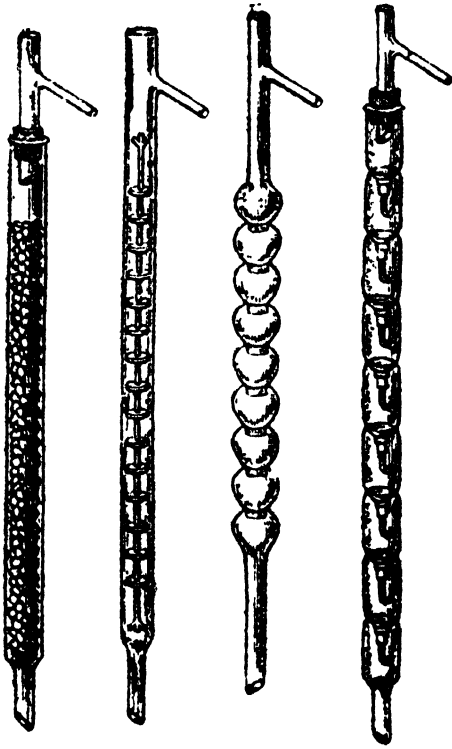
साधारण आसवन पलिघ और प्रभागशः वंश के स्थान में कभी कभी एक विशेष प्रकार का पलिघ प्रयुक्त होता है जिसे कन्द ग्रीव पलिघ **लैडेनबर्ग** (Laden-burg) का पलिघ (flask) कहते है (चित्र ६)। इस पलिघ की ग्रीवा में सेवके आकार का कन्द रहता है। पलिघ की लंबी ग्रीवा और सेव का आकार प्रभाजक वंश का काम देता है।

चित्र ६

प्रभाजक वंश का कार्य इस प्रकार होता है। दो अथवा दोसे अधिक विलेय तरलों के तपने से जो वाष्प बनता है उसमें अधिक उत्पत अथवा न्यून बुद्बुदांक वाले तरल का वाष्प अधिक रहता है और न्यून उत्पत अथवा
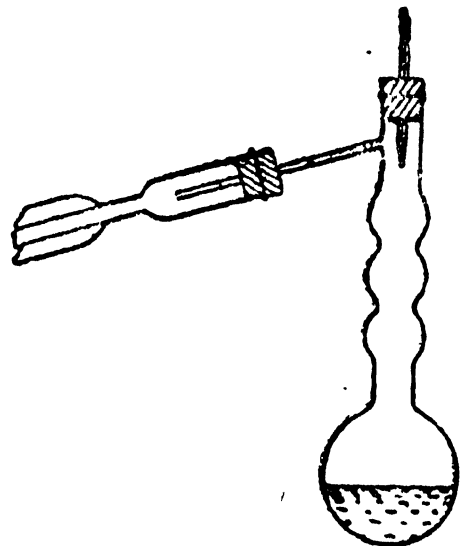
उच्च बुद्बुदांक वाले तरल का कम। यदि यह वाष्प ऊपर के चढ़ाव में अपूर्णतः सघनितहो जाय तो उच्च बुद्बुदांक वाले तरल का वाष्प अधिक मात्रा में संघनित होगा। जैसे जैसे वाष्प वंश में ऊपर उठता जायगा अधिक उत्पत तरल क वाष्प की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी, अब जो वाष्प पलिघ और वंश से निकलकर संघनक (condenser) में आवेगा उसमें अधिक उत्पत तरल की मात्रा बहुत अधिक होगी। इस प्रकार वाष्प के अधिक कालतक पलिघ और वंश में रहने के कारण दोनो तरलों का पृथक्करण अधिक पूर्णता से होता है। केवल एक बार के आसवन से दो तरल बहुत कुछ पूर्ण रूप से पृथक् किये जा सकते हैं। यद्यपि सर्वथा पूर्ण पृथक्करण के लिए कई बार के आसवन की आवश्यकता पड़ सकती है। इस विधाकी उपयोगिता निम्न सपरीक्षा से ज्ञात हो जायगी।

संपरीक्षा ६— ५० सि. स्थ· धूपेन्य—जिसका बुद्बुदांक ८०.५° श० है—और ५० सि. स्थ· विरालेन्य (toluene)—जिसका बुदबुदांक ११०° श० है—के मिश्रको **गोलबुध्न** (round bottomed) के पलिघ में रखकर सिकता तापन पर तपाओ। पलिघ में प्रभाजक वंश लगाकर एक तापमान भी रखो और उसके पार्श्वनाल में सघनक जोड़ दो। तापमान का कन्द पलिघ के पार्श्वनाल के थोड़ा नीचे हो। सिकता तापन को छोटी ज्वाला से तपाओ जिससे मिश्र का बुद्-बुदन मन्द मन्द और **नियमित रूप से** (regularly) हो। देखोगे कि पलिध से वाष्प निकलकर वंश में अपूर्ण रूप से संघनित होता है। असघनित वाष्प ऊपर उठकर पार्श्व नाल से निकल संघनक में पूर्णतया संघनित हो जाता है। तापमान से वाष्प के तापांश का ज्ञान होता है। जो तरल ८२° श० पर इकट्ठा होता है उसे अलग रखो। इसके पश्चात् प्रति ५° श० पर अलग अलग प्रभाग (fraction) रखो। अन्तिम प्रभाग को १०७° से ११२° श० पर इकट्ठा करो।

यदि प्रभाजक वंश दक्ष (efficient) है तो पहला प्रभाग

शुद्ध धूपेन्य का होगा और अन्तिम प्रभाग शुद्ध विरालेन्य का। मध्य के प्रभागों को पुनः आसवन से धूपेन्य और विरालेन्य में पृथक किया जा सकता है।

प्रह्रासित निपीडपर आसवन—अनेक ऐसे तरल है जो वायुमण्डल के निपीड पर तपाने से विबद्ध हो जाते है। ऐसे तरलों का शोधन और वेचन (separation) प्रह्रासित निपीड पर अथवा शून्यक (vacuum) में आसवन से होता है। इस कार्य के लिए आसवन पलिघ में संघनक और आदाता वाता-प्रवेश (air tight) जोड़ते हैं। यहां आदाता सामान्यतः एक दूसरा पलिघ होता है जिसके
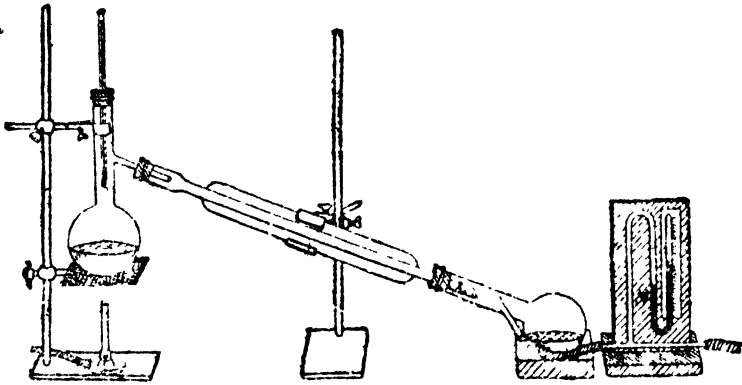
चित्र ७

पार्श्व-नाल में वाष्पमान (manometer) और वायु निष्कासन के लिऐ उदंच (pump) संबद्ध होता है। जब कुछ वायु निकल जाती है तब निम्न ताप पर ही तरल उबलता है। इससे उस तरल का विबद्ध होना रुक जाता है। ऐसे आसवन सधित्र का चित्र यहां दिया हुआ है (चित्र ७)।

ऐसे तरल के द्वारा शोधन जिसमें अशुद्धतायें तो प्रविलीन हो जाती पर मूल तरल नहीं। यह रीति उन प्रांगारिक संयोगों के शोधन में विशेषतया प्रयुक्त होती है जो प्रयोगशालाओं में निर्मित होते हैं। निम्न संपरीक्षा से इस रीति का स्पष्टीकरण हो जायगा।

संपरीक्षा ७—किसी विवरी निवाप में ५० सि० स्थ० द्रक्षुल दक्षुलो

उसे ५ सि० स्थ० सुप्रव के साथ मिलाओ। दोनों तरल मिलकर एक हो जायगा। विमरी निबाप में अब सामान्य लवण का प्रबल विलयन २० सि० स्थ० डालो। उसे अब कुछ देर तक हिलाओ और फिर रख दो। लवण के विद्यमान में सुप्रव प्रविलीन हो जायगा और नीचला स्तर बनेगा और ऊपर का स्तर हल्का दक्षु का होगा। नीचला स्तर निकाल लो और ऊपर के स्तर को उस विलयन से एक बार फिर धोकर सुप्रव रहित दक्षु को प्राप्त कर लो।

प्रबाष्प-आसवन (Steam distillation)। कुछ प्रांगार संयोग—सान्द्र अथवा तरल—ऐसे हैं जो प्रबाष्प में उत्पत और जल में अविलेय होते हैं। ऐसे संयोगों को अन्य अनुत्पत पदार्थों से सरलता से अलग कर सकते हैं। ऐसे संयोगों में अनेक सुगन्ध (essential) तैल हैं जो पुष्पों से निकाले जाते हैं। इस विधा में कुछ जल के साथ संयोग को एक पलिघ में रखकर पलिघ को संघनक और आदाता से जोड़ देते हैं। पलिघ को तब पिनाल ज्वाला से
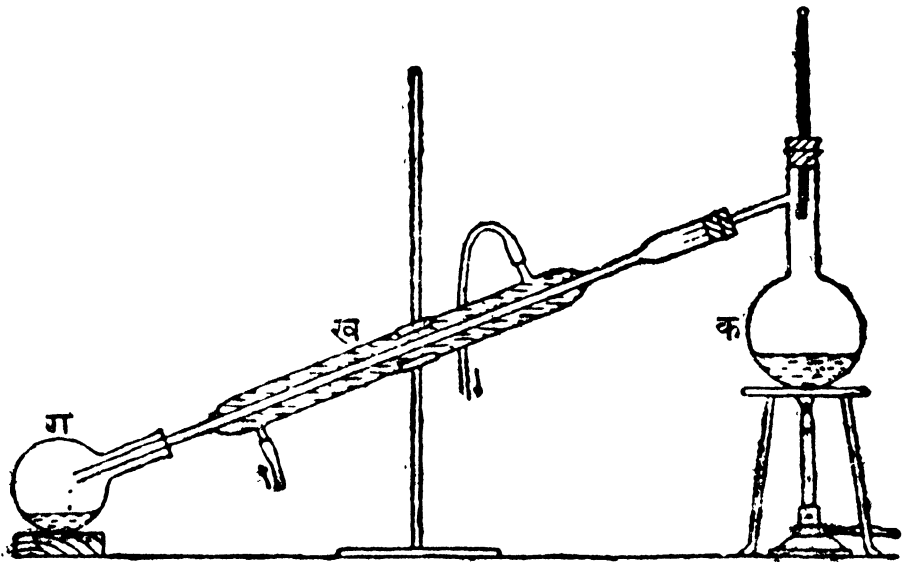
चित्र ८

तपाते हैं और साथ-साथ किसी वाष्पित्र (boiler) में प्रबाष्प उत्पन्न

कर उस पलिघ में ले जाते हैं (चित्र ८)। वह प्रबाष्प पलिघ के पदार्थ को लेकर संघनक में जाकर आदाता में इकट्ठा होता है। वहाँ से विवरी निवाप अथवा विलायक से उसे अलग कर लेते हैं। इस विधा से साधारणतया विनीली (aniline) शोधित होता है।

तरलों का शोषण (Drying of liquids)। जो तरल उपर्युक्त विधाओं से शोधित होते हैं उन्हें सुखाने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए किसी उपयुक्त शोषणकर्त्ता का प्रयोग होता है। शोषण-कर्त्ता (drying agent) ऐसा होना चाहिए कि उसकी कोई प्रति-क्रिया उस तरल के साथ न हो। यदि कोई प्रतिक्रिया होती हो तो उसे प्रयुक्त न करना चाहिए। सुषव के शोषण में चूर्णातु नीरेय (calcium chloride) प्रयुक्त नहीं हो सकता क्योंकि चूर्णातु नीरेय सुषव के साथ स्फट बनता है। शोषणकर्त्ता साधारणतया निम्नवर्ग के पदार्थ होते हैं।

१—शीघ्रता से जारणहोनेवाली धातुएँ जैसे क्षारातु, दहातु और चूर्णातु।

२—शीघ्रता से जलीयित (hydrated) होनेवाले जारेय (oxi-des) और उदजारेय जैसे चूर्णक (lime), दहविक्षार (caustic soda) और दह सर्जि (caustic potash)

३—अजल (anhydrous) लवण जैसे दहातु प्रांगारीय, चूर्णातु नीरेय, कुप्यातु नीरेय, ताम्र शुल्बीय और दहातु शुल्बीय।

प्रचूषण (absorption) से तरल अधिक नष्ट न हो जाय इससे शोषणकर्त्ता की अल्पमात्रा ही प्रयुक्त करनी चाहिए।

तरल की शुद्धि का परीक्षण (Criterion of purity of a liquid) —किसी तरल की शुद्धि का परीक्षण उसके बुद्बुदांक के निश्चयन से होता है। शुद्ध तरल तीव्र और नियमित रूप से (regularly) १ से २° श० के अन्दर उबलने लगता है। यदि अशुद्धता कोई अनुत्पत पदार्थ है तो तरल का बुद्बुदांक ऊपर उठता है और अशुद्धता यदि उत्पत पदार्थ है तो बुद्बुदांक या तो ऊपर उठ सकता अथवा

नीचे उतर सकता है। प्रत्येक दशा में तरल यदि अशुद्ध है तो उसका बुद्बुदांक तीव्र (sharp) न होकर आसवन से परिवर्तन होता रहेगा। इसके कुछ अपवाद भी हैं। कुछ मिश्र स्थिर-बुद्बुदांक वाले होते हैं पर अधिकांश ऐसे नहीं होते। यदि किसी तरल का बुद्बुदांक निश्चित और तीव्र हो तो वह शुद्ध समझा जाता है अन्यथा अशुद्ध। तरलों का बुद्बुदांक संयोगों के पहचानने में भी प्रयुक्त होता है।

बुद्बुदांक का निश्चयन—दो रीतियों से बुद्बुदांक निकलता है। पहली रीति में तरल की कुछ अधिक मात्रा लगती है और दूसरी में कम। दूसरी रीति से जो अंक प्राप्त होता है वह यथार्थ (accurate) भी होता है और इसमें किसी जटिल साधित्र की आवश्यकता नहीं होती। इससे साधारणतया दूसरी रीति ही प्रयुक्त करनी चाहिए।

संपरीक्षा ८—रीति १ - एक छोटे आसवन पलिघ में २० सि० स्थ० धूपेन्य रखो। पलिघ के पार्श्व नाल में एक संघनक जोड़ो। इस संघनक में ठंढा जल बहता रहे। संघनक में एक आदाता जोड़ दो। पलिघ की ग्रीवा की त्वक्षा (cork) में तापमान ऐसा रखो कि तापमान का कन्द (bulb) पार्श्वनाल के ठीक नीचे हो। अब पलिघ को जल-तापन पर मन्द तपाओ और तब तक तपाते जाओ जब तक तापमान का तापांश स्थिर न हो जाय। इस तापांश को लिख लो। यही तापांश धूपेन्य का बुद्बुदांक है।

संपरीक्षा ९—रीति २—पिनाल ज्वाला में मृदु कांचनाल के एक छोटे टुकड़े को तपाओ। जब वह मृदु हो जाय तब उसके छोरों को खींचो ताकि इससे एक लंबा पतला केश (capillary) नाल बन जाय। द्रावांक के निश्चयन में जैसा नाल प्रयुक्त होता है उससे बहुत पतला नाल यह होना चाहिए। इस केशनाल से छोटे-छोटे चार शि० मा० (Centimetre) के टुकड़े रेती से काट लो। इन टुकड़ों को एक छोटे पिनाल ज्वाला के बाह्य प्रधि (outter rim) में रखो ताकि एक छोर से १ शि० मा० की दूरी पर उसका द्रवण हो जाय। इस नाल को बुद्बुदांक नाल कहते हैं।

अब एक छोटा ५ शि० मा० का परीक्षण नाल लो जिसका व्यास (diameter) एक सामान्य सीसांकनी (lead pencil) सा हो। उसमें १० बूँद चिराज्ञेन्य (toluene) रखकर उसमें बुद्बुदांक नली के खुले छोर को बुम में छोड़ दो। परीक्षण नाल के तरल का तल बुद्बुदांक नाल के द्रुव भाग के ऊपर रहे। अब वृषि वलय (rubber ring) से तापमान को परीक्षण नाल से ऐसा जोड़ो कि तापमान का कन्द नाल के तरल के बहुत निकट में हो। इन सबको मधुरव (glycerol) वाले चंचुकी में वकभांड स्तम्भ (retort stand) पर लटका दो (चित्र१)। अब चंचुकी के तरल को जाली पर रखकर धीरे-धीरे तपाओ और कांच विचालक (stirrer) से हिलाते जाओ। तपाना बड़ी सावधानी से और धीरे-धीरे होना चाहिए। जैसे-जैसे तापन का ताप ऊपर उठेगा परीक्षण नाल का ताप भी बढ़ता जायगा और केशनाल

चित्र १
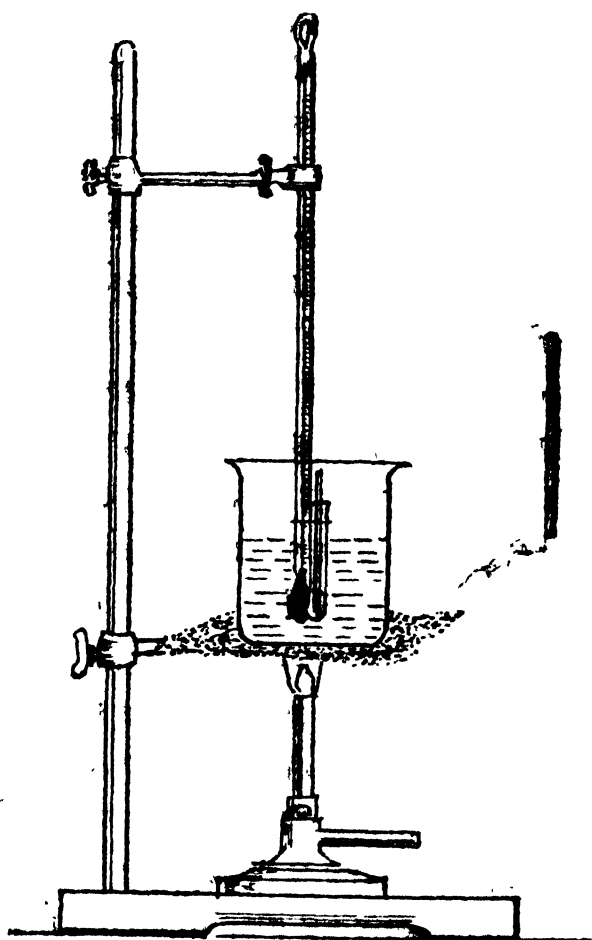
से छोटे-छोटे बुद्बुद निकलने आरम्भ होंगे। ज्यों ज्यों ताप बढ़ता जायगा बुद्बुद निकलने की गति भी बढ़ती जायगी और जब तरल का बुदबुदांक पहुँच जायगा बुद्बुद बड़ी शीघ्रता से निकलने लगेंगे।

केशनाल से जब बुद्‌बुद् शीघ्रता से निकलने लगे तब तापमान का जो तापांश होगा वही उस तरल का बुदबुदांक है।

प्रश्न

१—'जीव-बल' का सिद्धान्त क्या था। इस सिद्धान्त का पतन कैसे हुआ।

२—प्रांगार रसायन की परिभाषा क्या है? प्रांगार रसायन के अलग अध्ययन होने के कुछ कारणों को लिखो।

३—प्रांगार रसायन के दो प्रमुख वर्ग क्या हैं। किस सिद्धान्त पर यह वर्गीकरण हुआ है?

४—सान्द्र और तरल प्रांगारिक संयोगों का शोधन कैसे होता है। जो रीतियाँ प्रयुक्त होती हैं उनकी उदाहरण के साथ व्याख्या करो।

५—उपयुक्त उदाहरण के साथ निम्न क्रियाओं की व्याख्या करो।

१—प्रभागशः स्फटन, २—उत्सादन, ३—प्रह्रासित निपीडपर आस्वन, ४—प्रभागशः आस्वन, ५—प्रभाष्प आस्वन,

६—निम्न मिश्र के संघटकों (constituents) को कैसे वेचन (separation) करोगे।

१—सामान्य लवण और धूमिक अम्ल

२—धूपेन्य और जल

३—धूपेन्य और विरलेन्य

७—प्रभाजक वंश क्या है? कुछ प्रमुख वंशों का जो साधारणतया प्रयुक्त होते है वर्णन करो। इन वंशों के कार्य के क्या सिद्धान्त हैं।

८—किसी (१) सान्द्र और (२) उत्पत तरल के शुद्ध और अशुद्ध होने का निश्चयन कैसे करोगे?

९—उन प्रयोगों का सविस्तर वर्णन करो जिनसे तुम किसी (१) सान्द्र के द्रावांक और (२) किसी तरल के बुद्‌बुदांक को जब वह अल्प मात्रा में हो प्राप्य हैं निकालोगे।

अध्याय–३

प्रांगार संयोगों में तत्त्वों का उपलम्भन (Detection)

प्रांगार संयोगों के शुद्ध रूप में प्राप्त होने पर अगला पद उनमें उपस्थित तत्त्वों का उपलम्भन है। प्रांगारिक संयोगों में प्रांगार तो रहता ही है पर प्रांगार के अतिरिक्त अधिकांश में उदजन, जारक और भूयाति भी रहते हैं कुछ में लवणजन (halogen), शुल्वारि और भास्वर भी रहते हैं, कुछ में नेपाली (arsenic), अंजन (antimony), कुप्यातु, (zinc), पारद, श्राजातु (magnesium) आदि धातुएँ भी रहती हैं।

प्रांगार और उदजन का उपलम्भन—किसी पदार्थ के प्रांगार अथवा अप्रांगार होने का साधारण परीक्षण उन्हें छुरी के फल अथवा धातु प्रथ (metallic spatula) पर रखकर ज्वाला में जलाना है। अधिकांश प्रांगार संयोग इससे जल अथवा झुलस जाते हैं और काला अवशेष (residue) रह जाता है। यह काला अवशेष प्रांगार का होता है।

नियमित रूप से प्रांगार और उदजन का परीक्षण पदार्थ के शुष्क ताम्र जारेय के साथ तपाने से होता है। प्रांगार प्रांगार-द्वि जारेय और उदजन जल में परिणत हो जाता है।

संपरीक्षा १०—थोड़ा मिह लेकर, पाँच गुना शुष्क ताम्रजारेय का क्षोद (ताम्रजारेय को तपाकर शोषित्र में ठण्डा करने से शुष्क क्षोद प्राप्त होता है) मिलाकर एक शुष्क परीक्षण-नाल

में रख, ऊपर से थोड़ा और ताम्रजारेय डालो। नाल में त्वक्षा (cork) से प्रदान नाल (delivery tube) जोड़कर संधर से लटका दो। अब नाल को सावधानी से तपाओ और जो वाति निकले उसे एक दूसरे चूर्णक जलवाले परीक्षण नाल
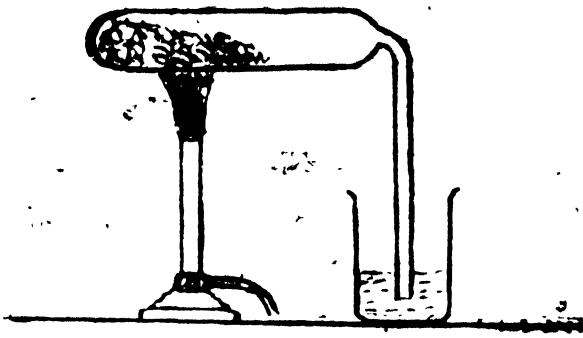
चित्र १०

में ले जाव। अब यदि चूर्णक जल में श्वेत निस्साद बने तो प्रांगार विद्यमान है अन्यथा नहीं। यदि संयोग में उदजन भी है तो नाल के शीतल भाग पर जल की बूँदे देख पड़ेंगी (चित्र १०)।

भूयाति, लवणजन और शुल्बारि का उपलम्भन—एक छोटे शुष्क परीक्षण नाल को वक्रभाँड़ स्थाम (retort stand) पर संधर (clamp) से ढीला लटका दो। इस नाल में मटर के दाने के आधे परिमाण का क्षारातु (sodium) के टुकड़े को पावपत्र (filter paper), से सुखाकर डाल दो। अब थोड़ा प्रांगारिक संयोग (प्रायः ० ०१ धान्य) को इसमें रखकर पहले धीरे-धीरे, पीछे तीव्रता से तपाओ और प्रायः एक कला तक रक्त-उष्ण रखो। उष्णही नाल को चीन-मृत्स्ना शराव के शीतल जल (२० सि० स्थ०) में डुबा दो। वह नाल टूट-फूट जायगा। उसका अविकृत (unchanged) क्षारातु पानी में घुल जायगा। उसे अब उबालकर छान लो। इस पावित (filtrate) को भूयाति, लवणजन और शुल्बारि के उपलम्भन में प्रयुक्त करो।

भूयाति का उपलम्भन—उपर्युक्त विलयन के २ सि० स्थ० में अवस्य शुल्बीय के शीतल अनुविद्ध विलयन का आधा सि० स्थ० डालो और लगभग एक कलातक उबालकर ठोंटी के जल से ठण्डा करो। ठण्डा होने पर अयधिक नीरेय (ferric chloride) को एक

दो बूँदे विलयन डालकर फिर संकेन्द्रित उदनीरिक अम्ल (hydrochloric acid) बूँद बूँद तब तक डालो जब तक बभ्रु (brown) निस्साद लुप्त और विलयन अम्लिक न हो जाय। यदि भूयाति विद्यमान है तो न्यूनील (Prussian blue) का निस्साद अथवा हर्यानील (bluish green) रंग प्राप्त होगा। यदि विलयन हरा हो तो उसे पावपत्र पर छान लो। पावपत्र पर नीला निस्साद प्राप्त होगा जो भूयाति की उपस्थिति का द्योतक है। यदि भूयाति अनुपस्थित है तो विलयन पीला रहेगा।

यहाँ निम्न क्रियाएँ होती हैं। क्षारातु प्रांगारिक संयोग के प्रांगार और भूयाति के साथ उष्णताप पर क्षारातु श्यामेय (sodium cyanide) बनता है। अविकृत (unchanged) क्षारातु जल के साथ क्षारातु उदजारेय बनता है। अयस्य शुल्बीय (ferrous sulphate) के डालने से पहले अयस्य उदजारेय का निस्साद प्राप्त होता है। यह तब क्षारातु श्यामेय के साथ मिल कर क्षारातु अयस्य श्यामेय (sodium ferrocyanide) बनता है, अम्लिक विलयन में यह अयसिक नीरेय के साथ न्यूनील (Prussian blue) बनता है।

क्ष + प्र + भू = क्षप्रभू (क्षारातु श्यामेय)

$२ \text{ क्ष} + २ \text{ उ}_२ \text{ ज} = २ \text{ क्षजउ} + \text{उ}_२$

क्षारातुउदजारेय

$\text{अशुज}_४ + २ \text{ क्षउज} = \text{अ} (\text{ज उ})_२ + \text{क्ष}_२ \text{ शु ज}_४$

अयस्य उदजारेय

$६ \text{ क्ष प्र भू} + \text{क्ष ज उ} = \text{क्ष}_४ \text{ अ} (\text{प्र भू})_६ + २ \text{ क्ष ज ऊ}$

क्षारातु श्यामेय क्षारातुउदजारेय, क्षारातुअयस्यश्यामेय क्षारातुउदजारेय

$३ \text{ क्ष}_४ \text{ अ} (\text{प्र भू})_६ + ४ \text{ अनी}_३ = \text{अ}_४ [\text{अ} (\text{प्र भू})_६]_३ +$
१२ क्षनी (क्षारातु नीरेय) न्यूनील

न्यूनील (Prussian blue) क्षारक (alkalies) से विघट होता है। इससे जब तक विलयन क्षारिक (alkaline) रहता है तब तक न्यूनील नहीं बनता।

लवणजन (halogens) का अन्वेषण। प्रांगार संयोग में यदि कोई लवणजन है तो वह क्षारातु के साथ क्षारातु (sodium) लवणेय (halide) बनता है। यह क्षारातु लवणेय रजत भूयीय की प्रतिक्रिया से रजत लवणेय (silver halide) का निस्साद देता है।

१—यदि संयोग में भूजाति नहीं है तो क्षारातु के विलयन के १ शि० स्थ० को भूयिक अम्ल से अम्लिक बनाकर उसमें रजत भूयीय का विलयन डालते हैं। श्वेत, आपीत तथा पीत निस्साद से क्रमशः नीरजी (chlorine), दुर्गन्धी (bromine) व जंबुकी (iodine) का पता लगता है।

२—यदि संयोग में भूजाति है तो उपर्युक्त क्षारातु के विलयन में २ शि० स्थ० मन्द भूयिक अम्ल डालकर उदश्यामिक अम्ल (hydrocyanic acid) को निकाल डालते हैं। फिर रजत भूयीय का विलयन डालते हैं। अब यदि कोई निस्साद प्राप्त हो तो वह लवणजन की उपस्थिति का द्योतक है।

३—प्रांगार संयोग जब ताम्र जारेय के साथ पिनाल ज्वाला में तपाए जाते हैं तो ज्वाला का रङ्ग शुभ्र हरा (brilliant green) अथवा हरनील (bluish green) हो जाता है।

संपरीक्षा १२—५ अंगुल (inches) लम्बा एक प्रबल ताम्र-तन्तु (copper wire) को पिनाल ज्वाला में रखकर तब तक तपाओ जब तक वह कुछ जल न जाय। उसे कुछ ठंडा कर पर उसको किसी प्रांगार पदार्थ को स्पर्श कर उसे ले लो और फिर ज्वाला में तपाओ। पहले ज्वाला कुछ देर तक धूम्र जलेगी पीछे वह हरा अथवा हरनील हो जायगी। ये रङ्ग लवणजन की उपस्थिति के द्योतक हैं।

यह परीक्षण महातु तन्तु (platinum wire) से भी हो सकता है। इस तन्तु के छोर पर एक छोटी पाशी (loop) बनाकर उस पर ताम्र जारेय और प्रांगार संयोग के मिश्र को रखकर उसे तपाने से भी ज्वाला का वैसा ही रङ्ग होता है।

शुल्बारि का उपलम्भन। १—शुल्बारि का उपलम्भन भी अंगार पदार्थ के क्षारातु के साथ तपाने और उसमें क्षारातु भूयो-दश्यामेय (sodium nitroprusside) के नये तैयार विलयन के डालने से होता है। यदि शुल्बारि विद्यमान है तो इससे सुन्दर नीललोहित (violet) अथवा नीलारुण (purple) रङ्ग बनता है।

२—एक दूसरी रीति से भी शुल्बारि की उपस्थिति जान सकते हैं। क्षारातु से प्राप्त विलयन को स्वच्छ रजत टंक (coin) पर डालने से शुल्बारि के कारण रजत रजत शुल्बेय (sulphide) के बनने से काला हो जाता है।

इन संपरीक्षाओं में प्रांगारिक संयोग के शुल्बारि क्षारातु के साथ मिलकर शुल्बेय बनाता है, यह क्षारातु शुल्बेय क्षारातु भूयोदश्यामेय के साथ नीलारुण रङ्ग का एक संयोग बनाता है। यह नया रङ्गीन संयोग जटिल होता है और इसके निबन्ध (composition) का ठीक ठीक ज्ञान हमें नहीं है।

३—एक सर्वथा दूसरी रीति से भी शुल्बारि की उपस्थिति का ज्ञान हो सकता है। यदि प्रांगारिक संयोग के एक भाग को क्षारातु प्रांगारीय (sodium carbonate) और क्षारातु अतिजारेय (sodium peroxide) अथवा दहातु भूयीय (potassium nitrate) के समभाग को रूपक मूषा (nickel crucible) में रखकर पहले मन्द मन्द और पीछे प्रचण्ड आँच से ऐसा तपाओ कि उसका प्रारम्भिक द्रवण (incipient fusion) हो जाय। अब उसे ठण्डा कर पानी से निस्सारण (extract) कर मन्द उद-नीरिक अम्ल से अम्लिक बनाकर छान लो। विलयन में अब हर्यातु नीरेय (barium chloride) डालकर शुल्बीय का परीक्षण करो।

भास्वर का उपलम्भन। भास्वर के उपलम्भन के लिये प्रांगा[रिक] संयोग के एक भाग को क्षारातु प्रांगारीय के ४ भाग और क्षारा[तु] अतिजारेय के ५ भाग के साथ मिलाकर रूपक मूषा में पहले धी[रे] धीरे और पीछे प्रचण्डता (strongly) से प्रायः १० कला त[क]

तपाने से यदि भास्वर विद्यमान है तो वह भास्वीय में परिणत हो जाता है। इस भास्वीय की तब साधारण रीति से संभ्रणीय (molybdate) परीक्षण से परीक्षा करते हैं।

धातु का उपलम्भन। उत्पत धातुओं जैसे नेपाली, अञ्जन और पारद के अतिरिक्त अन्य धातुओं का परीक्षण प्रांगारिक संयोग के प्रचण्ड उत्तापन (ignition) से होता है। इससे धातुएँ जारेय के रूप में अवशेष रह जाती हैं। इस अवशेष को तब मन्द उदनीरिक अथवा भूयिक अम्ल में घुलाकर साधारण रीति से धातुओं का परीक्षण करते हैं।

प्रश्न

१—किसी प्रांगारिक संयोग में (१) प्रांगार और (२) उदजन की उपस्थिति कैसे जानोगे।

२—किसी प्रांगारिक संयोग में भूयाति की उपस्थिति का ज्ञान कैसे प्राप्त होता है। इस विधा में जो रसायनिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं उनकी स्पष्टतया व्याख्या करोगे।

३—(१) भूयाति की उपस्थिति में, (२) भूयाति की अनुपस्थिति में, किसी प्रांगारिक संयोग में लवणजन का कैसे परीक्षण करोगे।

४—एक ऐसी रीति का वर्णन करो जिससे तुम किसी प्रांगारिक संयोग में शुल्बारि और भास्वर की उपस्थिति का ज्ञान प्राप्त करोगे।

अध्याय—४

तत्त्वों का आगणन (Estimation)

प्रांगार रसायन में तत्त्वों के उपलम्भन के पश्चात् उनकी सापेक्ष मात्राके आगणन की आवश्यकता पड़ती है। दूसरे शब्दों में संयोग के निबन्ध (composition) की प्रतिशतता (percentage) निकालनी चाहिए। इस ग्रन्थ में हम केवल प्रांगार, उदजन, भूयाति, जारक, लवणजन और शुल्बारि के आगणन का ही वर्णन करेंगे। प्रांगारिक संयोगों के जारक के आगणन की कोई अव्यवधान (direct method) ज्ञात नहीं है। इसका आगणन परोक्ष (indirect) रीति से ही होता है।

प्रांगार और उदजन का आगणन। एक ही संपरीक्षा से प्रांगार और उदजन दोनों के आगणन होते हैं। इस रीति को दहन विश्लेषण (combustion analysis) कहते हैं। इस रीति के मूल आविष्कारक लीबी नामक रसायनज्ञ थे यद्यपि उनकी रीति में पीछे अनेक सुधार हुए। इस रीति में प्रांगारिक संयोग की एक निश्चित मात्रा को वायु अथवा जारक में जलाकर प्रांगार द्वि-जारेय और जल बनाते हैं। जल को अजल चूर्णातु नीरेय (anhydrous calcium chloride) में अथवा शुल्बारिक अम्ल से भिगोया झामक (pumice) में और प्रांगार द्वि-जारेय को (carbon dioxide) दाहसर्जि (caustic potash) तथा क्षारचूर्णक में प्रचूषित (absorb) कर उन्हें तौलकर उनका भार ज्ञात करते हैं। इससे उनका प्रतिशतता निबन्ध निकालते हैं।

दहन विश्लेषण के साधित्र के निम्न अङ्ग होते हैं।

(१) दो वाति-आशय (gas reservoir), एक में जारक और दूसरे में वायु रहती है।

२—एक शोधक (purifying) साधित्र जिसमें जारक अथवा वायु को प्रांगार द्वि-जारेय और जल से रहित किया जाता है।

३—एक वाति भ्राष्ट्र (gas furnace) जिसमें दहन-नाल (combustion tube) को तपाते हैं।

४—एक प्रचूषण साधित्र जिसमें जल और प्रांगार द्वि-जारेय को प्रचूषण कर उनका भार जानते हैं।

वाति आशय धातु अथवा काँच के बड़े-बड़े वातिधि (gas holder) अथवा चूषित कूपी (aspirator bottle) होते हैं। शोधक साधित्र में साधारणतया ऊर्ध्वबाहु (U-tube) नाल और दो प्रचूषक कूपियाँ समानान्तर में काष्ठ स्तम्भ पर रखी होती हैं। ऊर्ध्व-बाहु नाल में विक्षार-चूर्णक (soda-lime) अथवा सान्द्र दह सर्जि (caustic-potash) रखा होता है। इसमें प्रांगार द्वि-जारेय प्रचूषित हो जाता है। दूसरी कूपी से वाति के प्रवाह की गति का भी ज्ञान होता है (चित्र ११)।
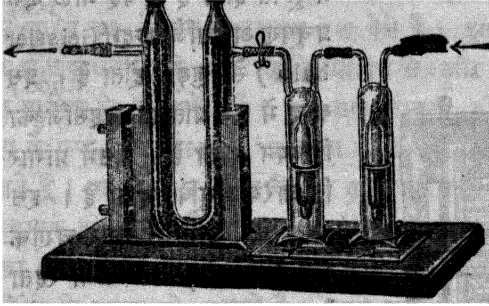
चित्र ११

दहन नाल (combustion tube) एक विशेष काँच का होता है। इसकी लम्बाई प्रायः ८०-९० शि० मा० और इसके छेद का अभ्यन्तर व्यास प्रायः १ शि० मा० होता है। यह इतना लम्बा होना चाहिए कि भाष्ट्र की दोनों ओर प्रायः ५ शि० मा० इसका छोर बाहर निकला रहे। नाल का अधिकांश भाग स्थूल ताम्र जारेय से भरा होता है। चीनमृत्स्ना अथवा महातु की एक नौका में प्रांगार संयोग की एक निश्चित मात्रा (सूक्ष्म) ताम्र जारेय के साथ मिलाकर नाल के एक ओर रख उसके पश्चात् ताम्र-जाली का वेल्लन (roll) रखते हैं। यह ताम्र-जाली ताम्रजारेय में पूर्णतः जारित होता है। ये

ताजा ताजा ताबा
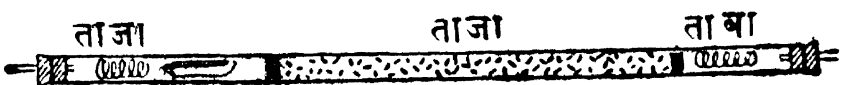
चित्र १२

सब सामग्री दहन-नाल में कैसे रखी जाती है यह चित्र से स्पष्ट हो जाता है। दहन नाल को गोलाई वाले आयस द्रोणी के अदह (asbestos)

स्तर पर रखते हैं (चित्र १२)। नाल के एक छोर को शोधक साधित्र से और दूसरी छोर को प्रचूषण साधित्र से जोड़ते हैं। प्रचूषण साधित्र में एक ऊर्ध्ववाह नाल होता है जिसमें अजल चूर्णातु नीरेय रखा होता है। इसमें जल प्रचूषित होता है। यह नाल एक प्रचूषण अपिसर्जि कन्द (Geissler bulb) से जुड़ा होता है। इस कन्द में ५० प्रतिशत दहसर्जि का विलयन रहता है। इसमें प्रांगार द्वि जारेय प्रचूषित होता है। इस कन्द से एक विक्षार-चूर्णक (soda-lime) नाल लगा रहता है। यह बाह्य वायु के जल और प्रांगार द्वि-जारेय का प्रचूषण करता है (चित्र १४)।
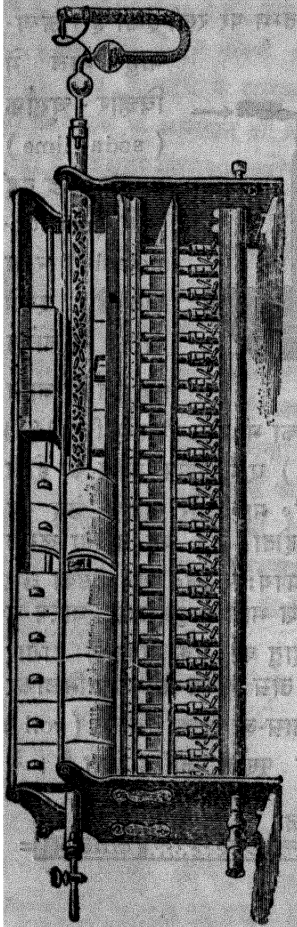
चित्र १३

दहन विधा—दहन आरम्भ करने के पूर्व दहन-नाल के ताम्र जारेय और ताम्र-जाली वेल्लन को भ्राष्ट्र में तपाकर पूरा सुखा
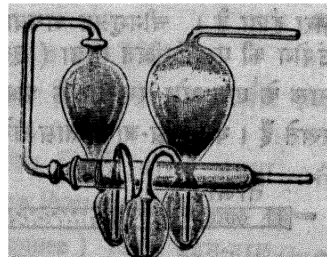
चित्र १४

लेते हैं। सुखाने के समय वायु के मन्द-मन्द प्रवाह को वाति-आशय

से उसमें बहाते हैं। २० कला तक तपाने के पश्चात् वायु के प्रवाह को बन्द कर भाष्ट्र पर ही उसे ठण्डा होनेको छोड़ देते हैं (चित्र १३)।

अब प्रांगारिक संयोग की अल्प मात्रा (०·१५ से ०·२ ०·२० ग्रा) को बड़ी सावधानी से नौका में तौलकर, सूखा सूक्ष्म ताम्रजारेय डाल और मिलाकर शीघ्रता से दहन-नाल में रख देते हैं। नौका को रखकर ताम्र जारेय का वेल्लन यथास्थान रख देते हैं। इस नाल का एक छोर शोधक साधित्र के द्वारा वाति-आशय से और दूसरा छोर प्रचूषण साधित्र से जोड़ देते हैं। जब सब सम्बन्ध ठीक हो जाय तब वायु के मन्द-मन्द प्रवाह को प्रवाहित करते और नाल को धीरे धीरे तपाते हैं। सबसे पहले नौका से दूर ताम्र जारेय के नीचे के एक व दो दाहक को जलाते हैं और जब वह रक्तोषण हो जाय तब धीरे-धीरे नौका की ओर वाले दाहक को क्रमशः जलाते जाते हैं। अन्त में नौका के नीचे के दाहक को जलाते हैं। पहले वायु के प्रवाह में धीरे-धीरे दहन होने देते हैं। अन्त में वायु के स्थान में जारक प्रयुक्त कर १० से १५ कला तक दहन होने देते हैं।

कुछ तो जारक से और कुछ ताम्र जारेय से प्रांगार संयोग पूर्णतया जारित हो प्रांगार द्विजारेय और जल बनाता है। जल अजल चूर्णातु नीरेय में और प्रांगार द्वि जारेय सर्जिकन्द (potash bulb) में प्रचूषित हो जाता है। २ से ३ घण्टे में यह दहन समाप्त होता है। अब प्रचूषण साधित्र को निकाल कर ऊर्ध्वबाहु नाल और प्रचूषक (absorber) को अलग अलग तौलते हैं। इससे जल और प्रांगार द्विजारेय का भार ज्ञात हो जाता है।

विधा में सुधार। प्रांगारिक संयोग में यदि भूयाति, लवणजन और गुल्बारि हैं तो उपर्युक्त विधा में सुधार की आवश्यकता पड़ती है। इन तत्त्वों के दहन से उनके जारेय बनते हैं और ये जारेय दहउर्जि में प्रचूषित हो प्रांगार द्विजारेय की मात्रा बढ़ा देते हैं। इन इन तत्त्वों के जारेय को बनने से रोकने के लिए निम्नलिखित यत्न करते हैं। दहन-नाल के छोर में एक ताम्र-तन्तुका वेल्लन (copper

wire roll) रख लेते हैं। यह वेष्ठन रक्तोष्ण (red hot) दशा में रहता है। भूयाति यदि जारेय बने तो यह उष्ण ताम्र जारेयको विवद्ध कर भूयाति में परिणत कर देता है। यह भूयाति दहसर्जि से होकर वायु में निकल जाता है, सर्जि में प्रचूषित नहीं होता। यदि शुल्वारि और लवणाजन विद्यमान हैं तो ताम्रजारेय के साथ सीसवर्णीय (lead chromate) मिला देनेसे शुल्वारि अनुत्पत सीस शुल्वेय और लवणाजन अनुत्पत सीस लवणेय में परिणत हो दहन नाल में ही रह जाते हैं। लवणाजनके लिए ताम्रजाली वेष्ठन के स्थान में रजतजाली वेष्ठन प्रयुक्त हो सकता है। इससे लवणाजन अनुत्प्रत रजत लवणेय में परिणत हो जाते हैं।

भूयातिका आगणन। प्रांगार संयोगों में दो रीतियों से भूयाति का आगणन होता है। एक को परिमा (Dumas method) रीति और दूसरे को अपिभूति (Kjeldahl) रीति कहते हैं। परिमा रीति में प्रांगार के संयोग को दहन कर भूयाति में परिणत कर भूयाति की परिमा से (volume) भूयाति की मात्रा का आगणन करते हैं। यह रीति सर्वव्यापक (universal) है और इससे अधिक यथार्थ परिणाम भी प्राप्त होता है पर इसमें अधिक समय लगता है और अधिक सतर्कता (attention) और सावधानी (care) रखनी पड़ती है एक मनुष्य केवल एक ही संपरीक्षा कर सकता है। अपिभूति रीति में प्रांगारिक संयोग के भूयाति को तिक्ताति में परिणत कर उसकी मात्रा ज्ञात करते हैं। इस रीति की उपयोगिता सीमित है। पर यह अधिक सरल है और सरलता से सम्पादित हो जाती है। एक मनुष्य अनेक संपरीक्षाएँ साथ साथ कर सकता है। परिमा रीति साधारणतया शुद्ध प्रांगार विश्लेषण में और अपिभूति रीति दैहिक, कृषि और उद्योग स्थानों में प्रयुक्त होती है।

परिमा रीति। यह संपरीक्षा दहननाल के द्वारा दहनभ्राष्ट्र में होती है। यहाँ भी दहननाल में ताम्रजारेय भरा होता है। प्रांगारिक संयोग की निश्चित मात्रा सूक्ष्म ताम्रजारेय के आधिक्य (excess) के

साथ दहन-नाल में रखी जाती है। पूर्व की भांति जारित ताम्रजाली का बेलन यहां भी यथास्थान रहता है। नालके दूसरे छोर में प्रक्षालित ताम्रतन्तु की जाली का बेलन रखा होता है। प्रांगार द्वि-जारेयका प्रवाह एक ओर से प्रवहित होता है। यह प्रांगार द्वि-जारेय क्षारातु द्वि-आंगारीय अथवा भ्राजातु प्रांगारीय के तपाने से वापिवाति जनित्र (Kipp's apparaus) से प्राप्त होता है। नालके दूसरे छोर में भूय-मान (nitrometer) जोड़ा होता है (चित्र१५) इस भूयमानमें ५० प्रतिशत दहसर्जि-का विलयन रखा होता है। संपरीक्षा प्रारंभ करने से पूर्व साधित्र से वायु रहित प्रांगार द्वि-जारेय प्रवाहित कर सारा भूयाति निकाल लेते हैं। दहन-नाल को अब उसी प्रकार तपाते हैं जैसे प्रांगार और उदजन के आगणन में करते हैं।
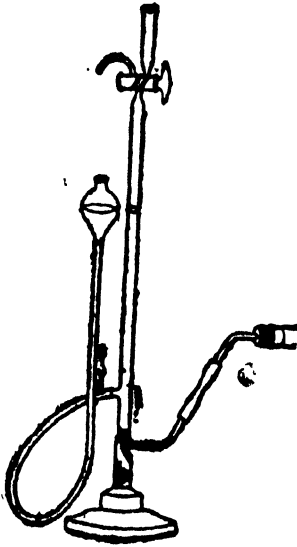
चित्र १५

दहन से जितने सृष्ट बनते हैं भूयाति के अतिरिक्त और सब दहसर्जि में प्रचूषित होते है। केवल भूयाति भूयमान के दहसर्जि के विलयन के ऊपर इकट्ठा होता है। जब भूयाति का निकलना बन्द हो जाय तब उसकी परिमा और ताप लिख लेते हैं। भूयाति की परिमा से भूयाति का भार प्राप्त होता है और उससे भूयाति की प्रतिशतता निकलती है (चित्र १६) ।

चित्र १६

अपिभूति रीति। इस रीति में संयोग की निश्चित मात्रा को संकेन्द्रित शुल्वारिक अम्ल के आधिक्य (excess) में अपिभूति पलिघ में रखकर

उसके बुद्बुदांक के कुछ नीचे तापांश तक तपाते हैं। (चित्र१७)। विघन्वन की गति को बढ़ाने के लिए शुल्बारिक अम्ल में थोड़ा दहातु शुल्बीय व दहातु द्वि-शुल्बीय डाल देते हैं। इससे तरल का बुद्बुदांक कुछ बढ़ जाता है। इससे प्रांगारिक संयोग शीघ्र पूर्ण रूप से विबद्ध हो भूयाति तिक्ताति में परिणत हो शुल्बारिक अम्ल के साथ तिक्तातु शुल्बेय बनता है। अब सृष्ट को प्रचुर दह सर्जि के साथ साधते (treat) हैं (चित्र १८)।
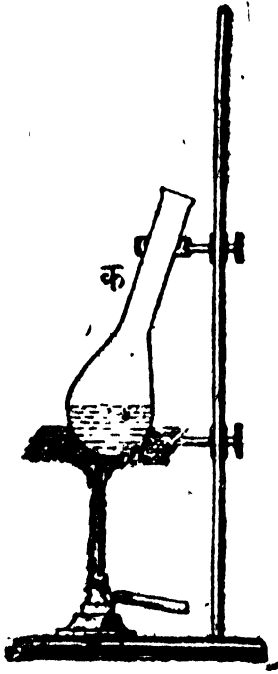
चित्र १७

इससे तिक्ताति उड़ कर संघनक में संघनित हो शुल्बारिक अम्ल के प्रमाण विलयन (standard solution) की ज्ञात परिमा में आती है। तिक्ताति शुल्बारिक अम्ल के कुछ अंश को क्लीब (neutralise) बना देती है और कुछ शेष रह जाती है। इस अवशिष्ट अम्ल की मात्रा को परिमा-मितीय विश्लेषण (volumetric analysis) से ज्ञात करते हैं। उससे फिर भूयाति की प्रतिशतता निकालते हैं।
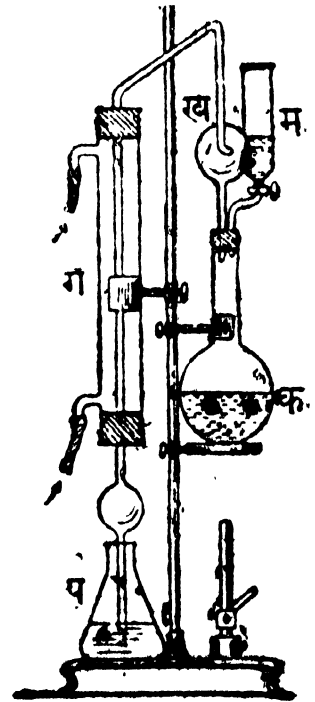
चित्र १८

लवणजन का आगमन। लवणजन के आगणन में जो रीति व्यवहृत होती है उसे भाशुल रीति (Carius method) कहते हैं। इस रीति में प्रांगार संयोग के ०-२ ग्रा० को एक छोटे कांचनाल में तौलते हैं। इस नाल को तब सावधानी से एक

दूसरे प्रबल कांच-नाल में रख देते हैं। इस कांचनाल को 'भाशुल नाल' (Carius tube) कहते हैं। यह एक विशेष प्रकार के कांच का बनाहोता है (चित्र १९)। एक ओर बन्द होता है। इसमें ३से ४ सि० स्थ० सधूम (fuming) भूयिक अम्ल और रजत भूयीय के कुछ स्फट रखे रहते हैं। यदि सावधानी से रखा जाय तो अम्ल और संयोग एक दूसरे के संसर्ग में तब तक नहीं आते जब तक आने न दिया जाय। भाशुल नाल के दूसरे छोर को अब सावधानी से संमुद्रित (seal) कर एक विशेष प्रकार के भ्राष्ट्र में जिसे 'सम्फोट' (bomb)

(चित्र १९)
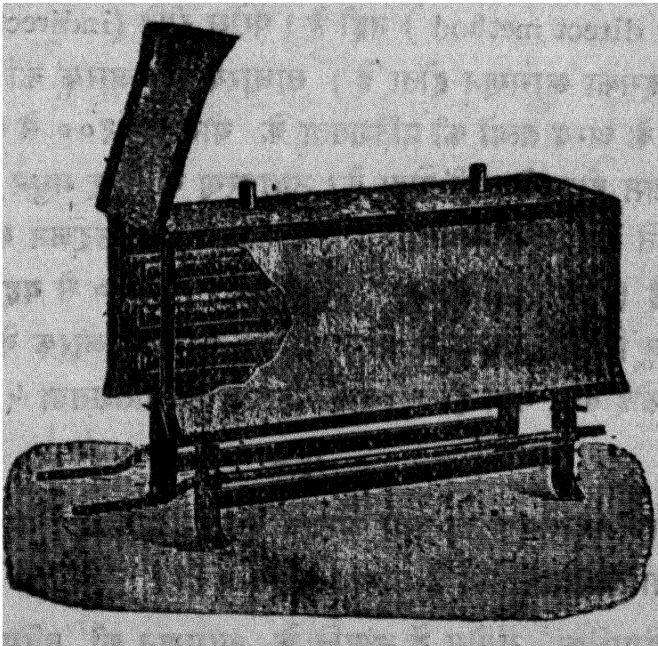
चित्र २०

भ्राष्ट्र (चित्र २०) कहते हैं रखकर प्रायः २५०° श०तक ५ से ६ घण्टे तक तपाते हैं। इसे तब धीरे-धीरे ठण्डा कर नाल को बड़ी सावधानी

से खोलते हैं। इसमें बने रजत लवणेय को निकाल और इकट्ठा कर धोते, सुखाते और तौलते हैं। इस रजत लवणेय की मात्रा से लवणजन की प्रतिशतता निकालते हैं।

शुल्बारि का आगणन। शुल्बारि का भी लवणजन की भांति ही आशुल रीतिसे आगणन होता है। भेद केवल यही है कि रजत भूयीय के स्थान में इर्यातु नीरेय का प्रयोग होता है। इससे शुल्बारि शुल्बारिक अम्ल में परिणत हो अविलेय इर्यातु शुल्बीय का श्वेत निस्साद देता है। इसे निकाल, और सुखाकर तौल लेते हैं। इससे शुल्बारि की प्रतिशतता निकालते हैं।

जारक का आगणन। जारक के आगणन की कोई अन्यवधान रीति (direct method) नही है। परोक्ष रीति (indirect method) से ही इसका आगणन होता है। साधारणतया जारक की प्रतिशतता संयोग के अन्य तत्वों की प्रतिशतता के योग को १०० से घटाने से जो अंक प्राप्त होता है वही होता है। उदाहरण के लिए मधुम (glucose) ले सकते हैं। मधुम में प्रांगार ३९.९ प्रतिशत और उदजन ६.७ प्रतिशत होता है। इन दोनों का योग ४६.६ हुआ। १०० से यह ५३.४ कम है। चूंकि इस संयोग में प्रांगार, उदजन और जारक के अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व नही होता। इससे जारक की प्रतिशतता ५३.४ हुई।

प्रश्न

१—दहन विश्लेषण का क्या आशय है! इसके लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है उनका वर्णन करो।

२—प्रांगारिक संयोग में भूयाति के आगणन की परिमा रीति का संक्षेप में वर्णन करो।

३—अपिभूति रीति से भूयाति का आगणन कैसे होता है। इस रीति का सिद्धान्त क्या है।

४—प्रांगरिक संयोग में लवणजन के आगणन की आशुल रीति का वर्णन करो।

क्या यह रीति शुल्बारि के आगणन में भी प्रयुक्त हो सकती है। यदि हाँ, तो कैसे?

५—प्रांगारिक संयोगों में जारक का आगणन कैसे होता है।

अध्याय ५

मात्रिक सूत्र (Empirical formula) और व्यूहाणु सूत्र (Molecular formula)

मात्रिक सूत्र—किसी प्रांगारिक संयोग का मात्रिक (simplest) सूत्र वह सरलतम सूत्र है जो उसके निबन्ध की प्रतिशतता का द्योतक है। इस सूत्रसे व्यूहाणु के विभिन्न तत्त्वों की निष्पत्ति का ही ज्ञान होता है। यह संयोग के तत्त्वों की प्रतिशतता से निकाला जाता है। प्रतिशतता से सूत्र निकालने की विधि निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी।

उदाहरण—विश्लेषण से मधुम (glucose) के निबन्ध की प्रतिशतता निम्न लिखित है। मधुम का मात्रिक सूत्र निकालो।

प्रांगार = ३९·९%

उदजन = ६·७%

जारक (अन्तर से) (By difference) = ५३·४%

तत्वों की प्रतिशतताओं को प्रत्येक तत्व के परमाणु भार से भाजन करते हैं। इससे जो संख्याएँ प्राप्त होती हैं वे तत्वों की सापेक्ष संख्याओं के निष्पत्ति (ratio) में होती हैं।

$$\text{प्रांगार की संख्या} \frac{३९·९}{१२} = ३·३२$$

$$\text{उदजन की संख्या} \frac{६·७}{१} = ६·७०$$

जारक की संख्या $\frac{५३·४}{१६}$ ३·३४

चूँकि परमाणुवाद (atomic theory) के अनुसार परमाणु के संख्याओं का विभाजन नहीं हो सकता, अतः इन अङ्कों को सबसे छोटे अङ्क से भाजन करते हैं। इस प्रकार भाजन करने से निम्न संख्याएँ प्राप्त होती हैं।

$$\frac{३·३२}{३·३२} = १ \quad \frac{६·७०}{३·३२} = २ \quad \frac{३·३४}{३·३२} = १$$

अतः मधुम का मात्रिक सूत्र हुआ प $क_२$ ज।

यदि ये संख्याएँ किसी संयोग में पूर्णांक न हों तो उन सब अङ्कों को किसी संख्या २,३ अथवा ४ से गुणन कर पूर्णाङ्क में लाते हैं। यदि किसी अङ्क का पूर्णाङ्क से अत्यल्प अन्तर हो तो उसका निकटतम पूर्णाङ्क ले लेते हैं। जैसे १·९८ के स्थान पर २ ले लेते हैं।

व्यूहाणु सूत्र—किसी संयोग का व्यूहाणु सूत्र वह सूत्र है जो व्यूहाणु के परमाणुओं की पूर्ण संख्या का द्योतक है। इससे व्यूहाणु के परमाणुओं की पूरी संख्या का ज्ञान होता है। इस सूत्र के निकालने के लिए व्यूहाणु भार का ज्ञान आवश्यक है। अनेक रीतियों से व्यूहाणु भार निकाले जाते हैं। अधिक महत्व की रीतियों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं एक भौतिक रीतियाँ, दूसरी रसायनिक रीतियाँ। भौतिक रीतियों के फिर ३ अन्तर्विभाग हैं, (१) बाष्पघनता रीति (vapour density method), (२) श्यानेक्षीय रीति (cryoscopic method) और (३) बुदबुदेक्षीय रीति (ebullioscopic method)।

बाष्पघनता रीति। बाष्पघनता रीति से व्यूहाणु भार के निश्चयन का आधार व्यूहाणु संख्या की उपकल्पना (Avogadro's hypothesis) है। व्यूहाणु संख्या उपकल्पना (hypothesis)

यह है कि ताप और निपीड की सम अवस्थाओं में वातियों (gases) की सम परिमा में व्यूहाणुओं की संख्या सम रहती है। इस उपकल्पना से यह परिणाम निकलता है कि यदि हम सम ताप और सम निपीड पर दो वातियों की सम परिमा को तौलें तो वातियों का भार उनकी सम संख्या के व्यूहाणु भार की निष्पत्ति में होगा।

दो वातियों की सम परिमा के भार उन वातियों की सापेक्षघनता की निष्पत्ति में होते हैं। वातियों की सापेक्षघनता के लिए उदजन एकक माना गया है। अतः उदजन को एकक (unit) मान लेने पर किसी वाति की सापेक्षघनता वास्तव में उदजन के व्यूहाणु-भार की तुलना से उस वाति का व्यूहाणुभार हुआ। हमें ज्ञात है कि उदजन का व्यूहाणुभार २ है। इस कारण वाति का व्यूहाणुभार उसकी सापेक्षघनता का दुगुना होगा।

$$\frac{\text{किसी वाति की क्ष परिमा का भार}}{\text{उदजन की क्ष परिमा का भार}} = \frac{\text{वाति के 'क' व्यूहाणु का भार}}{\text{उदजन के 'क' व्यूहाणुभार}}$$

(व्यूहाणु संख्या उपकल्पना के अनुसार)

$$\frac{\text{वाति के १ व्यूहाणु का भार}}{\text{उदजन के १ व्यूहाणु का भार}} = \frac{\text{वाति का व्यूहाणुभार}}{\text{उदजन का व्यूहाणुभार}} = \text{वाति}$$

की सापेक्षघनता।

(उदजन को एकक मान लेने पर)

$$\text{अतः } \frac{\text{वाति का व्यूहाणुभार}}{\text{२ (उदजन का व्यूहाणुभार)}} = \text{वाति की सापेक्षघनता}$$

अतः वाति का व्यूहाणु भार = सापेक्षघनता ×२

इस रीति से व्यूहाणुभार निकालने में हमें केवल वाति की सापेक्ष घनता निकालने की आवश्यकता है क्योंकि सापेक्षघनता का दुगुना व्यूहाणुभार होगा। अनेक रीतियों से वाति की सापेक्षघनता निकाली जा सकती हैं। इन रीतियों का सविस्तर वर्णन किसी भौतिक

रसायन के ग्रन्थ में मिलेगा। उत्पत प्रांगारिक संयोगों—सान्द्र और तरल दोनों—की सापेक्षघनता के निश्चयन के लिए प्रायः तीन रीतियाँ (१) परिमा रीति (२) हौफमैन की रीति (३) विक्टर मेयर की रीति प्रयुक्त होती हैं। यहाँ केवल विक्टर मेयर की रीति का ही वर्णन होगा क्योंकि अधिक प्रांगारिक संयोगों में यही रीति प्रयुक्त होती है।

विक्टर मेयर रीति। इस रीति से सापेक्षघनता निकालने में प्रांगारिक संयोग—सान्द्र अथवा तरल—की निश्चित मात्रा को उस संयोग के बुद्बुदाङ्क से प्रायः ३०° श० ऊपर शीघ्रता से वाष्प (vapour) में परिणत करते हैं। वह संयोग वाष्प बन वाति की एक निश्चित परिमा को धारण करता है। जिस साधित्र में वाष्प बनता है उसकी संवादिनी (corresponding) परिमा वायु को निकालती है। यह वायु जल के ऊपर साधारण (ordinary) ताप पर इकट्ठी की जाती है। यह स्पष्ट है कि वायु के स्थान में यदि वाष्प निकलता तो वाष्प की परिमा वायु की परिमा के सम ही होती। ऐसे प्राप्त अङ्कों से उस संयोग की वाष्पघनता निकलती है। वाष्पघनता का यह निश्चयन विक्टर मेयर (Victor Meyer's apparatus) साधित्र में (चित्र २१) किया जाता है। इसमें एक अन्तःपात्र (internal tube) (क) होता है जिसमें वायु भरी रहती है। इस पात्र में एक सूक्ष्म छेद का पार्श्वनाल (ख) लगा होता है जिसकी छोर द्रोणी (ग) के जल में डूबी रहती है। द्रोणी में पार्श्वनाल के छोर पर वायु की परिमा ज्ञात करने के लिए एक अङ्कित नाल (घ) उल्टा रखा होता है। (क) पात्र की वायु को उष्ण रखने के लिए किसी उपयुक्त तरल को उबालकर उसके वाष्प को वाह्य निचोल (Jacket) (च) में ले जाते हैं शिखर (crest) की त्वक्षा को हटाकर एक बहुत छोटी पिधित कूपी (stoppered bottle) में पदार्थ की निश्चित

मात्रा को तौलकर डाल देते और तब लवा को लगा देते हैं। पिचिल कूपी के गिरने से काँच का पात्र टूट न जाय इससे पात्र के बुध्न में शुष्क अदह का एक पतला स्तर लगा देते हैं।

क्षुद्र (small) कूपी का पदार्थ पलिघ को निकाल फेंकता और वाह्य निचोल के तापसे तबतक फैलता रहता जब तक वाष्प का ताप वाह्य निचोल के तापके बराबर न हो जाय। इस विस्तार के समय उतनी ही वायु पात्र से बाहर निकल कर अंकित नाल 'घ' में इकट्ठी होती है जितना वाष्प बनता है। जब वायु के बुल-बुले निकलना बन्द हो जाय तब वायु की परिमा, ताप और निपीड को लिख लेते हैं। इस रीति में लाभ यह है कि पदार्थ को किसी विशेष ताप पर तपाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल इसे ऐसा तपाना चाहिए कि वह पदार्थ शीघ्रता से वाष्प में परिणत हो जाय।
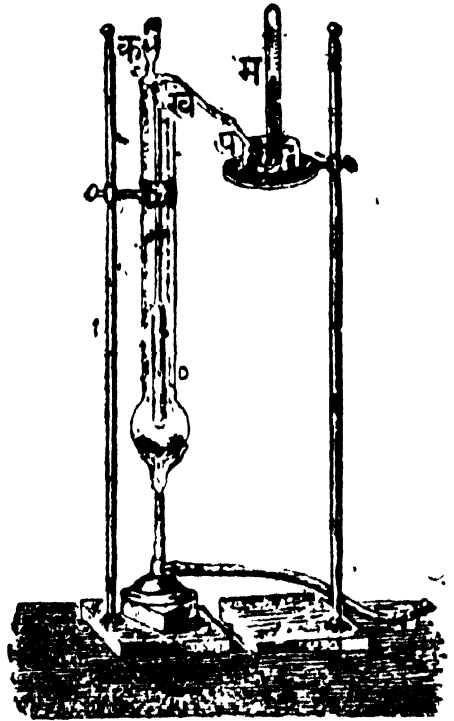
चित्र न० २१

निम्न उदाहरण से इसकी गणना की रीतिका ज्ञान होता है।

उदाहरण । ०·११५१ घा० नीरवम्रल मे १८° श० और ७७२ सि० मा० पर २३·६ सि० स्थ० वायु जल पर इकट्ठी होती है। १८° श० पर जल का वाष्प-निपीड १५ सि० मा० है। नीरवम्रल का व्यूहाणुभार निकालो।

७७२ सि० मा० वायु के निपीड और जल-वाष्प के निपीड से

बना हुआ है। जलवाष्प का निपीड १५ सि० मा० है। अतः केवल वायुका निपीड ७७२–१५ = ७५७ सि० मा० हुआ।

वायु तथा नीरवम्रल के वाष्प की परिमा ऋ० दा० नि० (ऋतुताप और निपीड, ०° श० और ७६० सि० मा० निपीड)

पर = $२३\cdot१ \times \frac{२७३}{२९१} \times \frac{७५७}{७६०}$ = २१·७ सि० स्थ०

उद्जनकी इसी परिमा (२१·७ सि० स्थ०) का भार = २१·७× ०·००००९ घा = ०·००१९५३ घा० हुआ

अतः नीरवम्रल की सापेक्ष घनता हुई = $\frac{०\cdot११५१}{०\cdot००१९५३}$ = ५८·९

अतः नीरवम्रल का व्यूहाणुभार हुआ ५८·९×२ अथवा ११७·८

इस रीति की उपयोगिता सीमित है क्योंकि यह उन्हीं पदार्थों के लिए प्रयुक्त हो सकती है जो बिना विबद्ध हुए वाति में परिणत हो सकते हैं। शर्करा और मिह सदृश पदार्थों का व्यूहाणुभार इस रीतिसे नहीं निकाला जा सकता क्योंकि तपाने से ये वाष्प नहीं बनते, विबद्ध हो जाते हैं। इन पदार्थों के व्यूहाणुभार के लिए अपिश्यान निम्नन (Raoult) रीति प्रयुक्त होती है।

अपिश्यान निम्नन रीति। शुद्ध जल ०° श० पर हिम बनता है। इसका श्यानांक ०° श० है। यदि जल में थोड़ी शर्करा घुला दी जाय तो वह विलयन ०° श० पर हिम न बनेगा। इसे हिम बनाने के लिए और अधिक ठण्ढा करना पड़ेगा। इस प्रकार जल में शर्करा के घुलने से जल का श्यानांक (freezing point) गिर जाता है। केवल शर्करा से ही जल का श्यानांक नहीं गिरता, अन्य विलेय पदार्थों से भी जल का श्यानांक गिर जाता है। इस सम्बन्ध में बड़ी सावधानी से अनेक संपरीक्षाएँ हुई हैं जिससे ज्ञात होता है कि तरल के श्यानांक के निम्नन दो घटनाओं पर निर्भर होते हैं।

पहली घटना यह है कि श्यानांक का निम्नन विलेय पदार्थ का अनू-पातुभागी (directly proportional) होता है। जितना निम्नन १ घा० शर्करा से होगा, तरल की इतनी ही परिमा में उसका दुगुना २ घा०, तिगुना, ३ घा० से होगा। दूसरी घटना यह है कि श्यानांक का यह निम्नन विलेय पदार्थ के व्यूहाणुभार पर निर्भर करता है। राउल्ट ने ऐसे निम्नन का विभिन्न विलायकों में अनेक प्रांगारिक संयोगों को घुलाकर अध्ययन किया और उससे वे निम्न परिणाम पर पहुँचे।

ऐसे विलयनों का सान्द्रीभावांक (solidifying point) एक ही होता है जिनमें विलायक की सममात्रा में विलेय के व्यूहाणुभार के अनुपात की मात्रा घुली हुई हो।"

अर्थात्

एक विलायक के सम-व्यूहाणुक विलयन के श्यानांक का निम्नन एक ही होता है।"

किसी तरल के १०० घा० में यदि किसी विलेय के एक घान्य-व्यूहाणु के विलयन में जो निम्नन (depression) होगा वह उस तरल के श्यानांक का व्यूहाणु-निम्नन (molecular depression) कहलाता है। यदि विलेय अविद्युदंश (non-electrolyte) है तो वह व्यूहाणु निम्नन किसी एक तरल के लिए स्थिर होता है। भिन्न भिन्न तरलों के लिए यह स्थिर भिन्न होता है।

जल का व्यूहाणु	निम्नन	१८.८°	श०
शुक्तिक (acetic) अम्ल	,,	३९	श०
धूपेन्य	,,	५१	श०
भूय धूपेन्य	,,	७१	श०
कपूर	,,	४००	श०

राउल्ट ने उपर्युक्त सिद्धान्त के लिए यह मान लिया था कि यह सिद्धान्त संकेन्द्रित विलयन के लिए भी लागू है पर वास्तव में यह

सिद्धान्त केवल मन्द विलयन के लिये ही लागू होता है। संकेन्द्रित विलयन के लिए न लागू होने पर भी यह विचार सुविधाजनक है क्योंकि इसके योग से हम संयोगों का व्यूहाणुभार निकालने में समर्थ होते हैं। व्यूहाणुभार के लिए हमे केवल ज्ञात संकेन्द्रण के मन्द विलयन का निम्नन निकालना होता है।

ऐसे अङ्कों से हम निम्न लिखित रीति से व्यूहाणुभार निकाल सकते हैं।

उदाहरण—०·७६ घा० द्वि-भूय धूपेन्य को २८·२ घा० शुक्तिक अम्ल में घुलाने से शुक्तिक अम्ल के श्यानांक में ०·६८° श० निम्नन पाया गया। शुक्तिक अम्ल का स्थिर ३९ है। द्वि-भूय धूपेन्य का व्यूहाणुभार निकालो।

मान लें कि द्वि-भूय धूपेन्य का व्यूहाणुभार 'अ' है। चूँकि २८·२ घा० शुक्तिक अम्ल में ०·७६ घा० पदार्थ विद्यमान है। अतः १०० घा० शुक्तिक अम्ल में उस पदार्थ की मात्रा होगी।

$$\frac{०·७६ \times १००}{२८·२} \text{ घा०}$$

१०० घा० शुक्तिक अम्ल में $\frac{०·७६ \times १००}{२८·२}$ घा० से श्यानांक में ०·६८° श० का निम्नन होता है।

अतः १०० घा० में 'अ' घान्य से निम्नन होगा।

$$\frac{०·६८ \times २८·२ \times अ}{०·७६ \times १०·०}$$

यह व्यूहाणु निम्नन ३९ के तुल्य है।

$$\text{अतः} \frac{०·६८ \times २८·२ \times अ}{०·७६ \times १००} = ३९$$

$$व \quad अ = \frac{३९ \times ०·७६ \times १००}{०·६८ \times २८·२} = १५४ \text{ (पूर्णांक में)}$$

अतः द्वि-भूय धूपेन्य का व्यूहाणुभार लगभग १५४ हुआ।

श्यानांक का निम्नन वास्तव में कैसे निकाला जाता है और इसमें कैसा उपकरण प्रयुक्त होता है इसका वर्णन किसी भौतिक रसायन के ग्रन्थ में मिलेगा।

बुद्बुदेक्षीय रीति (Ebullioscopic method)। विलयन में घुलकर संयोग केवल श्यानांक को ही गिराते नहीं वरन् बुद्बुदांक को भी उठाते हैं। शुद्ध जल साधारणतया १००° श० पर उबलता है पर यदि उसमें सामान्य लवण घुला हो तो ऐसा अनुविद्ध विलयन ११०° श० पर उबलता है। राउल्ट ने देखा कि श्यानांक के निम्नन में जो सिद्धान्त लागू होते हैं वही सिद्धान्त बुद्बुदांक के उन्नयन में भी लागू होते हैं। श्यानेक्षीय रीति की भाँति बुद्बुदेक्षीय रीति भी व्यूहाणुभार के निकालनेमें प्रयुक्त हो सकती है।

मधुम का व्यूहाणु सूत्र। दहन विश्लेषण से मधुम का मात्रिक सूत्र प्र ठ$_2$ज निकलता है। जल के मधुम विलयन के श्यानांक के निम्नन से ज्ञात होता है कि इसका व्यूहाणुभार प्रायः १७६ होगा। प्र उ$_2$ज को ६ से गुना करने से व्यूहाणुसूत्र प्र$_6$उ$_{12}$ज$_6$ प्राप्त होता है जिसका वास्तविक व्यूहाणुभार १८० होता है।

रसायनिक रीतियाँ। प्रांगारिक अम्लों और पीठों के व्यूहाणुभार रसायनिक रीतियों से निकाले जाते हैं। अम्लों को किसी धातु के लवण में परिणत करते हैं। साधारणतया रजत, सीस अथवा दस्तातु के लवण बनाए जाते हैं। रजत के लवण शीघ्र बनने, और जल में प्रायः अविलेय होने के कारण शीघ्र निस्त्रावित हो जाते हैं। इनमें स्फटन-जल भी नहीं होता और तपाने से वे शीघ्र विबद्ध भी हो जाते हैं। रजत लवणों के तपाने से रजत का अवशेष रह जाता है।

इससे रजत लवणों में रजत की प्रतिशतता निकालते हैं। रजत का समसंयुजभार ज्ञात होने के कारण अम्ल का समसंयुजभार सरलता से निकल जाता है। अब यदि अम्ल की पैठिकता (basicity) का ज्ञान हो तो अम्ल का व्यूहाणुभार निकल आता है।

उदाहरण। किसी एक-पैठिक (monobasic) अम्ल के रजत लवण के ०·५०७३ घा० तपाने से ०·२७८० घा० रजत प्राप्त होता है। अम्ल का व्यूहाणुभार निकालो।

अम्ल एक-पैठिक है, इससे रजत लवण के एक व्यूहाणु में रजत का केवल परमाणु विद्यमान है।

०·२७८० घा० रजत प्राप्त होता है ०·५०७३ घा० रजत लवण से

अतः १०८ घा० रजत प्राप्त होगा $\frac{०·५०७३ \times १०८}{०·२७८०}$ घा. रजत लवण से

अतः रतज लवण का व्यूहाणुभार हुआ $\frac{०·५०७३ \times १०८}{०·२७८०}$

अम्ल का व्यूहाणुभार हुआ $\frac{०·५०७३ \times १०८}{०·२७८०} - १०८ + १.$

$= ९०·०६$

अम्ल का व्यूहाणुभार निकालने के लिए निम्न सूत्र प्रयुक्त हो सकता है।

$$\text{अम्ल का व्यूहाणुभार} = \frac{\text{भ} \times १०८ \text{ पै०}}{\text{भ}} - १०८ \text{ पै०} + \text{पै०}$$

जहाँ बड़ा 'भ' (भ is abbreviation for भार) रजत लवण का भार, पै० अम्ल की पैठिकता और छोटा 'भ' रजत का भार है।

प्रांगारिक पीठों का व्यूहाणुभार उन्हें महातु के अविलेय द्विगुण लवण में परिणत कर निकालते हैं। ऐसे द्विगुण लवण का सूत्र

पि$_२$उ$_२$म नी$_६$ जहाँ प एकाम्लिक पीठ का एक व्यूहाणु ड उदजन म महातु और नो नीरजी है। निम्न समीकार (equation) से व्यूहाणुभार निकलता है।

$$\text{पीठ का व्यूहाणुभार} = \frac{\frac{\text{'भ'}\times १९५}{\text{भ}} - \text{उ}_२\text{म नी}_६}{२} = \frac{\frac{\text{'भ'}\times १९५}{\text{भ}} - ४१०}{२}$$

यहाँ बड़ा भ महातु लवण का भार और छोटा भ महातु का भार है।

प्रश्न

१—मात्रिक और व्यूहाणु सूत्र में क्या भेद है। किसी संयोग का मात्रिक सूत्र कैसे निकाला जाता है।

२—निम्न अङ्कों से किसी संयोग की प्रतिशतता निबन्ध निकालो। संयोग के ०·२३ घा० के दहन से ०·२४ घा० प्राङ्गार द्वि-जारेय और ०·२७ घा० जल प्राप्त होते हैं।

३—किसी प्राङ्गारिक तरल की बाष्प-घनता ३० है। इसके ०·२५० घा० के दहन से ०·५५०५ घा० प्राङ्गार द्विजारेय और ०·१००१ घा० जल प्राप्त होता है। इस संयोग का व्यूहाणु सूत्र निकालो।

४—निम्न प्रतिशतता निबन्ध से एक संयोग का मात्रिक सूत्र निकालो।

प्रांगार = १०·०%
उदजन = ०·८३%
नीरजी = ८९·१२%

यदि इस संयोग की बाष्प-घनता ६० है तो इसका व्यूहाणुभार क्या होगा।

५—मिह (urea) में प्रांगार, उदजन, भूयाति और जारक होते हैं। निम्न अङ्कों से इसका मात्रिक सूत्र निकालो।

संयोग के ०'३२१ ग्रा० के दहन से ०'२३६ ग्रा० प्रांगार द्वि-जारेय और ०'१९३ ग्रा० जल प्राप्त होते हैं।

संयोग के ०'१६० ग्रा० के दहन से ०'०७५ ग्रा० भूयाति प्राप्त होती है।

६—उत्पत्त संयोगों के व्यूहाणु भार के निश्चयन में व्यूहाणु संख्या उपकल्पना के उपयोग की स्पष्ट व्याख्या करो।

७—शर्करा सदृश अनुत्पत पदार्थों के व्यूहाणुभार के निश्चयन में क्या रीतियाँ प्रयुक्त होती हैं।

८—विक्टर मेयर की रीति से सान्द्रों और तरलों की बाष्प-घनता का निश्चयन कैसे होता है उसका संक्षेप में वर्णन करो।

अध्याय ६

संयुजता (Valency) और विन्यास सूत्र (Structural formula)

यदि हम उदजन और अन्य तत्वों के संयोगों के सूत्रों की परीक्षा करें तो देखेंगे कि अन्य तत्वों के एक परमाणु से उदजन के भिन्न-भिन्न संख्याओं के परमाणुओं से संयोग बनते हैं। तरस्विनी (fluorine) नीरजी, दुराघ्री और जंबुकी के एक एक परमाणु उदजन के एक परमाणु के साथ संयोग बनते हैं। ऐसे संयोगों के सूत्र क्रमशः उत, उनी, उदु, उजं हैं। जारक और शुल्वारि के एक एक परमाणु से उदजन के दो दो परमाणु संयुक्त हो संयोग बनते हैं। ऐसे संयोगों के सूत्र क्रमशः $उ_2ज$, $उ_2शु$ हैं। भूयाति, भास्वर और नेपाली के एक एक परमाणु से उदजन के तीन तीन परमाणु संयुक्त हैं। क्रमशः $भूउ_3$ $भउ_3$ और $नेउ_3$ सूत्रों के संयोग बनते हैं। प्रांगार और सैकता (silicon) के एक एक परमाणु से उदजन के चार चार परमाणु संयुक्त होते हैं और उनके संयोगों के सूत्र क्रमशः $प्रउ_4$ और $सैउ_4$ हैं।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक तत्व की एक निश्चित संयोजन शक्ति होती है। तत्वों के इस संयोजन शक्ति (combining power) को संयुजता कहते हैं। उदजन की संयुजता एक मानी गई है। इसी एक से अन्य तत्वों की संयुजता नापी जाती है। जिन तत्वों जैसे तरस्विनी, नीरजी, दुराघ्री और जंबुकी के एक परमाणु उदजन के एक परमाणु से संयुक्त होते हैं ऐसे तत्वों की संयुजता एक है और इन्हें एक-संयुज (monovalent) तत्व कहते हैं। तरस्विनी, नीरजी, दुराघ्री और जंबुकी एक-संयुज तत्व है। जिन तत्वों जैसे जारक और शुल्वारि के एक परमाणु उदजन के दो परमाणुओं से संयुक्त होते हैं उन्हें द्वि-

संयुज तत्व कहते हैं। जारक और शुल्वारि द्वि-संयुज (bivalent) हैं। इसी प्रकार भूयाति, भास्वर और नेपाली, त्रि-संयुज (trivalent) और प्रांगार और सैकता चतुःसंयुज (quadrivalent or tetravalent) हैं।

संयुजता तत्वों का एक स्थिर और निश्चित गुण नहीं है। कुछ तत्वों की संयुजता एक से अधिक है। कुछ संयोगों में अयस द्वि संयुज (ferrous), कुछ संयोगों में त्रि संयुज होता है। अयस्य लवणों में अयस् द्वि-संयुज और अयसिक लवणों में अयस् त्रि-सयुज होता है। तत्वों की संयुजता को कभी-कभी तत्वों के प्रतीक के पार्श्व में छोटी रेखाओं से अथवा कभी-कभी केवल बिन्दुओं से प्रदर्शित करते हैं। उदजन की एक संयुजता को उ– अथवा उ· से, जारक की संयुजता को –ज– अथवा ज= अथवा ·ज· अथवा ज: भूयाति की संयुजता को

\भू/ (with a third bond below) अथवा ·भू·, प्रांगार की संयुजता को —प्र— (with bonds above and below) अथवा ·प्र· (with dots above and below)

से लिखकर प्रदर्शित करते हैं। जब उदजन जारक के साथ मिलकर जल नामक संयोग बनता है तब उसे चित्र के रूप में उ–ज–उ लिखते,

भूयाति के साथ तिक्ताति बनता है। उसे

```
उ     उ
 \   /
  भू
  /
 उ
```

, प्रांगार के साथ प्रोदीन्य (methane) बनता है उसे

```
     उ
     |
उ—प्र—उ
     |
     उ
```

लिखते हैं।

विन्यास सूत्र (Structural formula)—तत्वों के प्रतीक के पार्श्व में जो छोटी रेखाएँ अथवा बिन्दुएं लिखी जाती हैं इसे साधारण

भाषा में बन्ध (bond) कहते हैं। इस बन्ध का रसायनिक बल (force) अथवा बन्धुता (affinity) से कोई सम्बन्ध नहीं। इस बन्ध से केवल यही प्रगट होता है कि तत्वों के बीच संबंध विद्यमान है। तत्वों के बीच रसायनिक बन्धुता की मात्रा से संयुजता का कोई संबंध नहीं। तरस्विनी और उदजन के बीच प्रबल बन्धुता (strong affinity) होने पर भी तरस्विनी की संयुजता एक है। भूयाति और उदजन के बीच कोई विशेष बन्धुता नहीं होती तो भी भूयाति की संयुजता तीन है।

साधारणतया तत्व एक दूसरे से ऐसे संयुक्त होते हैं कि उनकी संयुजता एक दूसरे से सन्तुष्ट हो जाय। ऐसे सूत्र को जिससे प्रदर्शित होता है कि व्यूहाणु में परमाणु कैसे संयुक्त है चित्र सूत्र (Graphic formula) अथवा विन्यास सूत्र (Structural formula) कहते हैं। ऐसे सूत्रों का निश्चयन प्रांगार रसायन के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रोदीन्य, दक्षुल सुषव, और प्रोदल दक्षु के विन्यास सूत्र निम्नलिखित होते हैं।

```
     उ             उ   उ                  उ       उ
     |             |   |                  |       |
 उ—प्र—उ      उ—प्र—प्र—ज उ,   उ —प्र—ज—प्र—उ
     |             |   |                  |       |
     उ             उ   उ                  उ       उ
```
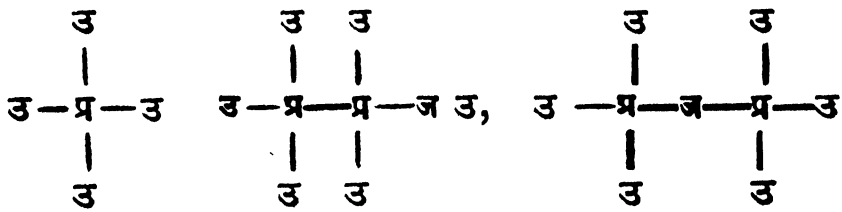
प्रोदीन्य (Methane) — दक्षुल सुषव (Ethyl alcohol) — प्रोदल दक्षु (Methyl ether)

संयुत मूल (Compound radical) । जल का विन्यास सूत्र उ—ज—उ है, इसमें से यदि उदजन के एक परमाणु को हटा लें तो —ज—उ बच जाता है। उदजन और जारक की इस समष्टि (group) को उदजारल (hydroxyl) मूल कहते हैं। यह उदजारल मुक्तावस्था (free state) में नहीं रहता क्योंकि इसमें जारक की एक संयुजता सन्तुष्ट (saturated) नहीं है पर अनेक संयोगों में यह पाया जाता है। अनेक संयोगों में पाये जाने के कारण तत्वों के

इस समष्टि को संयुजता प्रदान की गई है। यह उदजारल एक-संयुज समष्टि है। एक-संयुज तत्वों—जैसे दहातु, क्षारातु, नीरजी इत्यादि—के साथ मिलकर यह दह सर्जि (द ज उ), दहविक्षार (क्ष ज उ), उपनीर्य अम्ल (hypochlorous acid) (नी ज उ) इत्यादि सदृश संयोग बनता है। ऐसे संयोग वास्तव में होते हैं। तत्वों के ऐसे समूह (group) को जिन्हें हम अनेक संयोगों में पाते हैं और जिनकी अपनी निश्चित संयुजता होती है 'संयुत मूल' (Compound radical) कहते हैं। प्रांगारिक और अप्रांगारिक दोनों प्रकार के संयोगों में ऐसे संयुत मूल पाये जाते हैं। शुल्बारिक अम्ल का शुल्बीय शुज$_४$ (द्वि-संयुत), भूयिक अम्ल का भूयीय भूज$_३$ (एक-संयुत) और भास्वारिक अम्ल का भास्वीय भ ज$_४$ (त्रि-संयुत) अप्रांगारिक संयुत मूल है।

```
                                                        उ
                                                        |
प्रोदीन्य एक स्थायी संयोग है। इसका विन्यास सूत्र   उ—प्र—उ है।
                                                        |
                                                        उ
```
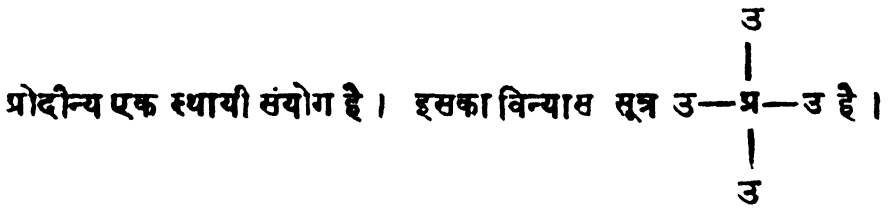
इसके व्यूहाणु से यदि एक उदजन हटा लें तो तत्वों के जो समूह (group) बच जाते हैं वह है —प्र उ$_३$। यह एक-संयुत मूल है। इसका नाम है प्रोदल (methyl)। यह मूल एक-संयुज है। यह मूल मुक्तावस्था (free state) में नहीं रहता पर नीरजी, दुराप्री, जंबुकी और उदजारल के साथ मिलकर प्रोदल नीरिय, प्रोदल दुरेय, प्रोदल जम्बेय, प्रोदल उदजारेय बनता है। यह प्रोदल एक दूसरे

```
                          उ   उ
                          |   |
प्रोदल के साथ संयुक्त हो   उ—प्र—प्र—उ   दक्षीय्य (ethane) नामक
                          |   |
                          उ   उ
```
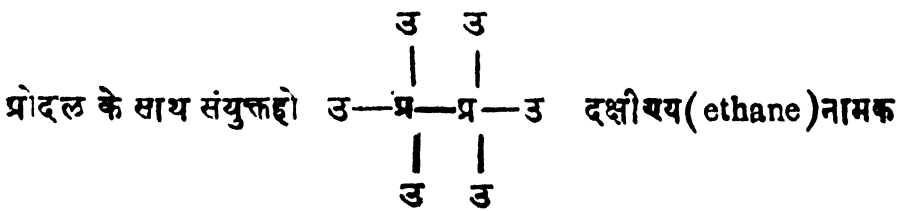
संयोग बनता है। इस दक्षीय्य से यदि उदजन हटा लें तो जो मूल

बच जाता है उसे दक्षुल (ethyl) कहते हैं। यह भी एक-संयुज मूल है और नीरजी, दुराग्नी, जम्बुकी और उदजारल के साथ प्रांदल के समान ही दक्षुल नीरेय, दक्षुल दुरेय, दक्षुल जम्बेय, दक्षुल उदजारेय बनता है। यह दक्षुल फिर प्रांदल के साथ मिलकर एक दूसरा संयोग बनता है जिसका व्यूहाणु सूत्र प्र$_3$उ$_8$ और विन्यास सूत्र

```
    उ   उ   उ
    |   |   |
उ—प्र—प्र—प्र—उ
    |   |   |
    उ   उ   उ
```
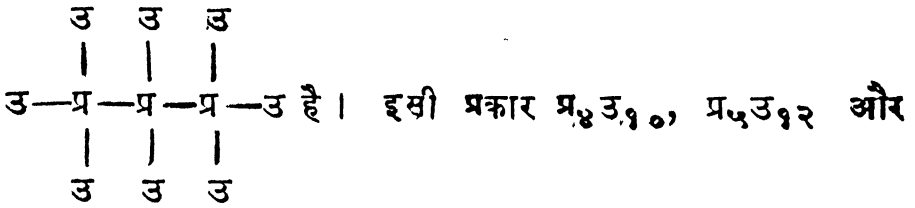
है। इसी प्रकार प्र$_4$उ$_{10}$, प्र$_5$उ$_{12}$ और प्र$_6$उ$_{14}$ इत्यादि व्यूहाणु सूत्र के संयोग बनते हैं। इनके विन्यास सूत्र क्रमशः निम्नलिखित है।

```
   उ  उ  उ  उ          उ  उ  उ  उ  उ          उ  उ  उ  उ  उ  उ
   |  |  |  |          |  |  |  |  |          |  |  |  |  |  |
उ-प्र-प्र-प्र-प्र-उ   उ-प्र-प्र-प्र-प्र-प्र-उ   उ-प्र-प्र-प्र-प्र-प्र-प्र-उ
   |  |  |  |          |  |  |  |  |          |  |  |  |  |  |
   उ  उ  उ  उ          उ  उ  उ  उ  उ          उ  उ  उ  उ  उ  उ
```

(butane) (pentane) (hexane)

घृतीन्य (प्र$_4$उ$_{10}$) पंचीन्य (प्र$_5$उ$_{12}$) षडीन्य (प्र$_6$उ$_{14}$)
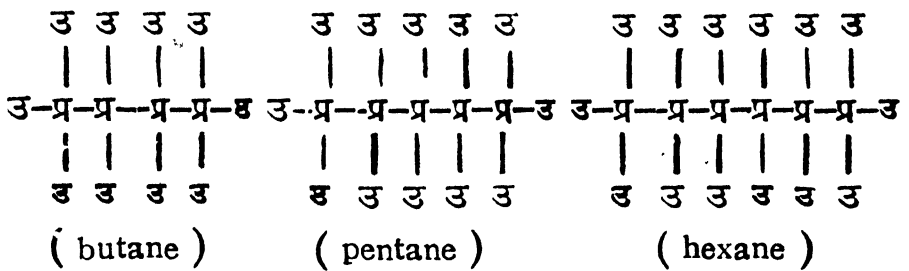
सधर्म माला (Homologous Series)। उपर्युक्त संयोगों को यदि हम साथ माला में रखें (प्र उ$_4$, प्र$_2$ उ$_6$, प्र$_3$उ$_8$, प्र$_4$उ$_{10}$, प्र$_5$उ$_{12}$, प्र$_6$उ$_{14}$) और उनके गुणों की परीक्षा और विन्यास सूत्र का निरीक्षण (observation) करें तो निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

१—ये सब संयोग रसायनतः परस्पर संबद्ध हैं। उनके रसायनिक गुण एक से हैं। भौतिक गुणों में क्रमशः परिवर्तन होते हैं।

२—इस माला के प्रत्येक एकक (member) आगे और पीछे के एककों से एक स्थिर मात्रा में भिन्न होते हैं। यह स्थिर मात्रा एक प्रांगार और दो उदजन व्यूहाणुओं प्र उ$_2$ की होती है।

ऐसी माला को सधर्म माला (homologous series) **कहते है।**

प्रांगारिक संयोगों के अध्ययन में ऐसी अनेक मालाएँ प्राप्त होती है। ऐसी तीन मालाएँ ये हैं।

सुषव माला	अम्लमाला	एक-लवणजन माला
प्रादल सुषव	वाम्रिक अम्ल	प्रोदल नीरेय
(प्रउ$_४$ज)	(प्रउ$_२$ज$_२$)	(प्रउ$_३$नी)
दक्षुल सुषव	शुक्तिक अम्ल	दक्षुल नीरेय
		Ethyl chloride
(प्र$_२$उ$_६$ज)	(प्र$_२$उ$_४$ज$_२$)	(प्र$_२$उ$_५$नी)
प्रमेल सुषव	प्रमेदिक अम्ल	प्रमेल नीरेय
(propyl alcohol)	(propionic acid)	(propyl chloride)
(प्र$_३$उ$_८$ ज)	(प्र$_३$उ$_६$ज$_२$)	(प्र$_३$उ$_७$नी)
घृतल सुषव	घृतिक अम्ल	घृतल नीरेय
(butyl alcohol)	(butyric acid)	(butyl chloride)
(प्र$_४$उ$_{१०}$ज)	(प्र$_४$उ$_८$ज$_२$)	(प्र$_४$उ$_९$नी)

केक्यूलेके सिद्धान्त। प्रांगार रसायन का सारा ढांचा दो महत्व पूर्ण सिद्धान्तों पर स्थित है। इन सिद्धान्तों के प्रवर्तक जर्मनी के रसायनज्ञ केक्यूले थे। ये दोनों सिद्धान्त हैं।

१—प्रांगारिक संयोगोंमें प्रांगार चतुःसंयुज होता है। अपनी चार संयुजताओं से ही यह अन्य तत्वों के अथवा स्वयं अपने साथ संबद्ध हो अनेक संयोग बनता है। उदजन के साथ यह प्रोदीन्य प्रउ$_४$, नीरजी के साथ प्रांगार चतुर्नीरेय प्र नी$_४$, जारक के साथ प्रांगार द्विजारेय, प्रज$_२$ बनता है। इस सिद्धान्त को प्रांगार चतुः संयुजता सिद्धान्त कहते हैं,

२—प्रांगार परमाणुओं में परस्पर संबद्ध होनेकी अत्यधिक क्षमता (capacity) है। इतनी क्षमता अन्य किसी तत्व में नहीं पायी जाती, प्रांगार के केवल दो चार व पांच ही परमाणु नहीं वरन, बीस, पचीस, सैकड़ों और सहस्रों परमाणु परस्पर संबद्ध हो रसायनिक संयोग बनते हैं। इस सिद्धान्त को प्रांगार परमाणु संयोजन सिद्धान्त कहते है। इसी विशेष गुण के कारण प्रांगारिक संयोगों की संख्या बहुत

बड़ी है। उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों से प्रांगरिक संयोगों के विन्यास सूत्र और सधर्म माला के होने की व्याख्या सरलता से की जा सकती है।

सभाजता (Isomerism)। प्रमेदीन्य (propane) के एक उदजन के प्रोदल मूल के प्रतिस्थापन (replcement) से घृतीन्य प्राप्त होता है। घृतीन्य दो होते हैं। इन दोनों के व्यूहाणुसूत्र $प्र_४ उ_{१०}$ एकही हैं पर इनके गुण भिन्न हैं। प्रमुख भिन्नता उनके बुदबुदांक में है। दो घृतीन्य होने की व्याख्या इस प्रकार की जाती है। यदि हम प्रमेदीन्य के विन्यास सूत्र का निरीक्षण करें तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रमेदीन्य में दो प्रकार के प्रांगार परमाणु हैं। एक प्रांगार परमाणु ऐसा है जिससे उदजन के केवल दो परमाणु संबद्ध हैं, यह प्रांगार परमाणु बीच का है। दूसरे दो प्रांगार परमाणु अन्त के हैं जिनमें उदजन के तीन तीन परमाणु संबद्ध हैं। यदि हम एक प्रोदल मूल को अन्त के प्रागार परमाणु से संबद्ध करें तो इससे निम्न विन्यास का संयोग बनता है।

प्रमेदीन्य ($प्र_३ उ_८$) घृतीन्य ($प्र_४ उ_{१०}$)
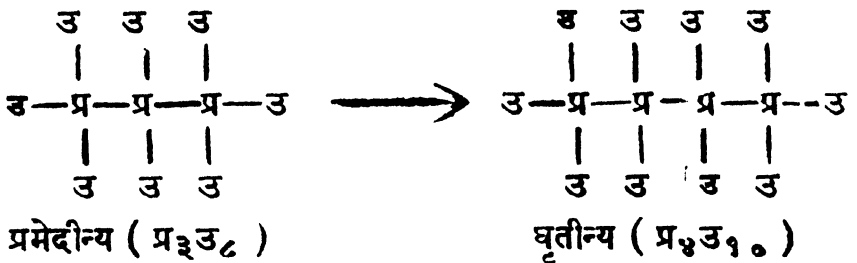
इस घृतीन्य का ऋजु घृतीन्य अथवा ऋ-घृतीन्य कहते हैं। पर यदि हम प्रोदल मूल को बीच के प्रांगार परमाणु से जोड़ें तो निम्न विन्यास का सूत्र प्राप्त होता है।
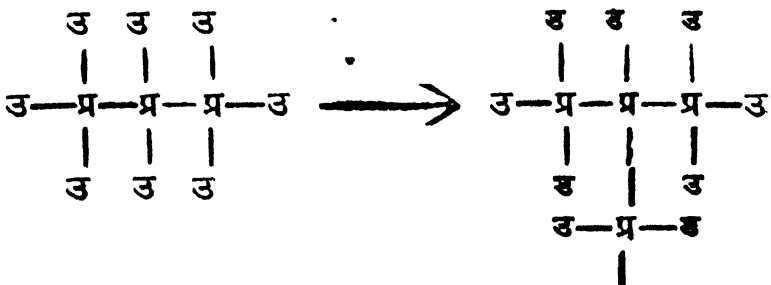
इस घृतीन्य को स-घृतीन्य (iso-butane) कहते हैं। उपर्युक्त दोनों ही घृतीन्य प्रमेदीन्य के एक उदजन के प्रोदल मूल के प्रतिस्थापन (replacement) से प्राप्त होते हैं। इनके व्यूहाणु सूत्र एक ही हैं पर इन दोनों में परमाणुओं के विन्यास भिन्न हैं। इस भिन्नता के कारण ही इन के गुणों में भिन्नता होती है। प्रांगारिक संयोगों के अध्ययन में अनेक ऐसे संयोग प्राप्त होते हैं जिनके व्यूहाणु सूत्र तो एक हैं पर उनके गुणों में भिन्नता है और उनके विन्यास सूत्र भिन्न हैं।

ऐसे संयोगों को जिनके व्यूहाणु सूत्र एक हों पर उनके गुण और विन्यास सूत्र भिन्न हों सभाजिक (isomeric) कहते हैं और इस घटना को सभाजता कहते हैं। ऋ-घृतीन्य और स-घृतीन्य समाजिक है। दक्षुल सुषव

```
    उ  उ
    |  |
उ—प्र—प्र—ज उ
    |  |
    ह  उ
```

और प्रोदल दक्षु

```
    उ      उ
    |      |
उ—प्र—ज—प्र—उ
    |      |
    उ      उ
```

सभाजिक है।
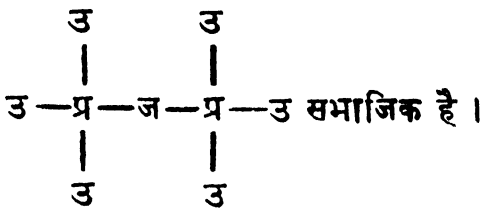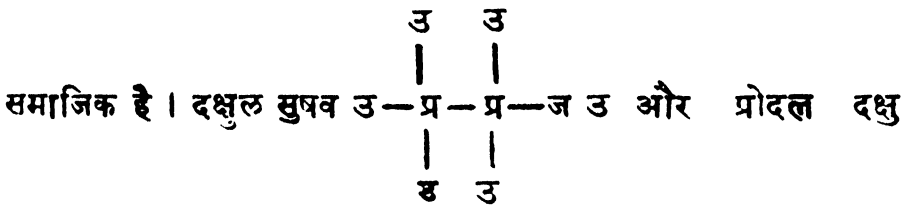
प्रश्न

१--संयुजता क्या है इसकी उदाहरण के साथ स्पष्ट रूप से व्याख्या करो।

२—निम्नलिखित की उदाहरण के साथ व्याख्या करो।

(१) विन्यास सूत्र (२) संयुतमूल, (३) सभाजता और (४) सधर्म माला।

३—केक्यूले के दो सिद्धान्तों का वर्णन करो। इन सिद्धान्तों से तुम

(१) प्रांगारिक संयोगों की बड़ी संख्या और

(२) सधर्म माला के होने को कैसे प्रतिपादित करोगे।

अध्याय ७

अनुविद्ध उदांगार

(Saturated Hydrocarbons)

$प्र_{स} \; उ_{२स+२}$
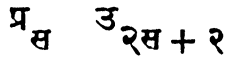
सरलतम प्रांगारिक संयोग प्रांगार और उदजन के संयोग हैं। ऐसे संयोगों को उदांगार (hydrocarbon) कहते हैं। इन उदांगारों में यदि प्रांगार के सब परमाणु एक विवृत शृंखला में विद्यमान हैं तो ऐसे उदांगारों को स्नैहिक उदांगार (aliphatic hydrocarbons) कहते हैं। यदि प्रांगार के सब परमाणु संवृत्त शृंखल में स्थित हैं तो ऐसे उदांगारों को चक्रिक उदांगार (cyclic hydrocarbons) कहते हैं। स्नैहिक उदांगार के फिर दो अन्तर्विभाग हैं। एक को अनुविद्ध उदांगार (saturated hydrocarbons) और दूसरे को अननुविद्ध उदांगार (unsaturated hydocarbons) कहते हैं। अनुविद्ध उदांगार में प्रांगार के सब परमाणु उदजन के परमाणुओं से पूर्णतया सन्तुष्ट (satisfied) होते हैं। ऐसे अनुविद्ध उदांगार को मृद्रसा (paraffins) भी कहते हैं। अननुविद्ध उदांगार में प्रांगार के सब परमाणु उदजन के परमाणुओं से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं होते। अनुविद्ध और अननुविद्ध उदांगारों के भौतिक गुणों में विशेष भेद नहीं होता पर रसायनिक गुणों में बहुत भेद होता है। अनुविद्ध उदांगार रसायनतः जड़ होते हैं, इसके प्रतिकूल अननुविद्ध उदांगार बहुत क्रियाशील होते हैं। यदि अनुविद्ध उदांगार पर कुछ क्रियाएँ भी होती हैं तो इससे केवल आदेश (substitution) संयोग बनते हैं जिनमें उदजन के एक व अधिक परमाणुओं के स्थान में आदिष्ट (substitute) प्रतिस्थापित होते हैं। अननुविद्ध उदांगार से जो संयोग बनते हैं उन्हें संकलन

(addition) संयोग कहते हैं। इसमें एक वा अधिक परमाणु प्रतिक्रियाशील पदार्थों से सङ्कलित होते हैं। इन संयोगों के गुणों के अध्ययन से इनके भेद स्पष्ट हो जायँगे।

मृद्गसा $प्र_{स}$ $उ_{२स+२}$

अनुविद्ध उदांगार एक सधर्म माला है जिसका प्रथम एकक (member) प्रोदीन्य है। इससे प्रथम सात एकक निम्नलिखित हैं।

		बुदबुदांक
प्रोदीन्य	$प्रउ_{४}$	–१६४° श.
दक्षीयय	$प्र_{२}उ_{६}$	–८४° श.
प्रमेदीन्य	$प्र_{३}उ_{८}$	–३७° श.
घृतीन्य	$प्र_{४}उ_{१०}$	१° श.
पंचीन्य	$प्र_{५}उ_{१२}$	३६° श.
षडीन्य	$प्र_{६}उ_{१४}$	६९° श.
सप्तीन्य	$प्र_{७}उ_{१६}$	९८° श.

इन उदांगारों के प्रथम चार नाम—प्रोदीन्य, दक्षीयय, प्रमेदीन्य और घृतीन्य--तत्संवादी (corresponding) सुषव, प्रोदल, दक्षुल, प्रमेल और घृतल--के नामों से निकले हैं। शेष नाम व्यूहाणु में जितने प्रांगार के परमाणु हैं उनकी संख्या में 'ईन्य' प्रत्यय के जोड़ने से बनते हैं, पाँच परमाणुवाले उदांगार को पञ्चीन्य, छः परमाणुवाले उदांगार को षडीन्य इत्यादि कहते हैं।

मृद्गसा उद्भिद और प्राणी पदार्थों के सड़ने की प्राकृतिक विधा से बनते हैं। इनका सामान्य सूत्र $प्र_{स}$ $उ_{२स+२}$ है जहाँ स एक पूर्ण संख्या है। इस माला का प्रत्येक एकक उत्तरवर्त्ती और पूर्ववर्त्ती एककों से प्रांगार के एक परमाणु और उदजन के दो परमाणुओं के स्थायी पार्थक्य से भिन्न होता है। इनके निबन्ध के इस नियमित पार्थक्य के कारण ही उनके भौतिक गुणों, बुद्बुदांक, सापेक्ष भार इत्यादि में पार्थक्य होता है। इस माला के सब एककों के साधारण

रसायनिक गुणों में समानता होती है पर जैसे जैसे माला में हम ऊपर चढ़ते हैं उनकी रसायनिक क्रियाशीलता क्रमशः मन्द होती जाती है। इस माला के अनेक संयोग मालूम हैं। इनमें प्रांगार के कितने परमाणु संयुक्त हो व्यूहाणु बन सकते हैं इसका एक अच्छा उदाहरण $प्र_{६०} उ_{१२२}$ व्यूहाणु सूत्र का उदांगार है।

प्रोदीन्य, $प्रउ_{४}$—प्रोदीन्य मृद्वसा का पहला एकक है। यह प्रकृति में प्राप्त होता है। कभी कभी यह कोयले की खानों में पाया जाता है। इसके वायु के साथ मिलने से एक उत्स्फोट मिश्र (explosive mixture) बनता है जिसे खानवाले अग्निवाति (firedamp) कहते हैं। पंक भूमि और स्थिर जल से भी अत्यल्प मात्रा में यह वाति निकलती है इसीसे इसका नाम 'कच्छ वाति' पड़ा है। मृत्तैलके कूपों से जो वाति निकलती है उस प्राकृतिक वाति का यह प्रमुख संघटक (constituent) है। आंगार और काष्ठ वाति में यह प्रायः ४० प्रतिशत तक रहता है।

प्राप्ति। १—१२००° श० पर प्रांगार और उदजन के सीधे संयोजन से अथवा उदजन के आवरण में प्रांगार विद्युत-द्वार के बीच विद्युत मोचन से यह वाति अल्पमात्रा में बनती है।

२—प्रांगार द्वि-जारेय व प्रागार एक-जारेय और उदजन के मिश्र को प्राय: ३००° श० पर उष्ण रूपक के सूक्ष्म क्षोद पर ले जाने से भी यह वाति प्राप्त होती है।

$$प्र ज + ३ उ_{२} = प्र उ_{४} + उ_{२} ज$$

प्रांगार एक-जारेय

$$प्र ज_{२} + ४ उ_{२} = प्र उ_{४} + २ उ_{२} ज$$

प्रांगार द्वि-जारेय
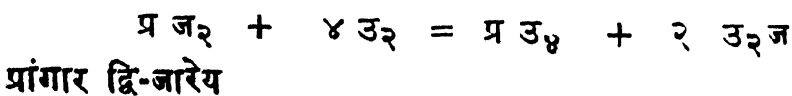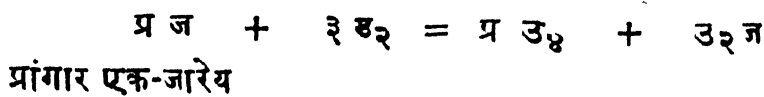
३—उदजन शुल्बेय ($उ_{२}शु$) और प्रांगार द्वि-शुल्बेय ($प्र शु_{२}$) के बाष्प के मिश्र को रक्तोष्ण ताम्र पर ले जाने से प्रोदीन्य बनता है।

$$२ उ_{२}शु + प्रशु_{२} + ८ ता = प्र उ_{४} + ४ ता_{२}शु.$$
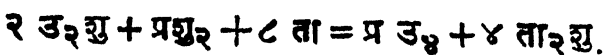
उपर्युक्त तीनों रीतियाँ वास्तव में सैद्धान्तिक महत्व की ही हैं।

इनसे केवल यह मालूम होता है कि यह वाति शुद्ध अप्रांगारिक पदार्थों से प्राप्त हो सकती है।

४—अधिक सुविधा से विशेषतः रसशाला में, प्रोदीन्य, क्षारातु शुक्तीय को तिगुने विक्षार-चूर्णक (soda lime) के साथ ताम्र पलिघ में तपाने से प्राप्त होता है। इस पलिघ में प्रदान नाल लगा होता है जिसका दूसरा छोर जल में डूबा रहता है। जलपर यह वाति साधारण रीति से इकट्ठी होती है। विक्षार चूर्णक में केवल दह विक्षार कार्य करता है। चूर्णक केवल पुञ्ज (mass) को पिंड (cake) बनने से बचाता है।

$$\begin{array}{l} \text{प उ}_3 \vdots \text{ प ज ज द} \\ \quad\;\; \vdots \;\; + \\ \text{उ} \;\; \vdots \text{ ज द} \end{array} \longrightarrow \text{प उ}_4 + \text{द}_2 \text{ प ज}_3$$
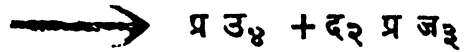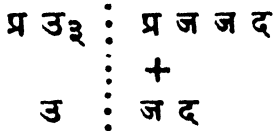
इस रीति से कोई भी मृद्गसा प्राप्त हो सकती है। क्षारातु शुक्तीय के स्थानमें क्षारातु प्रमेदीय (sodium propionate) के प्रयोग से दूसरा सधर्म (homologue) दक्षोचय प्राप्त होता है। इसी रीति से प्राप्त मृद्गसा में अत्यल्प मात्रा में अशुद्धताएँ—दूसरे उदांगार और उदजन-मिली रहती हैं।

५—शुद्धरूप में प्रोदीन्य स्फट्यातु प्रांगरेय (aluminium carbide) पर जल की क्रिया से प्राप्त होता है।

$$\text{स्फ}_4 \text{ प}_3 + 12 \text{ उ}_2 \text{ ज} = 3 \text{ प उ}_4 + 4 \text{ स्फ} (\text{ज उ})_3$$
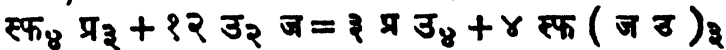
संपरीक्षा १३—एक प्रस्थधारिता का कोराकार पलिघ लो जिसमें पार्श्वनाल लगा हो। (चित्र २२) पलिघ के पेंदे में सिकता (silica) का एक पतला स्तर फैला दो। स्तर के ऊपर स्फट्यातु प्रांगरेय रखो
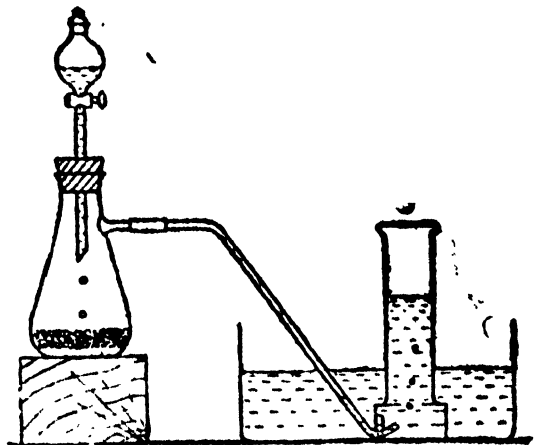
(चित्र २२)

पलिघ की चूषित्वक्षा में विवरी निवाप लगा दो। पलिघ पार्श्वनाल में प्रदान नाल जोड़ दो। विवरी निवाप से बूँद बूँद पानी डालो। स्फट्यातु प्रांगरेय पर पानी की तीव्र क्रिया होकर प्रोदीन्य निकलकर जल के ऊपर प्रदान नाल पर रखे वाति-कलश पर इकट्ठा होगा।

गुण। प्रोदीन्य रङ्गहीन, गन्धहीन और स्वादहीन वाति है। जल में प्रायः अविलेय है। तीव्र निपीड़ और शीत से इसका तरलन हो जाता है। इसकी सापेक्ष घनता ८ है। अतः इसका व्यूहाणुभार १६ हुआ।

रसायनतः यह निष्क्रिय है। सामान्य प्रतिकारकों की इस पर कोई क्रिया नहीं होती। प्रबल और धूमायमान शुल्वारिक अम्ल, दह विक्षार और दहातु अतिलोहकीय विलयन की इस पर कोई क्रिया नहीं होती। केवल नीरजी और दुराग्री की—जम्बुकी की भी नहीं—इस पर क्रियाएँ होती हैं। इसमें एक तथा एक से अधिक उदजन परमाणु लवणजन से प्रतिस्थापित हो जाते हैं और उससे भिन्न आदेश संयोग बनते हैं।

प्र $उ_4$ + $नी_2$ = उ नी + प्र $उ_3$ नी (प्रोदल नीरेय)

प्र $उ_3$ नी + $नी_2$ = उ नी + प्र $उ_2$ $नी_2$ (प्रोदलेन्य नीरेय)

प्र $उ_2$ $नी_2$ + $नी_2$ = उ नी + प्र उ $नी_3$ (नीरवम्रल)

प्र उ $नी_3$ + $नी_2$ = उ नी + प्र $नी_4$ (प्रांगार चतुर्नीरेय)

जम्बुकी की जड़ता का कारण यह बताया जाता है कि इस क्रिया से जो उदजन जम्बेय बनता है वह ह्रासन कर्त्ता (reducing agent) होनेके कारण जम्बु-संयोग को ह्रासित कर देता है।

नीरजी और दुराग्री की उपर्युक्त क्रियाएँ अँधेरे में नहीं होतीं। प्रसृत सूर्य प्रकाश में बड़ी मन्दगति से, सीधे सूर्य प्रकाश में तीव्रगति से उत्स्फोटन के साथ होती हैं।

प्रोदीन्य धीमी नीली ज्वाला के साथ जलता और उससे प्रांगार द्वि-जारेय और जल बनाता है। दुगनी परिमाजारक व दस गुनी परिमा वायु के साथ मिलाकर आग लगाने से तीव्र उत्स्फोटन

के साथ धड़ाका होता है। इस मिश्र के बनने के कारण ही कोयले की खानों में उत्स्फोटन होता है।

प्रोदीन्य का निबन्ध। प्रोदीन्य की ज्ञातपरिमा—२० शि० मा० को जारक के आधिक्य (excess)—८० शि० मा०—के साथ मिलाकर वाति-परिमा-मान में रखकर इस मिश्र को विद्युत स्फुलिंग (spark) के द्वारा उत्स्फाटित किया जाता है। इससे प्रांगार जल कर प्रांगार द्वि-जारेय और उदजन जल बनता है। वाति परिमा-मान को अब ठण्ढा कर उसमें वाति की परिमा को मापते हैं। इस संपरीक्षा में उत्स्फोटन के बाद वाति की परिमा ६० शि० मा० होगी। यह परिमा प्रांगार द्विजारेय और अविकृत (unchanged) जारक की है। यहाँ जो जल बनता है वह तरल होने के कारण उसकी परिमा प्रायः नहीं के बराबर होती, इस परिमा को आब दहसर्जि के विलयन के साथ हिलाते हैं। इससे प्रांगार द्वि-जारेय प्रचूषित हो जाता और केवल जारक अवशेष रह जाता है। जारक की परिमा ४० शि० मा० रह जाती है जिससे विदित होता है कि २० शि० मा० दहसर्जि के विलयन से प्रचूषित हो गया है, ८० शि० मा० जारक से अब केवल ४० शि० मा० जारक शेष बच जाता है। अतः २० शि० मा० प्रोदीन्य के पूर्ण रूप से जलाने के लिए ४० शि० मा० जारक लगता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

२० शि० मा० प्रोदीन्य + ४० शि० मा० जारक = २० शि० मा० प्रांगार द्वि-जारेय + जल।

अथवा

(व्यूहाणु संख्या की उपकल्पना के अनुसार)

प्रोदीन्य का एक व्यूहाणु + जारक के २ व्यूहाणु के साथ मिलकर प्रांगार द्वि-जारेय का एक व्यूहाणु और जल बनता है।

प्रांगार द्विजारेय के एक व्यूहाणु में प्रांगार का केवल एक परमाणु और जारक के दो परमाणु रहते हैं। अतः प्रोदीन्य के प्रत्येक व्यूहाणु में प्रांगार का केवल एक परमाणु विद्यमान है। और प्रांगार के इस एक

परमाणु के जलने के लिए जारक के दो परमाणु प्रयुक्त होते हैं। जारक के शेष दो परमाणु उदजन के साथ संयुक्त हो जल बनते हैं। जारक के दो परमाणुओं के जल बनने के लिए उदजन के चार परमाणु आवश्यक हैं। ये चारो परमाणु प्रोदीन्य से प्राप्त होते हैं। अतः प्रोदीन्य में प्रांगार के एक परमाणु और उदजन के चार परमाणु विद्यमान है। इसलिए प्रोदीन्य का व्यूहाणु सूत्र हुआ प्र $उ_४$।

दक्षीण्य, $प्र_२उ_६$। मृत्तैल कूपों से जो वाति निकलती है उसमें १० से १२ प्रतिशत दक्षीण्य का रहता है। जो रीतियाँ प्रोदीन्य के प्राप्त करने में प्रयुक्त होती हैं उनसे दक्षीण्य भी प्राप्त हो सकता है।

प्राप्ति। सुविधे से दक्षीण्य दक्षुल जंबेय पर कुप्यातु-ताम्र (Zinc-copper couple) मिथुन अथवा स्फट्यातु-पारद मिथुन (aluminium mercury couple) और जल वा सुषव की क्रिया से प्राप्त होता है। मिथुन के जल व सुषव पर की क्रिया से जायमान (nascent) उदजन बनता और वह जम्बेय को प्रह्रासित करता है।

$$प्र_२उ_५जं + २ उ = प्र_२उ_६ + उजं।$$
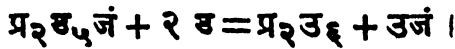
कुप्यातु-ताम्र मिथुन प्राप्त करने के लिए कणात्मक (granulated) कुप्यातु को ताम्र शुल्बीय के विलयन में डुबाते हैं। इससे कुप्यातु पर ताम्र का आवरण (cover) चढ़ जाता है। इसको जल से व सुषव से दो तीन बार धोकर सुखा देते हैं। इसी प्रकार स्फट्यातु (aluminium) के वेल्लन को पारद नीरेय के विलयन में डुबाने से स्फट्यातु-पारद मिथुन प्राप्त होता है।

संपरीक्षा १४—एक छोटा आस्रवन पलिघ लो। इसमें त्वक्षा द्वारा विवरी निवाप लगा दो। पलिघ के पार्श्वनाल में एक प्रदान नाल जोड़ दो। २० धान्य कुप्यातु से प्राप्त कुप्यातु-ताम्र मिथुन को पलिघ में रखकर उसे सुषव से ढँक दो। विवरी निवाप से धीरे-धीरे दक्षुल जम्बेय डालो। प्रतिक्रिया होकर दक्षीण्य निकलेगा। पलिघ की वायु के निकल जाने पर दक्षीण्य को जल के ऊपर इकट्ठा करो। यदि क्रिया तीव्र होती हो और पलिघ अधिक उष्ण हो गया हो तो पलिघ को विवरी के जल से ठण्ढा करो।

उपर्युक्त प्रतिक्रिया साधारण है और इससे कोई भी मृद्दसा तैयार हो सकती है। दक्षुल जंबेय के स्थान में प्रोदल जंबेय के प्रयोग से प्रोदीन्य प्राप्त होता है।

२—एक दूसरी रीतिसे भी दक्षीण्य प्राप्त हो सकता है। इस रीति में प्रोदल जंबेय को क्षारातु वा कुप्यातु की क्रिया से दक्षीण्य में परिणत करते हैं। जिस क्रिया में क्षारातु प्रयुक्त होता है उसे वुर्टज की प्रतिक्रिया (Wurtz reaction) और जिसमें कुप्यातु प्रयुक्त होता है उसे फ्रॉकलैण्ड और कालब्रे (Frankland and Kolbe) की प्रतिक्रिया कहते है।

२ प्र उ$_{३}$जं + कु अथवा २ क्ष = प्र उ$_{३}$–प्र उ$_{३}$ + कु जं$_{२}$ व २क्ष जं
दक्षीण्य

यह रीति भी सर्वव्यापी (universal) है और इससे अनेक उच्च मृद्दसा निम्न मृद्दसा से प्राप्त हो सकती हैं। इस क्रिया से प्रांगार के परमाणुओं के परस्पर संबद्ध होनेकी भी पुष्टि होती है।

गुण। दक्षीण्य रंगहीन, और गंधहीन वाति है। प्रदीन्य की अपेक्षा यह जल में कुछ अधिक प्रविलीन होता है। ४६ वायुमण्डल के नीपीड और ४°श० पर यह संघनित हो रंगहीन तरल बनता है। यह कुछ कम चकाशिनी (luminous) ज्वाला के साथ जलता है। रसायनिक गुणों में यह प्रोदीन्य से बहुत निकटतम सादृश्य रखता है। इसका निबन्ध प्रोदीन्य के समान ही वाति-परिमा-मान में जारक के साथ जलाकर निकाला जा सकता है।

मृत्तैल। मृत्तैल मृत् मिट्टी और तैल तेल से बनता है। मृत्तैल के दूसरे नाम मिट्टी तेल, खनिज तेल, प्रस्तर तेल भी हैं। मृत्तैल मृद्दसा के उद्गम हैं। मृत्तैल पृथ्वी के अनेक भागों में पाया जाता है विशेषतः अमेरिका, रूस, रूमानिया, ईरान, ईराक, बलगेरिया, मैक्सिको और बर्मा में। भारत में अत्यल्पमात्रा में, आसाम के डिगबोई और पंजाब के अटक में, मृत्तैल पाया जाता है। भिन्न-भिन्न

स्थानों में प्राप्त मृत्तैल के निबन्ध एक से नहीं हैं। कुछ न कुछ उनमें भेद रहता है।

मृत्तैल का महत्व आज कल बहुत बढ़ गया है क्योंकि अत्यधिक मात्रा में इसकी खपत बहित्त रथों (motor car) और वायुयानों (airships) के यन्त्रों (engines) में होती है।

मृत्तैल की उत्पति के संबंध में समय समय पर अनेक मत प्रतिपादित हुए हैं। इनमें सबसे प्राचीन मत में पृथ्वी के अन्दर अयस् प्रांगारेय ऐसे धातुओं के प्रांगारेय पर जलकी क्रिया से मृत्तैल का बनना बताया जाता है। इस मतको अप्रांगारिक उत्पत्ति, (inorganic origin) का मत कहते हैं। इस मतसे मृत्तैल में शुल्बारि के संयोगों के रहने और उनकी काचिता अथवा प्रकाश परिभ्राम की सन्तोष जनक व्याख्या नहीं की जा सकती है। एक दूसरा मत है कि पृथ्वी के गर्भ में उष्णता और निपीड से समुद्र-जन्तुओं के विबन्धन से मृत्तैल बनता है। इस मत की इस बात से पुष्टि होती है कि मछली के तैल और स्नेह के निपीड में प्रचण्ड उष्णता से मृत्तैल सा पदार्थ प्राप्त हो सकता है। इस मत से मृत्तैल में शुल्बारि के सयोगों के होने और प्रकाश परिभ्राम के होने की भी सन्तोष जनक व्याख्या हो जाती है। इस मतको प्रांगारिक उत्पति (organic origin) का मत कहते हैं। एक तीसरा मत है जो प्रधानतः बर्मा के मृत्तैल के संबंध में प्रगट किया गया है। वह मत यह है कि कुछ वृक्षों के पृथ्वी के गर्भ में विबन्धन से मृत्तैल बनता है।

आम मृत्तैल ५० पाद (feet) से २५०० पाद की गहराई में पाया जाता है। कूप खोदकर इसे निकालते हैं। कभी-कभी इन कूपों से अनेक पाद ऊँचा श्रोत के रूप में बड़े वेग से तेल निकलता है और इससे नष्ट हो जाता है। सीधे कूपों से प्राप्त आम मृत्तैल गाढ़ा आलग (viscous), आहारि-बभ्रू (greenish brown) रंग का तरल होता है। प्रभागशः आस्रवन से भिन्न प्रभागों में अलग कर शोधित होता है। इसके प्रभागशः आस्रवन से निम्न प्रभाग प्राप्त होते हैं।

१—प्राकृत वाति (Natural gas)। यह उष्णता और प्रकाश उत्पन्न करने में प्रयुक्त होती है। इससे अतिसूक्ष्म आंगार भी प्राप्त होता है जो मुद्रण-मसी और अन्य कामों में प्रयुक्त होता है।

२—मृत्तैल दक्षु (Petroleum ether)। इसका बुदबुदांक ४०° से ६०° श. तक होता है। यह दक्षु तैल, स्नेह और अन्य प्रांगारिक संयोगों के लिए विलायक के रूप में प्रयुक्त होता है।

३—मार्त्तैल (Petrol, gasoline) बुद्बुदांक ६०° से १२०° श.। यह भी तेल और स्नेह के लिए विलायक के रूप में और वहित्त रथों (मोटर गाड़ियों) और वायुयान के गन्त्रों में ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है।

४—धूपी (Benzine) १२०°-१५०° श० पर उबलता है। यह विलायक के रूप में और शुष्क निर्मलन में प्रयुक्त होता है।

५—किरासन (Kerosene) बुद्बुदांक १५०°–३००° श.। यह उष्णता और प्रकाश उत्पन्न करने में प्रयुक्त होता है।

६—गन्धैल (Fusel oil)। यह डीजेल गन्त्र में ईंधन के रूप में और तैल-वाति के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

७—उपस्नेहन तैल (.Lubricating oil) यह उपस्नेहन के लिए प्रयुक्त होता है।

८—मार्त्तैली (Vaseline)। यह औषधों में और शृंगार (toilet) के लिए प्रयुक्त होता है।

९—मृद्रश सिक्थ (Paraffin wax), द्रावांक ४५° से ६५° श.। यह सिक्थवर्त्ती (candle) के बनाने में लगता है।

किरासन प्रधानतः प्रकाश उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता है। निम्न बुद्बुदांकवाला तेल इस कार्य के लिए अति भयंकर होता है। ऐसे तेल का उत्स्फोटन शीघ्रता से होता है। इससे इसके उत्स्फोटन से सहस्रों मनुष्यों की जान चली गई है। प्रत्येक देश की सरकार ने किरासन तेल के स्फुरणांक (flash point) की नीचली सीमा निर्धारित कर दी है। स्फुरणांक वह निम्नतम ताप है जिसपर तेल का वाष्प

वायु के साथ मिलकर उत्स्फोट मिश्र (explosive mixture) बनता है। आंगल भूमि (इङ्गलैण्ड) में यह स्फुरणांक ७३° द्वा० (द्वात्रिंशादि) है। यह वास्तव में बहुत निम्न है। भारत में स्फुरणांक की नीचली सीमा ४४° श० निर्धारित है।

प्रश्न

१—निम्न शब्दावली की उदाहरण के साथ व्याख्या करोः—
(१) स्नैहिक उदांगार (२) अनुविद्ध और अननुविद्ध उदांगार (३) संकलन और आदेश संयोग।

२—प्रोदीन्य की प्राप्ति और गुणों का वर्णन करो। इस वाति को कच्छ-वाति व अग्नि-निवाति क्यों कहते हैं। नीरजी की इसपर क्या क्रियाएँ होती हैं।

३—अप्रांगारिक पदार्थों से प्रोदीन्य के प्रस्तुत करने की कुछ रीतियों का वर्णन करो।

४—प्रोदीन्य के व्यूहाणु सूत्र का निश्चयन कैसे करोगे।

५—इन सामान्य रीतियों का वर्णन करो जिससे मृद्वसा माला का कोई एकक प्राप्त किया जा सकता है।

६—मृत्तैल क्या है। प्रकृति में इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में क्या मत प्रतिपादित हुए हैं।

७—मृत्तैल से क्या क्या वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं और उनके क्या उपयोग हैं।

अध्याय ८

अननुविद्ध उदांगार

(Unsaturated hydrocarbons)

अननुविद्ध उदांगार के दो वर्ग हैं। एक को तैलकरी (olefines) और दूसरे को शुक्तलेन्य (acetylene) वर्ग कहते हैं। तैलकरी एक सधर्म माला है जिसका सामान्य सूत्र $प_{स}उ_{२स}$ है। इस सूत्र से मालूम होता है कि मृद्रुसा से इसमें उदजन के दो परमाणु कम हैं। इस माला का प्रथम एकक दक्षुलेन्य है। इसके अध्ययन से इस माला के संयोगों के भौतिक, और रसायनिक गुणों का अच्छा ज्ञान हो जाता है। शुक्तलेन्य वर्ग की माला का प्रथम एकक शुक्तलेन्य है जिसमें तत्संवादी मृद्रुसा से उदजन के चार परमाणु कम होते हैं। शुक्तलेन्य के सामान्य सूत्र $प_{स}उ_{२स-२}$ है। शुक्तलेन्य के अध्ययन से इस माला के संयोगों के भौतिक और रसायनिक गुणों का पता लगता है।

दक्षुलेन्य (Ethylene) $प_{२}उ_{४}$। आंगारवाति में प्रायः २·५ प्रतिशत तक यह वाति पायी जाती है, काष्ठवाति में भी यह रहती है।

प्राप्ति। सुषव से जल-तत्त्व के निकाल लेने से दक्षुलेन्य प्राप्त होता है। यह जल-तत्त्व या तो संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल वा कुप्यातु नीरेय व आगल भास्विक अम्ल (Syrupy phosphoric acid) से निकाला जा सकता है।
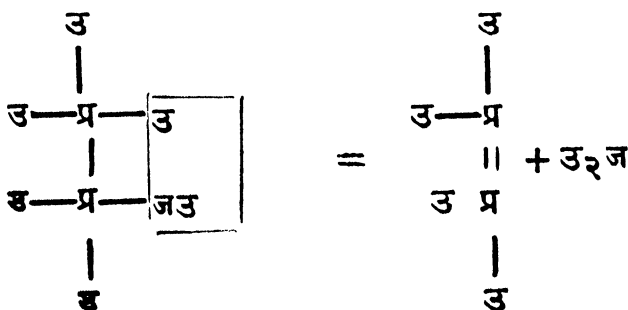
संपरीक्षा १५—दक्षुल सुषव के २५ घ. शि. मा. को संकेन्द्रित शुल्वारिक अम्ल के ९० घ. शि. मा. के साथ मिला कर ५०० घ. शि. मा. धारिता के पालघ में रख एक विन्दुपाति निवाप और एक प्रदान-नाल जोड़ दो। पलिघ में थोड़ा सिकता रख दो ताकि उसमे फेन न निकले और धमका (bumping) न हो। अब पलिघ को तपाओ। इससे दक्षुलेन्य निकलेगा। वह कुछ सुषव, कुछ दक्षु वाष्प,
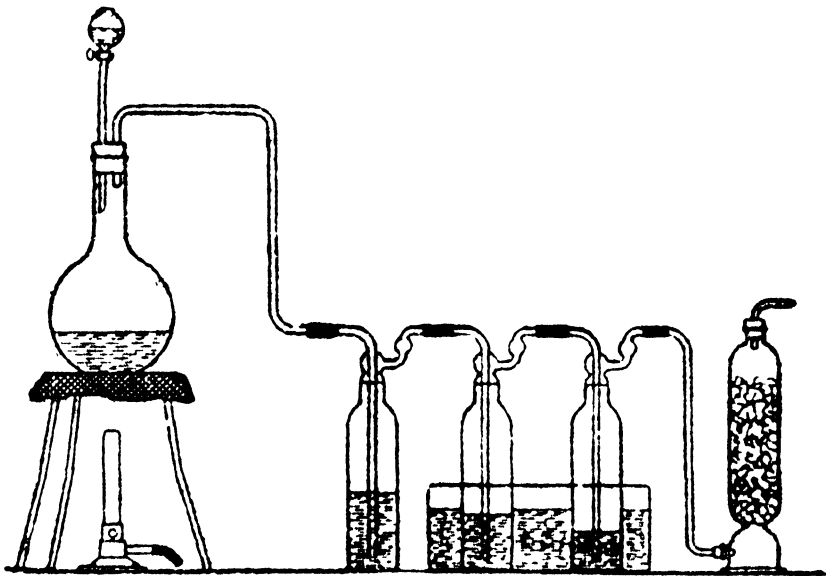
(चित्र २३)

कुछ प्रांगार द्विजारेय और शुल्वारि द्वि-जारेय के साथ मिला रहता है। निकली वाति को धावन कूपियों में लेजाकर शुद्ध करो। एक धावन कूपी में संकेन्द्रित शुल्वारिक अम्ल और दूसरे में दहसजि का प्रबल विलयन रखो (चित्र २३)। इस वाति के सतत प्रवाह की प्राप्ति के लिए दक्षुल सुषव और शुल्वारिक अम्ल के सम परिमा के मिश्र को धीरे धीरे निवाप से डालो। वाति को जलपर इकट्ठा करो। इस वाति के हिमजल से शीतल दुराघ्री में ले जाने से दक्षुलेन्य दुरेय प्राप्त होता है।

संकेन्द्रित शुल्वारिक अम्ल के स्थान में यदि आलग भास्विक अम्ल प्रयुक्त हो तो निबन्धन (charring) रुक जाता है। इस दशा

में भास्विक अम्ल को २००° श° तक तपाकर उसमें विन्दुपाति निवाप से धीरे धीरे सुषव डालने से प्राप्त होता है।

२. दक्षुल जम्बय पर सुषविक दह सर्जि (alcoholic caustic potash) की क्रिया से दक्षुलेन्य प्राप्त होता है। यहां दक्षुलजम्बेय से उदजम्बिक अम्ल निकल जाता है।

$$प्र_2 उ_5 जं + द ज उ = प्र_2 उ_4 + द जं + उ_2 ज$$
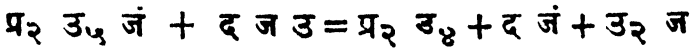
गुण। दक्षुलेन्य एक रंगहीन वाति है जिसमें धीमी कुछ मीठी गन्ध होती है। यह जल में बहुत कम घुलता है। °श० और ४० वा. निपीड पर तरल बन जाता है। इसकी सापेक्ष घनता १४ और व्यूहाणुभार २८ है।

चकासिनी ज्वाला के साथ यह जलता है और जलकर प्राङ्गार द्वि-जारेय और जल बनता है। वायु अथवा जारक के साथ यह उत्स्फोटात्मक मिश्र बनता है। साधारण ताप पर यह शीघ्रता से नीरजी, दुराम्री और जम्बुकी के साथ संयुक्त होता है। जम्बुकी के साथ क्रिया मन्द होती है। इन क्रियाओं से संकलन सृष्ट क्रमशः दक्षुलेन्य नीरेय, दक्षुलेन्य दुरेय और दक्षुलेन्य जम्बेय बनते हैं।

$$प्र_2 उ_4 + नी_2 = प्र_2 उ_4 नी_2 \text{ (दक्षुलेन्य नीरेय)}$$
$$प्र_2 उ_4 + दु_2 = प्र_2 उ_4 दु_2 \text{ (दक्षुलेन्य दुरेय)}$$
$$प्र_2 उ_4 + जं_2 = प्र_2 उ_4 ज_2 \text{ (दक्षुलेन्य जम्बेय)}$$
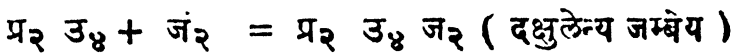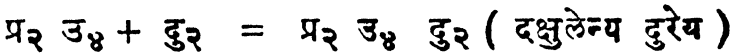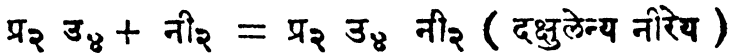
दक्षुलेन्य नीरेय भारी रंगहीन तैलसा है। यह डच रसायनज्ञ के तैल के नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि १७९६ ई० में हालैण्ड में पहले-पहल यह तैयार हुआ था। दक्षुलेन्य दुरेय भी भारी रंगहीन तेल है। इन तैलसा तरलों के बनने के कारण दक्षुलेन्य तैलकरी वाति के नाम से पुकारा जाता था और इस माला का नाम तैलकरी पड़ा है।

दक्षुलेन्य और उदजन के मिलाने से कोई प्रतिक्रिया नहीं देख पड़ती पर अत्यन्त ही मन्थर गति से इन दोनों के बीच संयोजन होता है, यदि यह मिश्रण को महातु काल अथवा रुपक के सूक्ष्म क्षोद सरीखे

आवेजक पर ले जाय तो अपेक्षया शीघ्रता से प्रतिक्रिया होती और उससे दक्षीय्य बनता है।

$$प्र_२ उ_४ + उ_२ = प्र_२ उ_६$$
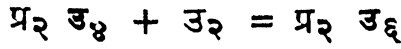
उपर्युक्त परिस्थितियों में दक्षुलेन्य लवणजन अम्लों के साथ संयुक्त होता है। उदजन जम्बेय के साथ अति शीघ्रता से और उदजन नीरेय के साथ अल्प शीघ्रता से संयुक्त हो दक्षुल लवणेय बनता है।

$$प्र_२ उ_४ + उनी = प्र_२ उ_५ नी$$

$$प्र_२ उ_४ + उजं = प्र_२ उ_५ जं$$
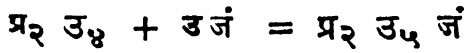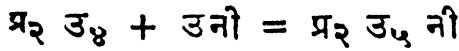
दक्षुलेन्य प्रबल धूमायमान शुल्बारिक अम्ल से भी संयुक्त हो दक्षुल उदजन शुल्बीय बनता है।

$$प्र_२ उ_४ + उ_२ शु ज_४ = प्र_२ उ_५ उ शु ज_४$$
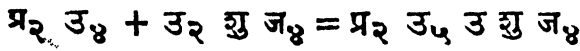
दक्षुलेन्य दहातु अतिलोहकीय के मन्द आम्लिक विलयन को रंगहीन कर देता और उससे स्वयं दक्षुलेन्य मधुव बनता है।

$$प्र_२ उ_४ + उ_२ ज + ज = प्र_२ उ_४ (ज उ)_२$$
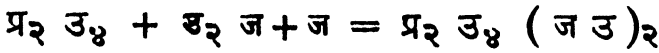
दक्षुलेन्य उदनीर्यस्य अम्ल (hypochloric acid) के साथ दक्षुलेन्य नीरोदि (Chlorhydrin) बनता है

$$प्र_२ उ_४ + उ ज नी = प्र_२ उ_४ (ज उ) नी$$
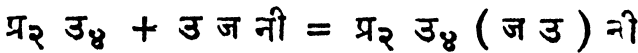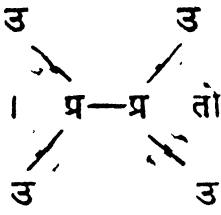
दक्षुलेन्य की संरचना। दक्षुलेन्य के गुणों से पता लगता है कि

१-इस संयोग में उदजन के परमाणुओं की संख्या प्राङ्गार की सब संयुजता को सन्तुष्ट करने के लिये अपर्याप्त है।

२-इस संयोग में संकलन संयोग बनने की बड़ी तत्परता है।

३-जब संकलन होता है तब एक-संयुज तत्त्वों अथवा मूलों की सम संख्या लगती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि दो प्राङ्गार परमाणुओं के संपूर्ण बन्ध कार्यान्वित नहीं हुए हैं। यही कारण है कि वे और परमाणुओं को जोड़ने के लिये तत्पर रहते हैं। यदि हम इसका

उ   उ
  \   /
सूत्र लिखें।   प्र—प्र   तो इसमें प्राङ्गार के प्रत्येक परमाणु के तीन
  /   \
उ   उ

ही बन्ध विद्यमान हैं। प्रांगार परमाणु का चौथा बन्ध क्या हुआ? यदि हम यह मान लें कि दो प्रांगार परमाणुओं के एक एक बन्ध मुक्त हैं तो इस दशा में निम्न सूत्र प्राप्त होता है।
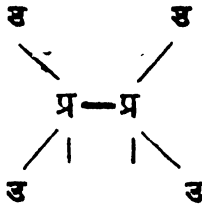
अथवा यदि हम यह मान लें कि प्रांगार के परमाणु दो बन्धों से बँधे हैं उस दशा में हमें निम्न सूत्र प्राप्त होता है। इसमें प्रांगार के बीच द्विबन्ध विद्यमान है।
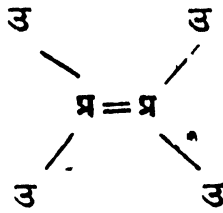
आज कल हमें ऐसा कोई संयोग ज्ञात नहीं है जिसमें प्रांगार के एक बन्ध मुक्त (free) हो। प्र $उ_३$ अथवा प्र $उ_२$ सदृश संयोग हमें ज्ञात नहीं है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि इस संयोग में प्रांगार के दो परमाणु द्विबन्ध से बंधे हैं। इनको संकलन संयोग बनने और वह भी सम संख्या के परमाणुओं के साथ से इसकी पुष्टि होती है।

अतः हम दक्षुलेन्य का संस्थापन सूत्र निम्नलिखित स्वीकार रहते हैं।

प्र $उ_२$
‖   अथवा   प्र $उ_२$ = प्र $उ_२$
प्र $उ_२$

द्विबन्ध से यहां यह न समझना चाहिए कि दो प्रागांर परमाणुओं के बीच कोई प्रबल संयोजन विद्यमान है। वास्तव में यह द्विबन्ध दुर्बलता का द्यातक है। ऐसे संयोग जब विबद्ध होते हैं तो द्विबन्ध के जोड़ पर ही पहले विबद्ध होते हैं। द्विबन्ध का होना केवल प्रागांर परमाणुओं के अननुवेधन (Unsaturation) का द्योतक है।

इस तैलकरी माला के कुछ एकक निम्नलिखित हैं। साधारण ताप पर ये सबही वातिय हैं।

नाम	सूत्र
दक्षुलेन्य (Ethylene)	प्रउ$_{२}$ = प्रउ$_{२}$
प्रमेलेन्य (Propylene)	प्रउ$_{३}$—प्रउ = प्रउ$_{२}$
त्रृ जु-घृतलेन्य (Butylene)	प्रउ$_{३}$—प्रउ$_{२}$—प्र उ = प्रउ$_{२}$
स-घृतलेन्य Symmetrical butylene	प्रउ$_{३}$—प्रउ = प्रउ—प्रउ$_{३}$
स-घृतलेन्य (Isobutylene)	प्रउ$_{३}$ \ प्र = प्रउ$_{२}$ / प्रउ$_{३}$

शुक्तलेन्य (Acetylene) प्र$_{२}$उ$_{२}$। शुक्तलेन्य नामक सधर्म माला का यह प्रथम एकक है। आंगार वाति में प्रायः ०·०६ प्रतिशत यह पाया जाता है। १८३६ ई० में डेवीने पहले पहल आम दहातु प्रांगेय पर जलकी क्रिया से इसे प्राप्त किया था। वोलर ने चूर्णातु प्रांगेय पर जल की क्रिया से १८६२ ई० में प्राप्त किया था।

प्राप्ति। उदजन के आवरण में प्रांगार विद्युत स्फुलिंग से सीधे आंगार और उदजन के संयोजन से १८५९ ई० में बर्थेलो ने इसे प्राप्त

(चित्र २४)

किया था। इसके लिए जो साधित्र प्रयुक्त होता है उसको चित्र २४

में दिखाया गया है। यह रीति व्यावहारिक महत्व का नहीं है। इससे केवल यही ज्ञात होता है कि प्रांगार और उदजन के सीधे संयोजन से यह प्राप्त हो सकता है।

प्रांगारिक पदार्थों के अपूर्ण दहन से भी शुक्लेन्य बनता है। जब पिनाल ज्वाला निम्नभाग में जलता है तब उससे जो वाति प्राप्त होती है उसमें ०·६ प्रतिशत तक शुक्लेन्य रहता है। ऐसी वाति को ताम्रयू-नीरेय के तिक्ताति विलयन में ले जाने से ताम्र शुक्लेय का रक्त निस्साद प्राप्त होता है। इस परीक्षण से शुक्लेन्य पहचाना जाता है।

२. प्रयोगशाला में सुविधा से चूर्णातु प्रांगेय पर जलकी क्रिया से शुक्लेन्य प्राप्त होता है। प्रकाश के लिये इसी रीति से शुक्लेन्य प्राप्त होता है।

सपरीक्षा १६—२०० घ० शि० मा० धारिता के कोराकार पलिघ में थोड़ा सिकता रखो। पलिघ में त्वक्षा लगाकर एक बिन्दुपाति निवाप और प्रदान नाल जोड़ दो। पलिघ में प्रायः १० घा० चूर्णातु प्रांगेय रखकर बिन्दुपाति निवाप से बूंद बूंद जल डालो। चूर्णातु प्रांगेय पर जल की क्रिया से शुक्लिलेन्य मुक्त होगा। जब पलिघ की वायु पूर्ण रूप से निकल जाय तब वाति को जल पर इकट्ठा करो।

$$चू प्र_2 + २ उ_2 ज = चू (जउ)_2 + प्र_2 उ_2$$
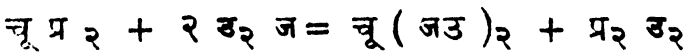
३. दक्षुलेन्य दुरेय पर सुपविक दहसर्जि की क्रिया से शुक्लेन्य तैयार होता है। यहां क्रियाएँ दो क्रम में होती हैं।

$$प्र उ_2 दु - प्र उ_2 दु + द ज उ = प्रउ_2 = प्र उ दु + उ_2ज$$

$$प्र उ_2 = प्र उ दु + द ज उ = प्रउ \equiv प्र उ + द दु + उ_2ज$$
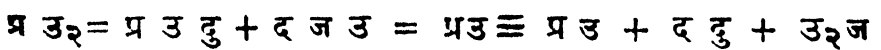
गुण। शुक्लेन्य रंगहीन वाति है। शुद्ध रूपमें इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है। वाणिजिक प्रांगेय से जो वाति प्राप्त होती है। उसमें एक अद्भुत और अरुचिकर गंध होती है। यह गन्ध भास्वी के लेश के कारण होती है। यह विषाक्त होती है। जल इसकी एक परिमा को, शुषव ६ गुना परिमा को और शुक्ता ३१ गुना परिमा को प्रविलीन करता है। °श० और २६ वा० निपीड पर यह तरल

बनता है। इस तरल का बुदबुदांक –८२ °श० है। इसकी घनता १३ और व्यूहाणुभार २६ है।

शुक्लेन्य धूएँ के साथ पर अति उष्ण ज्वाला से जलता है। शुक्लेन्य की एक परिमा को पूर्ण दहन के लिए २.५ परिमा जारक अथवा १२.५ परिमा वायु की आवश्यकता होती है। जब शुक्लेन्य एक विशेष अन्धसूची-रन्ध्र दाहक में जलता है तो इससे प्रबल भासुर प्रकाश उत्पन्न होता है। सम्भवतः जार-शुक्लेन्य ज्वाला अन्य सब ज्वालाओं से उष्णतम होती है। प्रायः २५००° श० तक ताप पहुंच जाता है। इन गुणों के कारण शुक्लेन्य प्रकाश और प्रचण्ड ताप उत्पन्न करने में प्रयुक्त होता है। ऐसा ताप बज्रायस के पट्टों के काटने और जोड़ने में प्रयुक्त होता है। वायु के साथ यह उत्स्फोटक मिश्र बनता है। जारक और शुक्लेन्य का मिश्र अति भयङ्कर उत्स्फोटकात्मक होता है।

शुक्लेन्य के धुँधला रक्तोष्ण नाल में प्रवाहन कराने से यह अंशतः धूपेन्य में परिणत होता है।

$$३ प्र_२ उ_२ = प्र_६ उ_६$$

ऐसे परिवर्तन को पुरुभाजन (polymerisation) कहते हैं। इसमें दो वा दो से अधिक व्यूहाणु मिलाकर एक जटिल व्यूहाणु बनते हैं जिसका व्यूहाणुभार पहले के व्यूहाणुभार का गुणन होता है। ऐसे सयोगों के प्रतिशत निबन्ध (percentage composition) और मात्रिक सूत्र एक होते हैं पर उनके व्यूहाणुभार भिन्न होते हैं। ऐसे संयोग एक दूसरे के पुरुभाज (polymer) होते हैं। धूपेन्य (benzene) शुक्लेन्य का पुरुभाज है। पुरुभाजन (polymerisation) में यह भी निहित है कि जटिल व्यूहाणु सरलता से मूल सरलतर व्यूहाणुओं में परिणत हो सकता है।

शुक्लेन्य के ताम्रय नीरेय के तिक्ताति विलयन में प्रवाहित करने से ताम्रय शुक्लेन्य का रक्त अथवा न्यवरक्त पीत (chocolate) बभ्रु निस्साद एवं रजत भूयीय के तिक्ताति विलयन में रजत शुक्लेय का

श्वेत निस्साद प्राप्त होता है। ये दोनों ही संयोग शुष्कावस्था में उत्स्फोटात्मक होते हैं। रक्त ताम्र शुक्लेय का बनना शुक्लेन्य का एक सूक्ष्म परीक्षण है

शुक्लेन्य भी संकलन संयोग बनता है। यह एक-संयुज तत्त्वों अथवा मूलों के एक अथवा दो युग्मों से संयुक्त होता है। उदजन के साथ यह महातुकाल अथवा रूपक के सूक्ष्म क्षोद की उपस्थिति में संयुक्त हो पहले दक्षुलेन्य और बाद में दक्षिण्य बनता है

प्रउ $\equiv$ प्रउ + उ$_2$ = प्रउ$_2$ = प्रउ$_2$

दक्षुलेन्य

प्रउ$_2$ = प्रउ$_2$ + उ$_2$ = प्रउ$_3$–प्रउ$_3$

दक्षिण्य

लवणजन के साथ संयुक्त हो यह शुक्लेन्य द्विलवणेय और फिर शुक्लेन्य चतुर्लवणेय बनता है।

प्र·उ $\equiv$ प्रउ + दु$_2$ = प्र उ दु = प्र उ दु

शुक्लेन्य द्वि दुरेय

प्र उ दु = प्र उ दु + दु$_2$ = प्र उ दु$_2$–प्र उ दु$_2$

शुक्लेन्य चतुर्दुरेय

लवणजन अम्लों के साथ यह दो क्रमों में संयुक्त होता है। उदनीरिक अम्ल से पहले क्रम में यह द्राक्ष्यल नीरेय (vinyl chloride) और अन्तमें दक्षुलेन्य नीरेय (ethylidene chloride) बनता है ।

प्र उ $\equiv$ प्र उ + उ ज = प्र उ$_2$ = प्र उ जं

द्राक्ष्यल नीरेय

प्र उ$_2$ = प्र उ जं = प्र उ$_3$–प्र उ ज$_2$

दक्षुलेन्य नीरेय

यहाँ यह विशेषकर जानने की आवश्यकता है कि उदजाम्बिक अम्ल की क्रिया में जम्बुकी के दोनों परमाणु एकही प्रांगार से संबद्ध होते हैं ;

पारदिक शुल्वीय के विलयन की आवेजक क्रिया से शुक्तलेन्य शुक्तसुव्युद (acetaldehyde) में परिणत हो जाता है।

प्र₂ उ₂ + उ₂ ज = प्र उ₃ – प्र ज उ
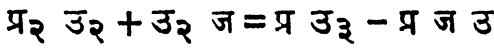
इस शुक्तसुव्युद के जारण से शुक्तिक अम्ल और प्रह्लासन से दक्षुल सुषव सरलता से प्राप्त होता है। यह रीति बड़ी मात्रा में शुक्तिक अम्ल और सुषव के निर्माण में प्रयुक्त हो सकती है। इससे शुक्तिलेन्य का वाणिजिक निर्माण महत्व का हो गया है।

शुक्तलेन्य की संरचना। शुक्तलेन्य के गुणों से ज्ञात होता है कि यह भी अननुविद्ध उदांगार है। दक्षुलेन्य से यह अधिक अननुविद्ध है क्योंकि इसमें दक्षुलेन्य से उदजन के दो परमाणु कम हैं। जिन कारणो से दक्षुलेन्य में द्विबन्ध का होना निश्चित हुआ है उन्हीं कारणों से शुक्तिलेन्य में 'त्रिबन्ध' (triple bond) होना प्रमाणित होता है। ऐसे बन्ध से यह संयोग अधिक अस्थायी हो जाता है। इसके व्यूहाणु सूत्र निम्नलिखित हैं जहाँ दो प्रांगार परमाणु परस्पर तीन बन्धों से संयुक्त हैं।
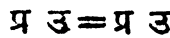
प्र उ ≡ प्र उ

इस माला के कुछ एकक निम्न-लिखित हैं।

शुक्तलेन्य	प्र उ ≡ प्र उ
प्रोदल शुक्तलेन्य	प्र उ₃ – प्र ≡ प्र उ
दक्षुल शुक्तलेन्य	प्र₂ उ₅ – प्र ≡ प्र उ
प्रमेल शुक्तलेन्य	प्र₃ उ₇ – प्र ≡ प्र उ

अनुविद्ध और अननुविद्ध उदांगारों की तुलना। ये उदांगार सामान्य भौतिक गुणों में सादृश्य रखते हैं। पर उनके रसायनिक गुणों में बड़ा पार्थक्य है। अनुविद्ध उदांगारों में प्रांगार के परमाणु उदजन के परमाणुओं से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होने के कारण ये सर्वथा स्थायी और रसायनतः निष्क्रिय होते हैं। क्षारकों, अम्लों, प्रह्लासन कर्त्ताओं और सामान्य जारण कर्त्ताओं की इनपर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। इन को केवल नीरजी और दुराग्नी से और विशेष परिस्थितियों

में जंबुकी से प्रतिक्रियाएँ होती हैं और इससे वे आदेश संयोग बनते है जिन में उदांगार के एक वा एक से अधिक उदजन प्रतिस्थापित हो जाते हैं। अननुविद्ध उदांगारों में प्रांगार परमाणु द्विबन्ध वा त्रिबन्ध से संयुक्त होते हैं। इस से वे अस्थायी और रसायनतः अतिक्रियाशील होते हैं। उदजन, लवणजन, लवणजन-अम्ल प्रबल अथवा धूमायमान शुल्बारिक अम्ल, उपनीय अम्ल, जारणकर्त्ताओं इत्यादि से वे शीघ्रता से आक्रान्त हो संकलन संयोग बनते हैं जिनमें प्रतिक्रियित पदार्थों के एक अथवा अधिक व्यूहाणु जुट जाते हैं।

प्रश्न

१. तैलकरी और शुक्लेन्य के गुणों और उनके सामान्य व्यूहाणु सूत्र का वर्णन करो। इनमें और मृद्रसा में क्या पार्थक्य है?

२. दक्षुल सुषव से दक्षुलेन्य की प्राप्ति का वर्णन करो। दक्षुलेन्य पर (१) दुराघ्री, (२) उदजंबिक अम्ल (३) शुल्बारिक अम्ल और (४) जायमान उदजन की क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं?

३. द्विबन्ध का क्या आशय है? किन कारणों से दक्षुलेन्य में द्विबन्ध माना जाता है।

४. शुक्लेन्य साधारणतया कैसे प्राप्त होता है। इसके गुणों की दक्षुलेन्य के गुणों से तुलना करो।

५. प्रांगार और उदजन से तुम कैसे (१) दक्षुलेन्य (२) दक्षुल सुषव और (३) धूपेन्य प्राप्त करोगे?

६. पुरभाजन क्या है? इसे उदाहरण के साथ समझाओ।

७. अननुविद्ध उदांगार का क्या आशय है? वे किन बातों में अनुविद्ध उदांगार से भिन्न हैं।

———

अध्याय ६

एकोदिक सुषव

(Monohydric alcohol)

$$प्र_{स} उ_{२स+१} ज उ$$
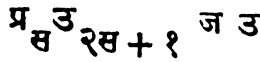
एकोदिक सुषवों की एक सधर्म माला बनती है। इसके व्यूहाणुओं में जारक का एक परमाणु रहता है। मृद्रसा से बना हुआ यह इसलिये समझा जा सकता है कि मृद्रसा के एक उदजन के स्थान में एक उदजारल (hydroxyl)(ज उ) विद्यमान है। इस माला का सामान्यसूत्र प्र$_{स}$ उ$_{२स+१}$ ज उ है। इन सुषवों के लाक्षणिक गुण इस उदजारल मूल के कारण ही हैं। प्रांगार रसायन में सुषव का स्थान बड़ा महत्व का है, वैसा ही महत्व का जैसा अप्रांगार रसायन में पीठों का स्थान है। सुषव क्लीव है पर अम्लों की क्रिया से सुषव से जो संयोग बनते हैं उन्हें प्रलवण (esters) कहते हैं। प्रलवण बनने के साथ-साथ इस प्रतिक्रिया में जल भी बनता है। यह प्रतिक्रिया उसी प्रकार की है जैसी अम्ल और पीठ से लवण बनने में होती है। इस माला के प्रारम्भ के कुछ एकक निम्न हैं।

		बुदबुदांक
प्रोदल सुषव	प्र उ$_{३}$ ज उ	६६°श०
दक्षुल ,,	प्र$_{२}$ उ$_{५}$ ज उ	७८°श०
प्रमेल ,,	प्र$_{३}$ उ$_{७}$ ज उ	९७°श०
स-प्रमेल ,,	प्र$_{३}$ उ$_{७}$ ज उ	८१°श०
घृतल ,,	प्र$_{४}$ उ$_{९}$ ज उ	११७°श०
स-घृतल ,,	प्र$_{४}$ उ$_{९}$ ज उ	१०८°श०

इन सुषवों में पहले और दूसरे अधिक महत्व के है। पहले को

प्रोदल सुषव, काष्ठ सुषव, अथवा काष्ठ उत्तैल (naphtha) कहते है।

दूसरे को दक्षुल सुषव, किण्वन सुषव, व मद्य सुषव कहते हैं। ये दोनों औद्योगिक और वैज्ञानिक महत्व के है।

प्रोदल सुषव, प्रउ$_3$जउ। १६६१ ई० में बायल (Boyle) ने अशुद्ध रूप में पहले-पहल इसे तैयार किया था। १८३१ ई० में दूमा और पलिगो (Dumas and Peligot) ने इसको मौलिक रसायनिक प्रकृति का पता लगाया था। यह सुषव प्रलवण के रूप में पौधों के अनेक सुगन्ध तैलों (essences) में पाया जाता है।

काष्ठ से उत्पादन। काष्ठ के नाशक आसवन से यह सुषव प्रधानतया प्राप्त होता है। काष्ठ के इस नाशक आसवन में काष्ठ वायु से सुरक्षित लोहे के बकभांड में तपाया जाता है। इससे काष्ठ के उत्पत पदार्थ उड़कर निकल जाते और अनुत्पत पदार्थ बकभांड में रहजाते हैं। शुष्क काष्ठ के नाशक आसवन से निम्न लिखित भिन्न सृष्ट प्राप्त होते हैं।

(१) काष्ठवाति। यह वाति अभिज्वाल्य होती और इस में प्रधानतः उदजन और प्रोदीन्य और अल्प मात्रा में दक्षुलेन्य, प्रांगार जारेय इत्यादि रहते हैं। यह ईंधन के रूप में व्यवहृत होती है।

(२) काष्ठासुत (Pyroligneous) अम्ल। यह जलीय आसुत है जिसमें शुक्तिक अम्ल, प्रोदल सुषव और शुक्ता रहते हैं। इन पदार्थों की प्राप्ति का यह एक प्रमुख उद्गम है।

(३) काष्ठ-राल। यह गाढा काला तरल अथवा अर्ध-सान्द्र होता है जिसमें दर्शव (phenol) और इसी प्रकार के अन्य पदार्थ रहते है। यह काष्ठ के सुरक्षण में प्रयुक्त होता है।

(४) काष्ठ्यांगार। बकभांड में जो अवशेष रह जाता है वह काष्ठ्यांगार हैं। इसमें प्रधानतः प्रांगार होता है जिसमें कुछ दहातु प्रांगरीय और अन्य खनिज पदार्थ मिले रहते हैं। यह ईंधन के रूप में प्रधानतः धातुनिर्माण में प्रहासक के रूप में व्यवहृत होता है।

काष्ठासुत अम्ल में जलके अतिरिक्त प्रायः ८ प्रतिशत शुक्तिक अम्ल

४ प्रतिशत प्रोदल सुषव और ०·४ प्रतिशत शुक्ता रहती है। इसे चूर्णक-दूध (milk of lime) से क्लीव करते हैं। इससे शुक्तिक अम्ल अनुत्पत्त चूर्णातु शुक्तीय में परिणत होता है। सृष्ट को अब आस्रवन करते जिससे प्रोदाल सुषव और शुक्ता आसुत हो जाता। इस जलीय आसुत में प्रोदल सुषव और शुक्ता के अतिरिक्त अल्प मात्रा में अन्य अशुद्धताएँ रहती हैं। इस आसुत में जीव-चूर्णक (quick lime) मिलाकर फिर प्रभागशः आस्रवन करते। आस्रवन वंश के प्रयोग से शुक्ता (बु० ५६°श०) और प्रोदल सुषव (बु·६६°श०) का वेचन करते हैं। शुक्ता के अन्तिम लेश को इस रीति से दूर करना कठिन है। अतः वाणिजिक काष्ठ सुषव अथवा काष्ठ उत्तैल में अशुद्धता के रूप में शुक्ता रह जाती है। ऐसे वाणिजिक काष्ठ सुषव से शुद्ध प्रोदल सुषव की प्राप्ति के लिए सुषव को अजल चूर्णातु नीरेय के साथ जल-तापनपर पश्चवाही संघनक लगाकर तबतक तपाते हैं जबतक चूर्णातु नीरेय प्रविलीन न हो जाय। इस चूर्णातु नीरेय के विलयन को अब ठण्ढा होने को छोड़ देते हैं। उससे प्रोदल सुषव के साथ संबद्ध चूर्णातु नीरेय के स्फट, चूनी २·४प्रउ$_3$जउ, निकल आते हैं। शुक्ता तरलरूप में रह जाता है। इन स्फटों से तरल बहाकर निकाल लेते और फिर स्फटोंको सूखाकर तपाने से शुद्ध प्रोदल सुषव निकलकर संघनित हो आदाता में इकट्ठा होता है।

२· संश्लिष्ट रीति से जल-वाति (water gas) को कुछ उष्ण आवेजकों पर प्रवाहित करने से प्रोदल सुषव प्राप्त होता है। इस कार्य के लिए श्वेत-उष्ण (white-hot) न्यंगार (coke) पर जलवाष्प की क्रिया से जलवाति प्राप्त होती है।

$$\text{प्र} + \text{उ}_2\text{ज} \longrightarrow \text{प्रज} + \text{उ}_2 \xrightarrow{\text{उ}_2} \text{प्रउ}_3\ \text{जउ}$$
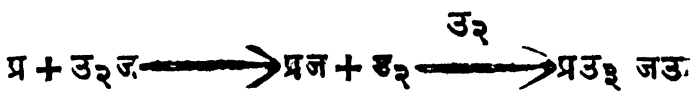
न्यांगार जल-वाति प्रोदल सुषव

व्यापार के लिए इस रीति से प्रोदल सुषव प्राप्त होता है।

गुण । प्रोदल सुषव चञ्चल (mobile) और रंगहीन वरल है। इसमें मद्यसी गंध और दाहक स्वाद होता है। इसका बुदबुदांक ६६°श. है। श्यानांक –९५°श०, सापेक्ष भार ०.८ है। यह सब अनुपात में जल से मिल जाता है। यह विषैला होता है। यह अभि-ज्वाल्य है और नीली ज्वाला से जलता है। वायु से उत्स्फोट मिश्र बनता है। प्रोदल सुषव पर क्षारातु की क्रिया होती है। इससे उदजन निकलता और क्षारातु प्रोदीय बनता है। इस क्रिया में प्रोदल सुषव का केवल एक उदजन क्षारातु से प्रतिस्थापित होता है। इसके शेष तीन उदजन पर क्षारातु की कोई क्रिया नहीं होती। इस प्रतिक्रिया से यह उत्कर्ष निकलता है कि प्रोदल सुषव के उदजन के चार परमाणुओं में एक की स्थिति अन्य तीनों से भिन्न है।

$$२ \text{ प्रउ}_४\text{ज} + २ \text{ क्ष} = २ \text{ प्रउ}_३\text{जक्ष} + \text{उ}_२$$
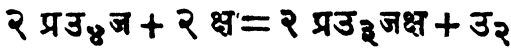
क्षारातु प्रोदीय

भास्वर पञ्चनीरेय के प्रोदल सुषव में सावधानी से डालने से प्रोदल नीरेय नामक संयोग -प्रउ$_३$नी- और भास्वर-जार-नीरेय, -भजनी$_३$ बनता है।

$$\text{प्र उ}_४\text{ज} + \text{भनी}_५ = \text{प्रउ}_३\text{नी} + \text{भजनी}_३ + \text{उनी}$$
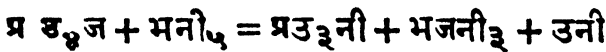
इस प्रतिक्रिया में जारक के एक और उदजन के एक परमाणु एक ही साथ नीरजी के एक परमाणु से प्रतिस्थापित होते हैं।

रक्त भास्वर की उपस्थिति में प्रोदल सुषव पर दुराग्री और जंबुकी की क्रिया से, क्रमशः प्रोदल दुरेय और प्रोदल जंबेय बनते है। उदनीरिक अम्ल और भूयिक अम्लकी क्रिया से क्रमशः प्रोदल नीरेय और प्रोदल भूयीय बनते हैं। संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्लकी क्रियासे इसके आधिक्य में तपाने पर द्विप्रोदल दक्षु प्राप्त होता है।

जब प्रोदल सुषव जारित होता है तब उससे पहले वम्र सुन्युद (formaldehyde) फिर वम्रिक अम्ल और अन्त में प्रांगार द्विजारेय बनता है।

$$प्रउ_४ज \xrightarrow{ज} उप्रउज + उ_२ज$$

वम्र सुव्युद

$$उप्रउज \xrightarrow{ज} उप्रजजउ \xrightarrow{ज} प्रज_२ + ब_२ज$$

वम्रिक अम्ल प्रांगार द्वि-जारेय
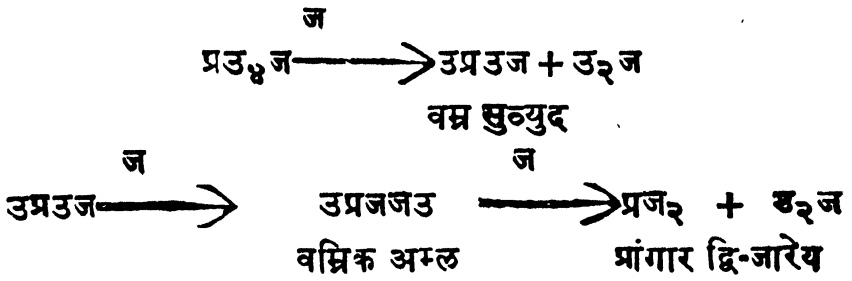
पहचानना। प्रोदल सुषव में थोड़ा नम्रलिक अम्ल और एक अथवा दो बूंद संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल डालकर तपाने से प्रोदल नम्रलीय (wintergreen, हेमन्तहरि तैल) का सौरभ प्राप्त होता है।

प्रयोग। १. प्रोदल सुषव लाक्षी (varnishes), प्रलाक्ष (lacquers) इत्यादि के निर्माण में विलायक का काम देता है। २. प्रोदलेत प्रासव के निर्माण में यह प्रयुक्त होता है। दक्षुल सुषव को विप्रकृत कर यह अपेय बना देता है। ३. अनेक भैषज (drugs), भाचित्रण (photographic) रसायनिक, द्रव्यों और रंजकों के संश्लेषण में प्रत्यक्ष वा परोक्ष रीति से व्यवहृत होता है। ४. एक रोगाणु नाशक, वम्रस्त्री (formalin) के निर्माण में भी प्रयुक्त होता है।

संस्थापना। क्षारातु और भास्वर पंचनीरेय से प्रोदल सुषव और जल पर एक सी क्रियाएँ होती हैं। प्रोदल सुषव भी जल के समान कुछ लवणों से मिलकर स्फट बनता है। निम्न क्रियाओं से भी प्रोदल सुषव और जलका सादृश्य स्पष्ट हो जाता है।

जल उजउ	प्रोदल सुषव प्र $उ_३$ज उ
उजउ + क्ष = उ ज क्ष + उ	प्र $उ_३$ज उ + क्ष = प्र $उ_३$ज क्ष + उ
उ ज उ + भ $नी_५$ = उनी + उनी + भ ज $नी_३$	प्र $उ_३$ज उ + भ नी = प्र $उ_३$नी + उनी + भ ज $नी_३$
चू $नी_२$, ६ $उ_२$ज	चू नी २, ४प्र $उ_३$ज उ
(स्फटन का जल)	(स्फटन का सुषव)
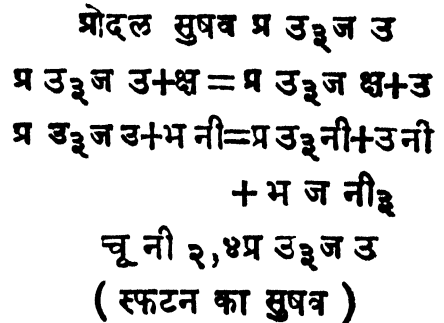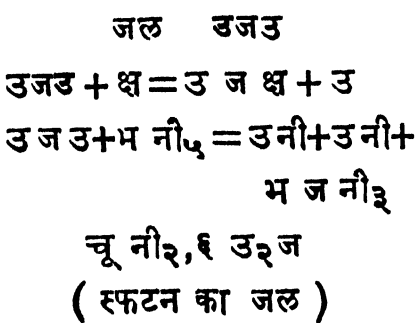
प्रोदल सुषव और दृह विक्षार और दहसर्जि में भी सादृश्य है। निम्नलिखित क्रियाओं से यह सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

$\text{क्ष ज उ} + \text{उ भू ज}_{३} = \text{क्ष भू उ}_{३} + \text{उ}_{२}\text{ ज}$

$\text{क्ष ज उ} + \text{उ नी} = \text{क्ष नी} + \text{उ}_{२}\text{ ज}$

$\text{क्ष ज उ} + \text{उ}_{२}\text{ शु ज}_{४} = \text{क्ष उ शु ज}_{४} + \text{उ}_{२}\text{ ज}$

$\text{प्र उ}_{३}\text{ ज उ} + \text{उ भू ज}_{३} = \text{प्र उ}_{३}\text{ भू ज}_{३} + \text{उ}_{२}\text{ ज}$

$\text{प्र उ}_{३}\text{ ज उ} + \text{उ नी} = \text{प्र उ}_{३}\text{ नी} + \text{उ}_{२}\text{ ज}$

$\text{प्र उ}_{३}\text{ ज उ} + \text{उ}_{२}\text{ शु ज}_{४} = \text{प्र उ}_{३}\text{ उ शु ज}_{४} + \text{उ}_{२}\text{ ज}$

इस तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रोदल सुषव कुछ बातों में जल से और कुछ बातों में दहविक्षार से सादृश्य रखता है। अतः इसकी रचना जल उ-ज-उ और दहविक्षार क्ष-ज-उ के समान ही होनी चाहिये। प्रोदल सुषव की संस्थापना सूत्र निम्न लिखित दिया गया है। इस सूत्र से स्पष्टरूप से ज्ञात होता है कि
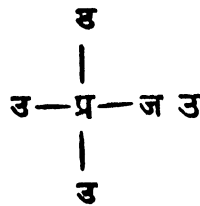
इसके उदजन के चार परमाणुओं में तीन तो प्रांगार से सीधे संयुक्त हैं और चौथा जारक के द्वारा प्रांगार से संयुक्त है। यह चौथा परमाणु जारक के साथ मिलकर उद-जारल मूल बनता है। इस उदजारल मूल की उपस्थिति का ज्ञान क्षारातु और भास्वर पंचनीरेय के द्वारा हमें होता है।

दक्षुल सुषव। $\text{प्र}_{२}\text{ उ}_{५}\text{ ज उ}$। दक्षुल सुषव को किण्वन सुषव अथवा द्राक्ष्यसार अथवा केवल सुषव कहते हैं। अनेक पौधों के सुगन्ध तैलों में दक्षुल प्रलवण के रूप में प्रांगारिक अम्लों के साथ सम्बद्ध यह पाया जाता है। इसके निबन्ध का पूरा ज्ञान पहले-पहल दुमा को प्राप्त हुआ था। इसका कृत्रिम उत्पादन पहले १८२८ ई० में हुआ था। १८५४ ई० में बर्थेलोने इसका संश्लेषण किया था।

उत्पादन। १· मधु व शर्करा के एकमात्र किण्वन से यह प्राप्त

होता है। शर्करा निर्माण में उपसृष्ट (bye-product) के रूप में फाणिरस (राब) प्राप्त होता है। फाणिरस किण्वन से भी दक्षुल सुषव प्राप्त होता है। इस विधा में मण्ड के जटिल व्यूहाणु शर्करा के सरलतम व्यूहाणुओं में टूटकर पहले यव शर्करा (malt sugar) और पीछे मधुम अथवा द्राक्ष शर्करा बनते और फिर ये किण्वन द्वारा सुषव और प्रांगार द्वि-जारेय बनते हैं।

$$(प्र_6\ उ_{10}\ ज_5)_स + स\cdot उ_2\ ज = स\cdot प्र_6\ उ_{12}\ ज_6$$

मधुम

$$प्र_6\ उ_{12}\ ज_6 \longrightarrow 2\ प्र_2\ उ_6\ ज + 2\ प्र\ ज_2$$

मधुम सुषव

संपरीक्षा १७। २०० घा० ईक्षुशर्करा को एक प्रस्थ जल में प्रविलीन कर एक बड़े कूपी में रखो। १५ घा० यवासव किण्व को थोड़े जल में लेपी बनाकर कूपी के ईक्षु शर्करा के विलयन में डालकर ढीला पिधा लगाकर उष्ण स्थान में दो दिन तक रख दो। किण्वन का अधिकतम उपयुक्त ताप २५° श० से ४०° श० के बीच है। दो दिनों के पश्चात् विलयन में प्रायः १० प्रतिशत दक्षुल सुषव पाया जायगा। एक लम्ब-ग्रीव आसवन पलिव में रखकर जल संघनक और आदाता जोड़कर आसवन करो। चीनमृत्स्ना के छोटे छोटे टुकड़े को धमका रोकने के लिए उसमें छोड़ दो। सिकता तापन पर तपाओ। आदाता में कुछ तरल इकट्ठा होगा। उस तरल में कुछ जीव-चूर्णक का पिंड डालकर रातभर रहने दो। दूसरे दिन फिर आसवन वंश, संघनक और आदाता जोड़कर मृद्रस्था तापन पर आसवन करो। इस प्रकार वाणिजिक शुद्ध सुषव प्राप्त होता है। इसमें ०·१ से ०·५ प्रतिशत जल रहता है। जल का अन्तिम लेश चूर्णातु के १ प्रतिशत भार डालकर आसवन करने से दूर होता है।

२—आजकल वाणिज्य के लिए एक दूसरी रीति से भी दक्षुल सुषव प्राप्त होता है। दक्षुलेन्य पर प्रबल शुल्बारिक अम्ल की क्रिया

से दक्षुल उदशुल्बीय बनता है। इसके उदांशन से दक्षुल सुषव बनता है।

दक्षुलेन्य + शुल्बारिक अम्ल = दक्षुल·उद·शुल्बीय

$प्र_2 उ_4 \quad उ_2 शु ज_4 = प्र_2 उ_5 - उ - शु ज_4$

$प्र_2 उ_5 उ शु ज_4 + उ_2 ज = प्र_2 उ_5 ज उ + उ_2 शु ज_4$

गुण। दक्षुल सुषव चञ्चल और रङ्गहीन तरल है जिसमें विशिष्ट मद्यसी गन्ध और दाहक स्वाद होता है। इसका बुदबुदांक ७८° और श्यानांक -११७° श०, सापेक्ष भार २०° श० पर ०·७८९ है। यह उन्दचूष (hygroscopic) है और सब अनुपात में जल से मिश्रित हो जाता है। दक्षुल सुषव के जल से मिलने से उष्मा का उद्भव और परिमा का सिकुड़न होता है। आस्रुत प्रासव में प्रायः ९० प्रतिशत सुषव रहता है। वाणिजिक शुद्ध सुषव में एक प्रतिशत से कम जल रहता है। रसायनतः शुद्ध सुषव में जल नहीं होता। ऐसा सुषव अजल ताम्र शुल्बीय को नीला नहीं करता।

सुषव अनेक प्रांगारिक और अप्रांगारिक पदार्थों को प्रविलीन करता है। भास्वर, शुल्बारि, जम्बुकी, लाह और कर्पूर इसमें शीघ्रता से घुल जाते हैं। देह पर इसकी क्रिया नशीली होती है पर कुछ ज्वरघ्नक क्रियाएँ भी होती हैं और इससे देह में की जारण विधा का ह्रास होता है।

सुषव उष्ण आनील अचाकिसीनी ज्वाला से जलता है। वायु के साथ इसका वाष्प उत्स्फोट-मिश्र बनता है। यह क्लीव है। इस पर क्षारातु की क्रिया से उदजन निकलता है। उदजन के ६ परमाणुओं में से केवल एक परमाणु क्षारातु से प्रतिस्थापित होता है।

$२ प्र_2 उ_5 ज उ + २ क्ष = २ प्र_2 उ_5 ज क्ष + उ_2$

भास्वर नीरेय अथवा भास्वर और दुराग्नी अथवा जम्बुकी के साथ यह दक्षुल नीरेय, दक्षुल दुरेय और दक्षुल जम्बेय उसी प्रकार बनता है जैसे प्रांगोल सुषव।

$३ प्र_2 उ_5 ज उ + भ दु_3 = ३ प्र_2 उ_5 दु + भ (ज उ)_3$

सुषव पर संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल की क्रिया महत्व की है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में इससे भिन्न भिन्न सृष्ट प्राप्त होते हैं। जल-तापन के ताप पर सुषव का एक परमाणु शुल्बारिक अम्ल के एक परमाणु के साथ प्रतिक्रियित हो दक्षुल उद-शुल्बीय बनता है।

$$प्र_२ उ_५ ज उ + उ_२ शु ज_४ = प्र_२ उ_५ उ शु ज_४ + उ_२ ज$$

अब यदि सृष्ट को शुल्बारिक अम्ल के आधिक्य में और तपावें तो उससे दक्षुलेन्य बनता है।

$$प्र_२ उ_५ उ शु ज_४ = प्र_२ उ_४ + उ_२ शु ज_४$$

यदि सृष्ट को सुषव के आधिक्य में और तपावें तो उससे द्विदक्षुल दक्षु बनता है।

$$प्र_२ उ_५ उ शु ज_४ + प्र_२ उ_६ ज = \underset{\text{द्वि-दक्षुल दक्षु}}{प्र_२ उ_५ ज प्र_२ उ_५} + उ_२ शु ज_४$$

इस प्रकार ताप और सुषव और शुल्बारिक अम्ल के संकेन्द्रन के परिवर्तन से दक्षुल उद शुल्बीय, दक्षुलेन्य अथवा दक्षुल दक्षु प्राप्त कर सकते हैं।

सुषव पर उदनीरिक और भूयिक अम्लों की क्रियाओं से दक्षुल नीरेय और दक्षुल भयीय बनते हैं। शुक्तिक अम्ल की क्रियासे दक्षुल शुक्तीय नामक प्रलवण बनता है।

$$प्र_२ उ_५ ज उ + प्र उ_३ प्र ज ज उ = \underset{\text{दक्षुल शुक्तीय}}{प्र उ_३ प्र ज ज प्र_२ उ_५} + उ_२ ज$$

प्रलवणकी मात्रा बहुत अधिक बनती है यदि प्रबल शुल्बारिक अम्ल अथवा द्रवित कुप्यातु नीरेय सदृश बिजलीयनकर्त्ताएँ (dehydrating agent) प्रतिक्रियित पदार्थों में विद्यमान हों।

सुषव पर नीरजी से निरसु (chloral) प्राप्त होता है। यदि वहाँ कोई क्षारक विद्यमान है तो निरवम्रल (chloroform) प्राप्त होता है। सुषव पर नीरजी की क्रिया कुछ जटिल होती है। नीरजी जारणकर्त्ता और प्रतिस्थापनकर्ता दोनों के रूप कार्य करता है। सुषव

पहले जारित हो सुम्युद में परिणत होता और फिर उदजन नीरजी के द्वारा प्रतिस्थापित हो निरसु बनता है।

$$प्र\ उ_३\ प्र\ उ_२\ ज\ उ + नी_२ = प्र\ उ_३\ प्र\ उ\ ज + २\ उ\ नी$$

$$प्र\ उ_३\ प्र\ उ\ ज + ३\ नी_२ = प्र\ नी_३\ प्र\ उ\ ज + ३\ उ\ नी$$

निरसु

$$प्र\ नी\ ३\ प्र\ उ\ ज + क्ष\ उ\ ज = प्र\ उ\ नी_३ + उ\ प्र\ ज\ ज\ क्ष$$

निरवम्रल क्षारातु वम्रीय

जंबुकी और क्षारक के साथ दक्षुल सुषव जम्बु-वम्रल (iodoform) बनता है। जारणकर्ताओं से सुषव जारित हो पहले शुक्त सुम्युद और फिर शुक्तिक अम्ल बनता है।

$$प्र\ उ_३\ प्र\ उ_२\ ज\ उ \xrightarrow{ज} प्र\ उ_३ प्र\ उ\ ज \xrightarrow{ज} प्र\ उ_३ प्र\ ज\ ज\ उ$$

दक्षुल सुषव — शुक्त सुम्युद — शुक्तिक अम्ल

पहचानना। दक्षुल सुषव को शुक्तिक अम्ल के साथ सकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल की कुछ बूदों की उपस्थिति में तपाने से शुक्तिक अम्ल के प्रलवण के बनने से सुष्ट में सौरभ प्राप्त होता है। इस विशिष्ट सौरभ से सुषव पहचाना जाता है। जम्बु वम्रल के परीक्षण से भी निम्न रीति से इसे पहचान सकते हैं।

संपरीक्षा १८। एक परीक्षण नाल में सुषव की कुछ बूँदें रखो और उसमें जंबुकी का एक स्फट और दह सर्जि विलयन की कुछ बूँदे डालो। परीक्षण नाल के विलयन को अब उबलते जल में रखकर धीरे धीरे उष्ण करो। एक विशिष्ट गंधवाला पीत स्फट जम्बु वम्रल का निकल आवेगा।

संस्थापना। दक्षुल सुषव की संरचना $प्र उ_३ \cdot प्र उ_२ ज उ$ है। इस सूत्र की संस्थापना वैसी ही की जा सकती है जैसे प्रोदल सुषव की संरचना में उसके सूत्र की की गई है या इसमें भी उदजन का केवल एक परमाणु उदजन के अन्य परमाणुओं से भिन्न होता है।

उपयोग। दक्षुल सुषव औषधों, निष्कर्षों (tincture), रसायनिक

उद्योगों, शुक्तिक अम्ल और उत्स्फोटक पदार्थों इत्यादि के निर्माण में प्रयुक्त होता है। मोद्लीयित (methylated) प्रासव का यह आधार है। अनेक उद्योगों में विलायक के रूप में, कुछ दीपकों (lamps), ज्वालको (burners), वाष्पित्रो (boilers) इत्यादि में आर्द्रा उत्पन्न करने में व्यवहृत होता है। मात्तैल के साथ मिलाकर यह अभ्यन्तरदहन यन्त्र में प्रयुक्त होता है। इससे अनेक रंजक भी प्रस्तुत होते हैं। शारीरीय निदर्शन (models) रक्षण में, आत्मवह (automobile) में प्रति-श्यान के रूप में और अनेक पेय में यह व्यवहृत होता है।

सुषव प्राप्त करने की सामान्य रीतियां। उपर्युक्त रीतियों के अतिरिक्त निम्न रीतियों से भी सुषव प्राप्त होते हैं।

(१) क्षारल लवणेय पर क्षारकों की क्रिया से

$$\text{प्रउ}_3\text{नी} + \text{दजउ} = \text{प्रउ}_3\text{जउ} + \text{दनी}।$$

(२) आद्य तिक्तों पर भूय्य अम्ल की क्रिया से

$$\text{प्रउ}_3\text{भूउ}_2 + \text{उभूज}_2 = \text{प्रउ}_3\text{जउ} + \text{भू}_2 + \text{उ}_2\text{ज}$$

(३) सुव्युद के प्रह्रावन से

$$\text{प्रउ}_3\text{प्रउज} + 2\text{उ} = \text{प्रउ}_3\text{प्रउ}_2\text{जउ}$$
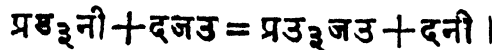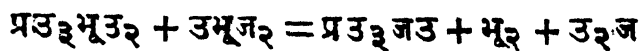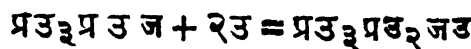
उच्च एको-दिक सुषव

प्रमेल सुषव। प्रमेल सुषव दो रूपों में प्राप्त होता है। प्रमेल सुषव $\text{प्र उ}_3\ \text{प्र उ}_2\ \text{प्र उ}_2\ \text{जउ}$ और स-प्रमेल सुषव, $\text{प्र उ}_3\ \text{प्र उ ज उ}$ प्र उ_3। प्रमेल सुषव रंगहीन ९७° श. बुदबुदांकवाला तरल है। जल में यह विलेय है। गन्धैल (fusel) तैल में यह होता है। स-प्रमेल सुषव ८३° श. पर उबलता है। यह भी रंगहीन तरल है और गन्धैल तेल में होता है।

मण्डल सुषव। मण्डल सुषव आठ सभाजिक (isomeric) रूपों में होता है। क्षिप्र मण्डल (active) सुषव, $\begin{matrix}\text{प्रउ}_2\\\text{प्रउ}_3\end{matrix}\!\!>\text{प्रउ}-\text{प्र}$

उ$_2$ ज उ, बु·१२५° श· गन्धैल तेल में होता है। तृतीयिक मण्डल सुषव (tertiary amyl alcohol) $\frac{प्रउ_3}{प्रउ_3} > प्र < \frac{प्रउ_3}{जउ}$, बु· १०२·५° श०, में कर्पूर सी गंध होती और कृत्रिम निद्रा के लिए प्रयुक्त होता है। मण्डल सुषव जल में अत्यल्प विलेय होते हैं। तिमिल (cetyl) सुषव, द्रा·४९° श· सिक्थल (ceryl) सुषव द्रा· ७९° श· माधु सिक्थिल (myrycyl) सुषव द्रा· ८५° श० सान्द्र सुषव हैं जो सिक्थ (wax) में पाये जाते हैं।

किण्वन और विकर क्रिया

(Fermentation and Enzyme action)

द्राक्षिरा (wine) प्राप्त करने का ज्ञान मनुष्य को बहुत प्राचीन काल से है। द्राक्षिरा किण्वन से प्राप्त होता है। अतः किण्वन का ज्ञान मनुष्य को बहुत प्राचीन काल से है पर किण्वन के कारणों का ज्ञान अपेक्षया बहुत आधुनिक है। किण्वन विधा में बुलबुले सदा निकलते हैं और झाग बनता है। १६वीं शताब्दी तक लोग समझते थे कि जिस पदार्थ में किण्वन होता है उसमें सुषव पहले से विद्यमान रहता है और इस क्रिया में केवल अशुद्धताएँ दूर होती हैं। पहले-पहल १६८२ ई० में बेकर (Becher) ने प्रमाणित किया था कि किण्वन से सुषव प्राप्त करने में शर्करा का होना आवश्यक है और उसमें सुषव पहले से विद्यमान नहीं रहता। लवाजिये ने ईक्षु शर्करा की संरचना का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त किया था और किण्वन से दक्षुल सुषव और प्रांगार द्विजारेय में भार सम्बन्धी परिवर्तन का अध्ययन किया था।

$$प्र_{१२}उ_{२२}ज_{११} + उ_{२}ज = ४\ प्र_{२}उ_{६}ज + ४\ प्र\ ज_{२}$$

१८३७ ई० में फ्रांस के कागनियार्द लातूर (Caniard Latour) और जर्मनी के श्वान और कुर्त्सिग (Schwann and Kustzig) ने प्रायः एक ही समय में किण्वन से जीवों की (organism) उपस्थिति और वृद्धि से पुनरुत्पादन का निरीक्षण किया था। पीछे पाश्चर (Pasteur) ने इस सम्बन्ध में विस्तृत अन्वेषण कर सिद्ध किया कि शकरा के विबन्धन से सुषव प्राप्त होता है। यह किण्व (yeast) की क्रिया से बनता है। यह किण्व शर्करा विलयन में किण्व के जीने और पनपने पर निर्भर करता है। उन्होंने

दिखलाया कि उबाल कर नष्ट कर देने अथवा धावन से दूर कर देने पर किण्व को निकाल डालने से किण्वन बन्द हो जाता है।

अनेक काल तक यह धारणा रही कि जीवी अथवा जीवित कोशाओं के अभाव में किण्वन नहीं होता। इनके होने से ही किण्वन होता है पर बुकनर (Buchner) ने इस सम्बन्ध में अनुसंधान कर स्पष्ट रूप से सिद्ध किया कि जीवित कोशाओं के अभाव में भी किण्वन हो सकता है। उन्होंने किण्व कोशाओं को सुखाकर चूर्ण बना उसे दबाव से तरल निकाल कर आण्वीक्ष से परीक्षा कर देखा कि इस तरल में कोई जीवी नहीं है पर इस तरल से द्राक्षशर्करा का किण्वन सरलता से हो जाता है।

किण्वन वस्तुतः वह विधा है जिससे जीवित कोशाओं की सक्रियता से कुछ पदार्थों के विबन्धन से कुछ अन्य पदार्थ बनते हैं। ये कोशाएँ वृद्धि करने में कुछ नीर्जीव पदार्थ उत्पन्न करते हैं। इन नीर्जीव पदार्थों को विकर (enzyme) कहते हैं। ये ही विकर वास्तव में किण्वन के कारण हैं। कुछ विकर जीवित कोशाओं की उपस्थिति में ही सक्रिय होते और कुछ विकर जीवित कोशाओं के अभाव में भी सक्रिय होते हैं। इन्हीं विकरों का नाम किण्व (ferment) दिया था जब इनके सम्बन्ध में लोगों का ज्ञान बिलकुल अधूरा था। सब विकर तप्तास्थिर (thermo-labile) होते हैं अर्थात् थोड़ी देर के लिए भी ८०° से १००° श० तक उनके विलयन के गरम करने से उनकी सक्रियता नष्ट हो जाती है। प्रबल अम्लों अथवा क्षारकों अथवा जारणकर्त्ताओं से भी इनकी सक्रियता नष्ट हो जाती है।

विकर के रसायनिक निबन्ध का ज्ञान अत्यल्प है। विकर को शुद्ध रूप में प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ है। ये सान्द्र अस्फटात्मक पदार्थ है। इनका कोई स्थिर द्रावांक नहीं होता। इससे इनकी शुद्धता के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इनका व्यूहाणुभार बहुत ऊँचा है। ये श्लेष पदार्थ हैं। सम्भवतः ये उसी प्रकार के पदार्थ हैं जिस प्रकार के पदार्थ पर इनका कार्य होता है।

विकर की क्रियाओं का अप्रांगार रसायन में आवेजकों की क्रियाओं से तुलना हो सकती है। भेद केवल यह है कि विकर एक सीमित परिस्थितियों ही में कार्य करता है। °श० पर इसकी सक्रियता प्रायः कुछ नहीं होती। ६०° श० पर बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती है और इससे ऊपर के ताप पर तो सर्वथा होती ही नहीं। इसकी सक्रियता का सर्वश्रेष्ठ ताप २५° और ४०° श० के बीच है। कुछ अपवादों को छोड़कर शेष की सक्रियता क्लीब विलयन में सब से अच्छी होती है। कुछ पदार्थों की उपस्थिति से उनकी सक्रियता बढ़ जाती और कुछ से घट जाती है।

कुछ अंश तक विकर की क्रियाएँ विशिष्ट (specific) होती हैं। अर्थात् एक विकर एक ही पदार्थ पर सक्रिय होता है दूसरे पदार्थ पर नहीं। विभेद (diastase) की क्रिया से मण्ड दक्षी और यवशर्करा (malt sugar) में परिणत हो जाता है। यव शर्करा पर इस विकर की कोई क्रिया नहीं होती। एक दूसरे विकर यव्येद (maltase) की क्रिया से यवशर्करा द्राक्षशर्करा में परिणत हो जाती है। यव्येद की फिर द्राक्षशर्करा पर कोई क्रिया नही होती। एक तीसरे विकर किण्वेद (zymase) की क्रिया से द्राक्ष शर्करा दक्षुल सुषव और प्रांगार द्विजारेय में परिणत हो जाती है। यह कण्वेद किण्व में होता है। तीन विभिन्न विकरों—विभेद, यव्येद और किण्वेद—की क्रियाओं से मण्ड से सुषव बनता है। अपवर्तेद नामक विकर की क्रिया से इक्षु शर्करा मधुम और फलधुमें परिणत होती है।

सुषविक किण्वन (alcoholic fermentation)। सुषविक किण्वन किण्व के द्वारा होता है। किण्व में गोल सजीव कोशाएँ होती हैं जो जंजीर ऐसे समूह में बँधी होती हैं। इन्हें शर्कराक (saccharomyces) कहते हैं (चित्र २५)। जब शर्कराक शर्कराके विलयन में डाला जाता है और विलयन में आहार के लिए कुछ खनिज पदार्थ विद्यमान है तो उपयुक्त ताप पर २५° से ४०° श० के बीच शर्कराक पनपता और संख्या में बढ़ता है। यदि ताप ४०° श० से

ऊपर है तो उसका पनपना रुक जाता है और किण्वन क्रिया धीमी अथवा सर्वथा बन्द हो जाती है। किण्व से अनेक शर्कराओं का किण्वन होता है। इनमें अत्यन्त महत्व की शर्कराएँ द्राक्ष शर्करा वा मधुम और फल शर्करा वा फलधु है। ईक्षुशर्करा का किण्वन शुद्ध किण्वन से नहीं होता। पर जब ईक्षुशर्करा अपवर्तद से मधुम और फलधु में परिणत हो जाता है तब इस पर किण्व की क्रिया
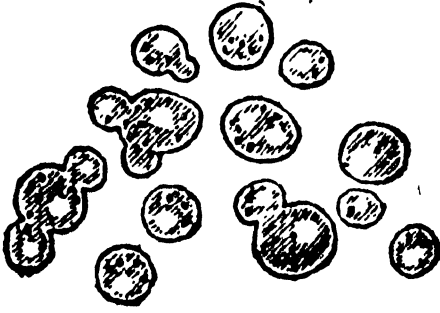
चित्र २५

होती है। सुषविक किण्वन में अल्प मात्रा में शुक्तिक, दुग्धिक, घृतिक और तृणिक अम्ल, मधुरव, गन्धैल और कुछ अन्य पदार्थ भी बनते हैं। गन्धैल में दक्षुल सुषव के उच्चतर सधर्मियों के मिश्र रहते हैं।

अन्य किण्वन। हमारे खाद्य के प्रभूजिन का विबन्धन अथवा पाचन जिस विकरसे होता है उन्हें अभिपाचि (trypsin) और पाचि (pepsin) कहते हैं। अभिपाचि क्षारिय माध्यम में सर्वश्रेष्ठ कार्य करता है, पाचि उदनीरिक अम्ल (०·२ प्रतिशत) की उपस्थिति में। पपीते के फल में पाचि होता है। पपीते के रस से पाचि निकालकर औषधों में प्रयुक्त होता है। हमारे आमाशय के रसों (gastric juice) में भी पाचि होता है और खाद्य का पाचन करता है।

कुछ और विकर हैं जो अन्य परिवर्तन करते हैं। वृक्कि (rennin) से दूध जमता है। दधिक (पनीर, cheese) और दही के तैयार करने में वृक्कि प्रयुक्त होता है। घनादेस (thrombase) से रक्त जमता है। विमेदेद (lipase) से स्नेह और तैलों का उद्यांशन होता है और घी और मक्खन में इसीसे दुर्वासता (rancidity) आती है।

जब मन्द द्राक्षिरा (wine) अथवा यविरा (beer) को वायु में खुला रखते हैं तब वह खट्टा हो जाता है। इस खट्टे होने का कारण यह है कि उसमें का सुषव वायु के जारक द्वारा शुक्तिक अम्ल में परिणत हो जाता है।

$$\text{प्र}_2\ \text{उ}_6\ \text{ज} + \text{ज}_2 = \text{प्र}_2\ \text{उ}_4\ \text{ज}_2 + \text{उ}_2\ \text{ज}$$

दक्षुल सुषव　　　शुक्तिक अम्ल
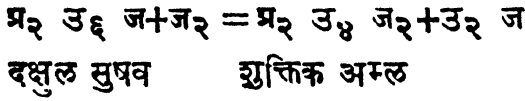
यह परिवर्तन किण्वन के कारण होता है। एक सजीव किण्व, शुक्त छदकवक (mycodermi aceti) होता है जो यह परिवर्तन करता है। यह किण्व शृङ्खल में आबद्ध कोशाओं का होता है जो वायु में होता और वायु से ही विलयन में आकर पनपता और संख्या में बढ़ता है। वह फिर सुषव को वायु के जारक के द्वारा शुक्तिक अम्ल में परिणत करता है। सुषव के प्रबल विलयन से यह किण्व नष्ट हो जाता है। इस कारण सुषव के प्रबल विलयन में शुक्तिक अम्ल नहीं बनता। इस किण्व के पनपने के लिए प्रभूजिन खाद्य आवश्यक है। यदि द्राक्षिरा में प्रभूजिन न हो तो इस किण्व की कोई क्रिया नहीं होती और द्राक्षिरा खट्टा नहीं होता।

यविरा, द्राक्षिरा और प्रासव। यविरा यव (barley) से बनता है। यव को पानी में डूबाकर गच (फर्श) पर फैलाकर उपयुक्त ताप पर अंकुरने के लिए छोड़ देते हैं। अंकुरने की क्रिया से दानों में विभेद (diastase) नामक विकर बनता है। यह यव के मण्ड को यव शर्करा में परिणत कर देता है। ऐसे अंकुरित दानों को प्रायः १००° श० तक उष्ण कर उनका और अंकुरना बन्द कर देते हैं। इन अंशतः अंकुरित दानों को तब पीसते हैं। इससे यव्य (malt) प्राप्त होता है। यव्य के जलीय निष्कर्ष (extract) को किराव्यक (wort) कहते हैं। इस किराव्यक में पौधों के सूखे फूलों (hops) को डालकर उबालते हैं। इससे उसमें कुछ तीता स्वाद आ जाता है, यह संरक्षण का भी काम करता है। उसमें अब किण्व डालकर उपयुक्त ताप पर रख छोड़ते हैं। इससे यवशर्करा और उसके

उदांशन से प्राप्त मधुम का सुषत्रिक किण्वन होकर द्रक्षुल सुषत्र प्राप्त होता है। यविरा में ४ से ८ प्रतिशत सुषव होता है।

धान्यिरा (whisky) और हपुषिरा (gin) सदृश द्राक्षिरा भी यव से प्राप्त होते हैं। इनकी प्राप्त करने की विधाएँ भी वही हैं जो यविरा की हैं। भेद केवल यही है कि यविरा की अपेक्षा अधिक काल तक किण्वन होता रहता है जिससे सुषव की प्रतिशतता बढ़ जाती है। ऐसी द्राक्षिरा का फिर आसवन करते और सुषव को इकट्ठा करते हैं। ऐसे आसुत को द्राक्षसार (spirits of wine) कहते हैं।
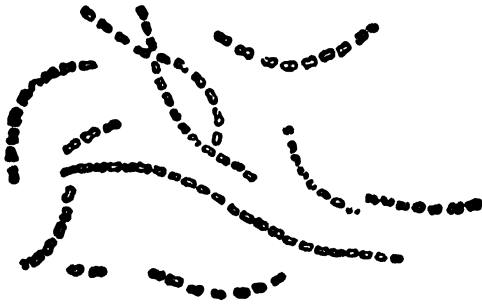
(चित्र २६)

द्राक्षसार को पानी से अपचयनकर और अनेक पदार्थों से स्वादिष्ट बना प्रद्राक्षिरा (brandy) और फाणिरा (rum) इत्यादि नामों से बेंचते हैं।

शर्करा-रसों अथवा मण्ड दानों से प्राप्त सुषविक पेयों को इसी रूप में अथवा उनका आस्वन कर प्रयुक्त करते हैं। बिना आसुत के पेयों में बुद्द्राक्षिरा (champagne,) में सुषव १० से १२ प्रतिशत, अबुद द्राक्षिरा (sherry सुषव प्रायः १६ प्रतिशत) पोर्ट (port, सुषव १४–१५ प्रतिशत), यविरा (beer, सुषव ४ से ८ प्रतिशत) और आसुत पेयों में धान्यिरा (whisky, सुषव ४० से ६० प्रतिशत), प्रद्राक्षिरा (brandy सुषव ४० से ६० प्रतिशत) और फाणिरा (rum, सुषव प्रायः ४० प्रतिशत) इत्यादि हैं।

परिशुद्ध सुषव (absolute alcohol), शुद्ध प्रासव (rectified spirit) और प्रोद्लीयित प्रासव (methylated spirit)। जब द्राक्षसार का प्रभागशः आसवन अथवा संशोधन करते हैं जिससे जल का अंश यथासम्भव निकल जाय तब उससे शुद्ध प्रासव प्राप्त होता है। शुद्ध प्रासव में अल्प मात्रा में प्रोदल सुषव,

का निश्चयन करना होता है तब उसकी ज्ञात परिमा का आस्रवन करते हैं। आसुत को फिर मापन पलिघ में इकट्ठा करते हैं। यह तब तक इकट्ठा किया जाता है जब तक सारा सुषव का आस्रवन न हो जाय। आसुत को फिर ज्ञात परिमा में बढ़ाकर १५·५° श० पर उसका आपेक्षिक भार निकालकर सारिणी से सुषव की प्रतिशतता का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

भारत में सुषव में रबड़ का कुछ आसुत और कुछ शुष्मेयी मिलाकर प्रोदलीयित प्रासव बनाते हैं। ऐसा ही प्रोदलीयित प्रासव बाजारों में बिकता है।

अध्याय १०

दक्षु (Ether) $प_{स}उ_{२स} + _{२}ज$

दक्षु एक सधर्म माला है। इसका व्यूहाणु सूत्र वही है जो सुषव का है पर इन दोनों के रसायनिक गुणों में बहुत अन्तर है। जिस संयोग को हम साधारणतया दक्षु कहते है वह वास्तव में द्वि-दक्षुल दक्षु—$प_{२}उ_{५}जप_{२}उ_{५}$ है। इस माला का यह सब से अधिक ज्ञात एकक है। और इससे इस माला के सब एककों के साधारण गुणों का ज्ञान हो जाता है। एक समय ऐसा समझा जाता था कि इस संयोग में शुल्बारि होता है और इसके प्रस्तुत करने में शुल्बारिक अम्ल के प्रयुक्त होनेके कारण इसे 'शुल्बारिक दक्षु' भी कहते थे। अब भी यह नाम प्रचलित है।

द्वि-दक्षुल दक्षु, $प_{२}उ_{५}ज प_{२}उ_{५}$। बड़ी मात्रा में यह दक्षु सुषव पर, १४०°श० के ताप पर, संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त होता है। यहां शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से सुषव पहले दक्षुल उदजन शुल्बीय में परिणत होता है और सुषव की प्रचुरता में फिर दक्षु बनता और शुल्बारिक अम्ल मुक्त होता है। इस शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से और भी सुषव दक्षु में परिणत हो जाता है। इस प्रकार शुल्बारिक अम्ल के अल्प मात्रा के प्रयोग से दक्षु की बड़ी मात्रा प्रस्तुत हो सकती है। केवल अधिकाधिक सुषव डालने और ताप को १४०°–१४५°श० पर रखने की आवश्यकता है।

$$प_{२}उ_{५}जउ + उउशुज_{४} = प_{२}उ_{५}उशुज_{४} + उ_{२}ज$$

$$प_{२}उ_{५}उशुज_{४} + उजप_{२}उ_{५} = प_{२}उ_{५}जप_{२}उ_{५} + उ_{२}शुज_{४}$$

उपर्युक्त कारणों से इस विधा को अविरल दक्षुकरण विधा (Continous etherification process) कहते हैं यद्यपि यथार्थ

में यह विधा अविरल नहीं है। इस क्रिया में शुल्वारिक अम्ल की अल्प मात्रा से दक्षु की बड़ी मात्रा बननी चाहिए पर गौण प्रतिक्रियाओं के कारण प्रत्येक बार कुछ शुल्वारिक अम्ल प्रह्रासित हो शुल्वारि द्वि-जारेय में परिणत हो नष्ट हो जाता है।

दक्षु की प्राप्ति। संपरीक्षा १९। जैसा चित्र २७ में दिया हुआ है। वैसा एक साधित्र तैयार करो। पलित्र आधा प्रस्थ धारिता की होनी चाहिए।
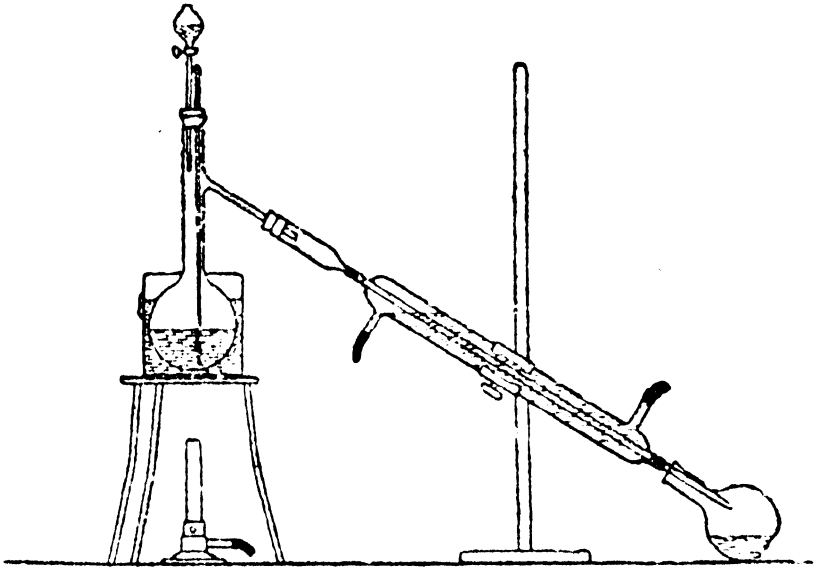
चित्र २७

इस पलिघ में ४० घ· शि· मा· प्रबल शुल्वारिक अम्ल और ५० घ· शि· मा· परिशुद्ध सुषव का मिश्र डालो। सिकता अथवा तैल तापन पर पलिघ को तपाओ और तरल को १४०°–१५०°श० के ताप पर रखो और थोड़े थोड़े समय पर सुषव डालते जाओ जिससे उसका तल स्थायी बना रहे। कुछ सुषव और सुल्वार्य अम्ल के साथ मिला हुआ दक्षु आदाता में इकट्ठा होगा। आदाता को हिम-शीत जल से ठण्ढा रखना चाहिए। अब आसुत का शोधन करो। पहले इसे दह विक्षार के विलयन से हिलाओ। इससे शुल्वार्य अम्ल दूर जायगा। फिर इसे सामान्य लवण के विलयन से हिलाओ। इस

सुषव प्रविलीन हो जायगा पर दक्षु नहीं। नीचले स्तर को निकाल लेनेपर दक्षुका ऊपरा स्तर रह जायगा। इसे अब अजल चूर्णातु नीरेय पर रखकर विजलीयन करो और तब जल-तापनपर आसवन करो। यदि ऐसे दक्षु की आवश्यकता हो जिसमें जल का लेश भी न हो तो क्षारातु धातु से दक्षु को साधित कर फिर आसवन करो।

दक्षुका वाष्प वायु से भारी और अतिअभिज्वाल्य होता है। दक्षु को कदापि जल-तापन को छोड़कर अन्य रीति से नहीं तपाना चाहिए। इसे ज्वाला से बराबर दूर रखना चाहिए। संघनक नाल और आदाता के बीच के स्थान को कर्पास से ढीला बन्द रखना चाहिए ताकि दक्षु का वाष्प निकालने से रुक जाय। संघनक पर्याप्त लंबा होना चाहिए ताकि ज्वाला से आदाता पर्याप्त दूरी पर रहे। ज्वाला को आदह पत्र व पत्रपट्ट (card-board) का घेरा रखकर सुरक्षित रखना चाहिए।

२—विलियमसन (Williamson) के संश्लेषण से भी दक्षुल जम्बेय और क्षारातु दक्षुलीय (sodum ethylate) को पश्चवाही (reflux) संघनक में तपाने से दक्षु प्राप्त होता है।

$$प्र_२उ_५जं + क्षजप्र_२उ_५ = प्र_२उ_५ज प्र_२उ_५ + क्ष जं$$
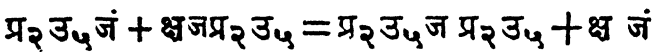
गुण। द्विदक्षुल दक्षु चञ्चल रंगहीन तरल है जिसमें विशिष्ट मधुर गंध और दाहक स्वाद होता है। यह ३५°श० पर उबलता है। साधारण ताप पर यह बहुत उत्पत है। इसका सापेक्ष भार १५०°श० पर ०.७२० है। जल में अल्प विलेय है। २०°श० पर जल दक्षु की प्रायः ६.५ प्रतिशत परिमा को प्रविलीन करती और उसी दशा में दक्षु प्रायः १.५ प्रतिशत परिमा को प्रविलीन करता है। इससे विवरी निवाप में दोनों के हिलाने से फिर दोनों के विलयन अलग-अलग स्तर बनते हैं। नीचला स्तर जल में दक्षु के विलयन का होता और ऊपरा स्तर दक्षु में जल के विलयन का होता है। शुद्ध सुषव और निरवम्रल में यह पूर्णतया विलेय होता है।

दक्षु अति उत्पत और तीव्र अभिज्वाल्य होता है। इसका वाष्प बहुत भारी होता और वायु के साथ उत्स्फोट-मिश्र बनता है। नंगे ज्वाला में इसे कभी भी तपाना नहीं चाहिए। जिस कूपी में दक्षु रखा जावे उसमें प्रबल त्वक्षा लगानी चाहिए और कूपी को ज्वाला से दूर रखना चाहिए।

जब दक्षु को शीघ्रता से उद्वाष्पन होने दिया जाता है तब इससे प्रबल शीत उत्पन्न होता है। अतः स्थानीय अचेतना के लिये यह प्रयुक्त होता है। श्वांस लेने से भी यह अचेतना उत्पन्न करता है। इससे निरवम्रल के सदृश निश्चेत (anaesthetic) के रूप में शल्य में यह व्यवहृत होता है।

दक्षु अति-स्थायी संयोग है। क्षरातु धातु की इसपर कोई क्रिया नहीं होती। इससे केवल दक्षु का जल निकल जाता है। साधारण ताप पर भास्वर पञ्चनीरेय की भी कोई क्रिया नहीं होती। इन दोनों प्रतिकर्ताओं के द्वारा दक्षु को सुषव से विभेद करते हैं। इससे यह भी विदित होता है कि दक्षु में उदजारल मूल नहीं है।

दक्षुल सुषव द्वि-प्रोदल दक्षुका समाजिक है। दक्षुल सुषव जल में विलेय होता है। द्वि-प्रोदल दक्षु प्रायः अविलेय होता है। दक्षुल सुषव पर क्षारातु और भास्वर पंचनीरेय की क्रियाएँ होती हैं। पर द्वि-प्रोदल दक्षुपर इनकी कोई क्रिया नहीं होती।

दक्षु को जब उदजम्बिक अम्ल से तपाते हैं तो दक्षु विबद्ध हो दक्षुल जम्बेय और जल बनता है। इस प्रतिक्रिया से दक्षु पहचाना जाता है। इस प्रतिक्रिया को जिजेल (Ziesel's) प्रतिक्रिया कहते है।
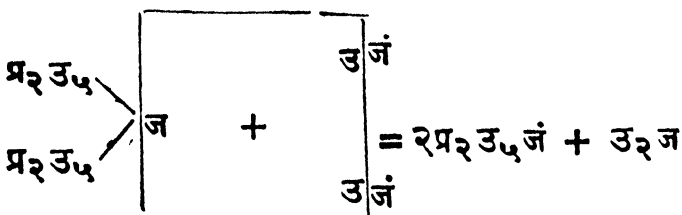
द्वि-दक्षुल दक्षु को प्रबल शुल्बारिक अम्ल से तपाने से यह दक्षुल सुषव और दक्षुल उदजन शुल्बीय में विबद्ध हो जाता है।

प$_{२}$उ$_{५}$ज – प$_{२}$उ$_{५}$ + उ$_{२}$शु ज$_{४}$ = प$_{२}$ उ$_{५}$ ज उ + प$_{२}$उ$_{५}$उ शु ज$_{४}$

दक्षु विलायक के रूप में तैल, स्नेह, क्षाराभ (alkaloid) और अन्य अनेक प्रांगारिक संयोगों के निस्सारण (extract) में अधिकता से प्रयुक्त होता है। श्लैषेत्र, कृत्रिम कौशेय और कुछ उत्स्फोटक पदार्थों के निर्माण में कोशाधु भूयीय (cellulose nitrate) को प्रविलीन करने के लिए यह व्यवहृत होता है। निरवम्रल के स्थान में निश्चेत के रूप में, प्रशीतक (refrigerator) में और सुषव के साथ मिलकर मार्चौल के स्थान में प्रयुक्त होता है।

संस्थापना। दक्षुल जम्बेय और क्षारातु दक्षुलीय की प्रतिक्रिया से विलियमसम (Williamson) ने इसका संश्लेषण किया था। इन दोनों के संयोग से क्षारातु जम्बेय निकलता और दक्षुल दक्षु बनता है। हमें ज्ञात है कि दक्षुल जम्बेय दक्षीयय का संयोग है जिसमें एक उदजन के स्थान में एक जम्बेय का परमाणु विद्यमान है। अतः दक्षुल जम्बेय का संस्थापना सूत्र है।
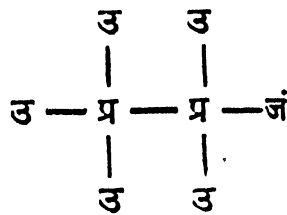
इसी प्रकार हमें ज्ञात है कि क्षारातु दक्षुलीय दक्षुल सुषव का संयोग है जिसमें उदजारल के उदजन के स्थान में क्षारातु विद्यमान है। इसका संस्थापना सूत्र है।

```
          उ    उ
          |    |
    उ — प — प — ज क्ष
          |    |
          उ    उ
```
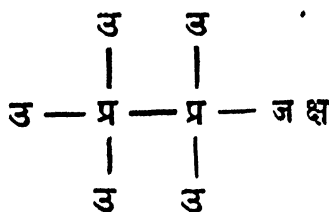
इन दोनों की प्रतिक्रिया से जो संयोग बनेगा उसका संस्थापना सूत्र होगा।

```
    उ     उ                    उ     उ
    |     |         .          |     |
उ — प्र — प्र — जं + क्ष ज — प्र — प्र — उ
    |     |                    |     |
    उ     उ                    उ     उ

     उ'    उ          उ     उ
     |     |          |     |                .
=उ — प्र — प्र — ज — प्र — प्र — उ + क्ष जं
     |     |          |     |
     उ     उ          उ     उ
```
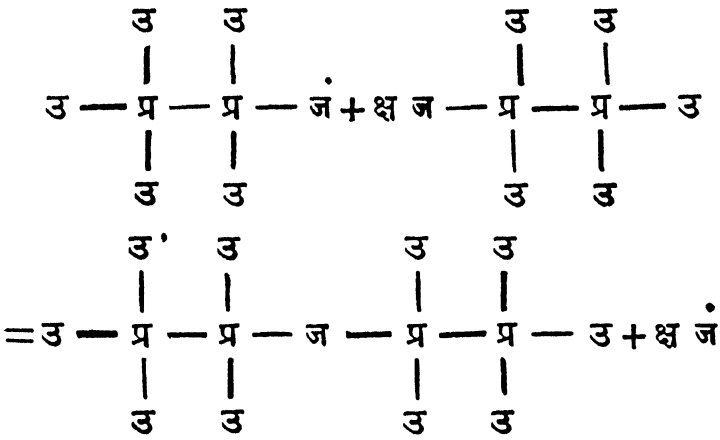
दक्षुल दक्षु

दक्षुल दक्षु को हम द्वि-दक्षुल जारेय व केवल दक्षुल जारेय कह सकते हैं। यह नाम उसी प्रकार का है जैसे दक्षुल सुषव को हम दक्षुल उदजारेय कहते हैं।

यह स्पष्ट है कि इस संयोग में दो क्षारल मूल जारक के द्वारा संयुक्त हैं। दक्षुल दक्षु को हम निम्न रीति से भी लिख सकते हैं।

```
प्र₂उ₅              प्रउ₃ — प्रउ₂
       > ज वा                    > ज  वा ( प्र₂उ₅ )₂ ज
प्र₂उ₅              प्रउ₃ — प्रउ₂
```
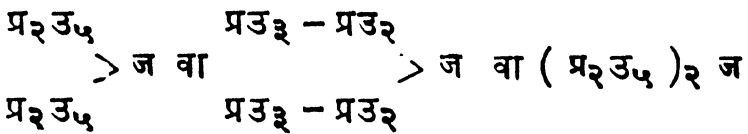
दक्षु में दो क्षारल मूल एक व भिन्न हो सकते हैं। यदि दोनों क्षारल मूल एक ही हों तो ऐसे दक्षु को सरल दक्षु (simple ethers) कहते हैं। द्वि-दक्षुल दक्षु सरल दक्षु है। यदि दोनों क्षारल मूल भिन्न हों तो ऐसे दक्षु को मिश्रित दक्षु (mixed ether) कहते हैं। प्रोदल प्रमेल दक्षु प्रउ$_{३}$ – ज – प्र$_{३}$उ$_{७}$ मिश्रित दक्षु है। प्रोदल प्रमेल दक्षु द्वि-दक्षुल दक्षु का समाजिक है। ऐसी समाजता को जो प्रांगारिक संयोगों के एक ही कुल में विद्यमान हो समभाजता (metamerism) कहते हैं। इस सम-भाजता में पुरु-संयुज तत्व भिन्न मूलों से संयुक्त होता है। यहाँ एक संयोग में प्रोदल और प्रमेल मूल जारक से संयुक्त

है और दूसरे में दो-दछुल मूल जारक से संयुक्त हैं। कोई दछु सरल है, अथवा कोई मिश्रित इसका पता दछु को 'उदजम्बिक' अम्ल के साथ उबालने से लगता है। सरल दछु से एक ही क्षारल जम्बेय प्राप्त होता है पर मिश्रित दछु से दो-क्षारल जम्बेय प्राप्त होते हैं। द्वि-दछुल दछु से केवल दछुल जम्बेय और प्रोदल प्रमेल दछु से प्रोदल जम्बेय और प्रमेल जम्बेय प्राप्त होते हैं।

$$\text{प्र}_2\text{उ}_5 - \text{ज} - \text{प्र}_2\text{उ}_5 + 2\,\text{उजं} = 2\,\text{प्र}_2\text{उ}_5\text{जं} + \text{उ}_2\text{ज}$$

$$\text{प्रउ}_3 - \text{ज} - \text{प्र}_3\text{उ}_7 + 2\,\text{उजं} = \text{प्रउ}_3\text{जं} + \text{प्र}_2\text{उ}_7\text{जं} + \text{उ}_2\text{ज}$$

प्रश्न

१—सामान्य दछु क्या है? इसके गुणों और उपयोगों का वर्णन करो।

२—अविरल दछुकरण विधा क्या है? इसे अविरल क्यों कहते हैं, संस्थापना में द्वि-प्रोदल दछु दछुल सुषव से कैसे भिन्न है?

३—किन संयोगों से दछु सभाजिक हैं? द्वि-प्रोदल दछु को दछुल सुषव से कैसे विभेद करोगे?

४—दछु पर उदजम्बिक अम्ल की क्या क्रिया होती है? द्वि-दछुल दछु और प्रोदल प्रमेल दछु में कैसे विभेद करोगे?

५—द्वि-दछुल दछु की संस्थापना कैसे स्थापित करोगे?

मृद्रसा के लवणजन व्युत्पन्न ।

(Halogen derivatives of Paraffins)

मृद्रसा के एक वा अधिक उदजन परमाणु के एक वा अधिक लवणजन परमाणु से प्रतिस्थापित होने से मृद्रसा के लवणजन व्युत्पन्न प्राप्त होते हैं। यदि मृद्रसा का केवल एक उदजन परमाणु एक लवणजन परमाणु से प्रतिस्थापित हो तो इससे क्षारल लवणेय (alkyl halides) प्राप्त होता है जिसका सूत्र $प्र_{स}उ_{२स+१}$ क्ष है जहाँ क्ष कोई लवणजन परमाणु है। ऐसे संयोग को एक-लवणजन व्युत्पन्न कहते हैं। प्रोदीन्य $प्रउ_{४}$ से इस प्रकार प्रोदल नीरेय, $प्रउ_{३}नी$, प्रोदल दुरेय $प्रउ_{३}दु$, प्रोदल जम्बेय, $प्रउ_{३}जं$ दक्षीयय $प्र_{२}उ_{६}$ से दक्षुल नीरेय $प्र_{२}उ_{५}नी$, दक्षुल दुरेय $प्र_{२}उ_{५}दु$, दक्षुल जम्बेय, $प्र_{२}उ_{५}जं$ व्युत्पन्न प्राप्त होते हैं। इन एक-लवणजन व्युत्पन्नों के भौतिक और रसायनिक गुणों में साधारण सादृश्य है। इस माला के आदर्श संयोग दक्षुल नीरेय, दक्षुल दुरेय और दक्षुल जम्बेय हैं और इन्हीं का वर्णन यहाँ होगा।

मृद्रसा में यदि उदजन के दो परमाणुओं के स्थान में लवणजन के दो परमाणु प्रविष्ट करें तो ऐसे व्युत्पन्नों को द्वि-लवणजन व्युत्पन्न कहते हैं। इनका सामान्य सूत्र $प्र_{स}उ_{२स}क्ष_{२}$ है। प्रोदीन्य से केवल एक प्रकार के द्वि-लवणजन व्युत्पन्न बनते हैं। इन्हें प्रोदलेन्य नीरेय $प्रउ_{२}नी_{२}$, प्रोदलेन्य दुरेय $प्रउ_{२}दु_{२}$ और प्रोदलेन्य जम्बेय $प्रउ_{२}जं_{२}$ कहते हैं। दक्षीयय से दो प्रकार का द्वि-लवणजन व्युत्पन्न बनता है। एक में दोनों लवणजन एक ही प्रांगार परमाणु में संयुक्त होते हैं और दूसरे में दो लवणजन प्रांगार के दो परमाणुओं से संयुक्त

होते हैं। पहले प्रकार के संयोग को दक्षुलेयेन्य (ethilydene) नीरेय, प्रस$_३$ – प्रउनी$_२$ और दूसरे प्रकार के संयोग का दक्षुलेन्य (ethylene) नीरेय प्रउ$_२$नी – प्रउ$_२$नी कहते हैं। दोनों के व्यूहाणु सूत्र एक ही प्र$_२$उ$_४$नी$_२$ हैं।

मृद्र्सा के त्रि-लवणजन व्युत्पन्न और भी जटिल होते हैं। इस अध्याय में हम केवल प्रोदीन्य के त्रि-लवणजन व्युत्पन्न, निरवम्रल, प्रउनी$_३$ और जम्बु-वम्रल प्रउजं$_३$ का वर्णन करेंगे।

लवणजन व्युत्पन्नों के प्राप्त करने की कुछ सामान्य रीतियाँ हैं। उन रीतियों को हम यहाँ देते हैं। इनमें से एक अथवा अधिक के उपयोग सें कोई भी लवणजन संयोग प्राप्त हो सकता है।

लवणजन व्युत्त्पन्न प्राप्त करने की सामान्य रीतियाँ।

१—मृद्र्सा के उदजन के लवणजन के सीधे आदेश से। इस रीति से एक-लवणजन व्युत्पन्न शुद्ध रूप में नहीं प्राप्त हो सकता।

२—सुषव में उदजारल मूल के लवणजन द्वारा सीधे प्रतिस्थापन से। यह प्रतिस्थापन लवणाभ अम्लों अथवा भास्वर लवणेय से होता है। साधारणतया इसी रीति से एक-लवणजन व्युत्पन्न प्राप्त होते हैं।

३—अननुविद्ध उदांगार में लवणजन अथवा लवणाभ अम्लों के सीधे संकलन से। दक्षुलेन्य और दुराम्री से दक्षुलेन्य दुरेय और दक्षुलेन्य और उदनीरिक अम्ल से दक्षुल नीरेय प्राप्त हो सकता है।

४—विशेष रीतियों से जैसे निरवम्रल और जम्बु-वम्रल के प्राप्त करने में व्यवहृत होती है।

दक्षुल नीरेय, प्र$_२$उ$_५$नी। निम्न रीतियों से दक्षुल नीरेय प्राप्त हो सकता है।

१—दक्षीयय पर प्रसृत सूर्य-प्रकाश की उपस्थिति में नीरजी की क्रिया से उदजन का नीरजी के द्वारा सीधे आदेश हो जाता है। इस क्रिया में दूसरी और तीसरी नीरजी का प्रवेश रोका नहीं जा सकता। इससे एक-लवणजन व्युत्पन्न शुद्ध रूप में इस रीति से प्राप्त नहीं होते।

$$प्रउ_३\text{-}प्रउ_३ + नी_२ = प्रउ_३\text{-}प्रउ_२ नी + उनी$$
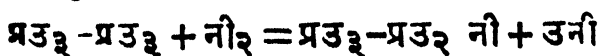
२—दक्षुलेन्य पर उदनीरिक अम्ल की क्रिया से

$$प्र उ_2 = प्र उ_2 + उनी = प्र उ_3 - प्र उ_2 \text{ नी.}$$

३—अधिक सुभीते से दक्षुल सुषव और उदनीरिक अम्ल की क्रिया से दक्षुल नीरेय प्राप्त होता है।

$$प्र उ_3 - प्र उ_2 \text{ जउ} + उनी \rightleftharpoons प्र उ_3 - प्र उ_2 \text{ नी} + उ_2 \text{ ज}$$
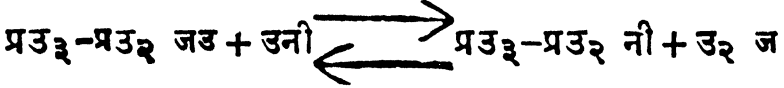
यह क्रिया प्रतिवर्तिनी होती है। इसका आशय यह है कि ज्योंही उदनीरिक अम्ल की क्रिया से कुछ दक्षुल नीरेय और जल बनते हैं। दक्षुल नीरेय पर जल की क्रिया से फिर सुषव और उदनीरिक अम्ल बन जाते हैं। उपर्युक्त प्रतिक्रिया सामान्य परिस्थितियों में कभी पूर्ण नहीं होती। यदि इस प्रतिक्रिया के सृष्ठ एक वा अधिक हटा लिए जायं तो यह क्रिया एक दिशा में पूर्णरूप से सम्पादित हो सकती है। अजल कुप्यातु नीरेय अथवा संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल के द्वारा जल हटाकर यह क्रिया पूर्ण की जा सकती है। जल के हट जाने से प्रतिवर्तिनी क्रिया का अन्त हो जाता है।

४—एक दूसरी रीति सुषवों पर भास्वर पञ्चनीरेय की क्रिया से एक-लवणजन व्युत्पन्न प्राप्त होते हैं। दक्षुल सुषव और भास्वर पंचनीरेय की प्रतिक्रिया से एक उदजारल नीरजी के द्वारा प्रतिस्थापित हो दक्षुल नीरेय बनता है।

$$प्र_2 उ_5 \text{ जउ} + \text{भनी}_5 = प्र_2 उ_5 \text{ नी} + \text{भजनी}_3 + उनी$$

यहाँ भनी$_5$ की क्रिया से पहले भ (जउ) नी$_4$ बनता जो अस्थायी होने से फिर विबद्ध हो भास्वर-जार-नीरेय और उदनीरिक अम्ल में परिणत हो जाता है। भास्वर पञ्चनीरेय की यह क्रिया उदजारल मूल के अभिज्ञान के लिए प्रयुक्त होती है।

गुण। सामान्य ताप पर दक्षुल नीरेय वाति है। यह सरलता से रंगहीन तरल बनता है जो १२·५° पर उबलता है। यह जल से भारी और जल में प्रायः अविलेय होता है। इस वाति में तीखी मधुर-गंध होती है। सूँघने से निश्चेतना उत्पन्न होती है। यह न्यून सरलता

से हरि-कोर ज्वाला से जलता है। इसके रसायनिक गुणों का वर्णन आगे होगा।

दक्षुल दुरेय, $प्र_२ उ_५ दु$। दक्षुल सुषव पर दहातु दुरेय और शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से दक्षुल दुरेय सरलता से प्राप्त हो सकता है। दहातु दुरेय पर शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से उददुरिक अम्ल बनता है और सुषव पर इसकी क्रिया से दक्षुल दुरेय बनता है। रक्त भास्वर और दुराग्नी से भी यह संयोग प्राप्त होता है।

$$ददु + ह_२ शुज_४ = दउ शुज_४ + उदु$$

$$प्र_२ ह_५ जउ + उदु = प्र_२ उ_५ दु + उ_२ ज$$

$$भ + ३दु = भदु_३$$

$$३ प्र_२ उ_५ जउ_३ + भदु_३ = ३ प्र_२ उ_५ दु + भ (ज ह)_३$$

संपरीक्षा २०। संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल के १०० धान्य को ५०० घ० शि० मा० धारिता के गोल बुध्न आसवन पलिघ में रखो और ४५ धान्य सुषव डालो। इसे शीतल जल से ठण्ढा करो और फिर सावधानी से ३८ धान्य हिम-शीतल जल डालो। अब ५० धान्य क्षारातु दुरेय के क्षाद को डालो। पालिव में जलसंवनक जोड़कर आसवन करो। आसुत को ऐसे जल में इकट्ठा करो जिसमें हिम तैरता हो। आसुत को अब विवरी निवाप में डालकर दक्षुल दुरेय के नीचले तैल-स्तर को निकाल लो। इससे दो वा तीन बार आसुत जल से धोकर फिर क्षारातु प्रांगारीय के मन्द विलयन से धोओ। विवरी निवाप द्वारा दक्षुल दुरेय को अलग कर, अजल चूर्णातु नीरेय पर सुखाकर आसवन करो। आसुत में प्रायः शुद्ध दक्षुल दुरेय प्राप्त होगा।

गुण। दक्षुल दुरेय रंगहीन, जल में अविलेय तरल है। यह जल से भारी होता है। अतः जल के साथ हिलाने से इसका नीचला स्तर बनता है। यह ३६° श० पर उबलता है।

दक्षुल जम्बेय, $प्र_२ उ_५ जं$। जम्बुकी के सीधे आदेश से यह नहीं प्राप्त हो सकता। दक्षुल सुषव पर रक्त भास्वर और जंबुकी की क्रिया से सुभीते से प्राप्त होता है। ऐसा समझा जाता है कि रक्त-

भास्वर जम्बुकी के साथ पहले भास्वर जम्बेय बनता और इसकी फिर सुषव पर की प्रतिक्रिया से दक्षुल जम्बेय बनता है।

$$\left.\begin{array}{l} \text{प्र}_2\ \text{उ}_5 \\ \text{प्र}\ \ \text{उ}_5 \\ \text{प्र}\ \ \text{उ}_5 \end{array}\right| \begin{array}{l} \text{जउ} \\ \text{जउ} + \text{भ} \\ \text{जउ} \end{array} \left| \begin{array}{l} \text{जं} \\ \text{जं} \\ \text{जं} \end{array}\right. = 3\text{प्र}_2\ \text{उ}_5\ \text{जं} + \text{भ}\ (\text{जउ})_3$$
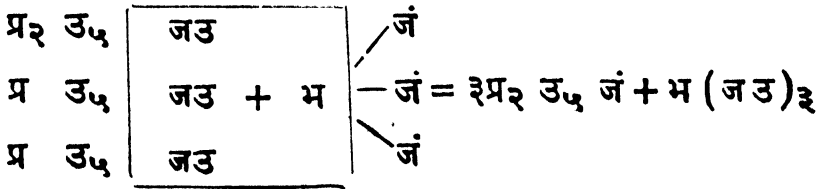
संपरीक्षा २१। ३०० घ० शि० म० धारिता के पलिघ में ५ धान्य रक्त भास्वर और २५ धान्य शुद्ध सुषव रखो। थोड़ा थोड़ा करके ५० धान्य क्षुण्ण जंबुकी उसमें डालो। यह डालना प्रायः एक घन्टे में होना चाहिये। पलिघ को बीच बीच में हिलाते जाओ और यदि अधिक उष्ण हो जाय तो जल में डुबाकर पलिघ को ठण्ढा करो। साधारण ताप पर इसे ३ घन्टा रख छोड़ो। उसके पश्चात् सृष्ट को एक घण्टे तक जल-तापन पर पश्चवाही संघनक में तपाओ।

जल-तापन पर तपाकर आसवन पलिघ से सृष्ट को पूर्णतः आसवन करो। जो आसुत इकट्ठा होगा उसमें दक्षुल जम्बेय के अतिरिक्त कुछ सुषव और जम्बुकी का लेश होगा। इसे विवरी निवाप में रखकर दहविक्षार के मन्द विलयन से तब तक हिलाओ जब तक उसका रंग दूर न हो जाय। नीचले स्तर को आसवन पलिघ में निकाल कर, अजल चुर्णातु नीरेय के कुछ टुकड़े डालकर, आधा घण्टा रखकर जल-तापन पर आसवन करो। इससे प्रायः शुद्ध दक्षुल जम्बेय प्राप्त होगा।

गुण। दक्षुल जम्बेय रंगहीन तरल है जिसमें तीखी मधुर गंध होती है। वायु में खुला रखनेपर कुछ समय में यह वभ्रु हो जाता है। इस रंग के होने का कारण विबन्धन से जम्बुकी का मुक्त होना है। यह ७२·३°श० पर उबलता है और जल से प्रायः दुगुना भारी होता है। यह जल में अविलेय है।

एक-लवण जन संयोगों के रसायनिक व्यवहार। एक-लवण जन व्युत्पन्न बड़े महत्व के संयोग हैं। क्योंकि अनेक प्रति

कर्त्ताओ से इनपर अनेक परिवर्तन होते है। इन प्रतिक्रियाओं में लवणजन परमाणु दूसरे एक-संयुज परमाणुओं वा मूलों से प्रतिस्थापित हो जाता है और इस प्रकार अनेक नये संयोग बनते हैं। जैसे हम पहले देख चुके हैं मृद्रसा बड़े निष्क्रिय संयोग हैं। पर ज्योंही उनमें उदजन के स्थान में लवणजन प्रविष्ट करते हैं वे बहुत क्रियाशील हो जाते हैं। इससे अनेक संयोगों के प्राप्त करने में ये व्यवहृत होते है। इनकी प्रतिक्रियाओं को दज्जुल जम्बेय से हम प्रदर्शित करेंगे।

१—कुप्यातु-ताम्र मिथुन अथवा स्फट्यातु-पारद मिथुन और जलकी प्रह्वाषित क्रिया से मृद्रसा प्राप्त होता है।

$$प्र_2 उ_5 जं + उउ = प्र_2 उ_6 + उजं$$

२—क्षारातु अथवा कुप्यातु से उच्च सधर्मी (homologue) प्राप्त होते हैं।

$$\left.\begin{array}{l} प्र_2 उ_5 \\ प्र_2 उ_5 \end{array}\right| \left.\begin{array}{l} जं \\ \quad + कु \text{ वा } २क्ष \\ ज \end{array}\right| = प्र_2 उ_5 - प्रउ_5 + कुजं_2 \text{ वा } _2क्षजं$$
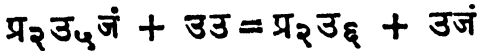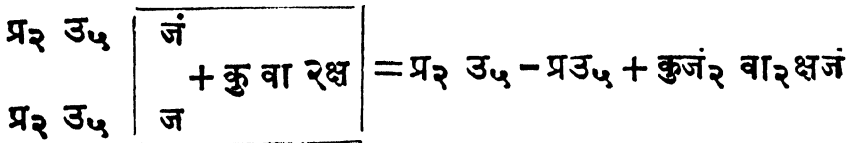
क्षारातु से जो प्रतिक्रिया होती है उसे उर्ज (Wurtz) की प्रतिक्रिया कहते हैं।

३—यदि कुप्यातु आधिक्य (excess) में हो कुप्यातु दक्षुल बनता है।

$$\begin{array}{l} प्र_2 उ_5 जं \\ \qquad + २कु = प्र_2 उ_5 - कु - प्र_2 उ_5 + कुजं_2 \\ प्र_2 उ_5 जं \end{array}$$
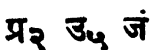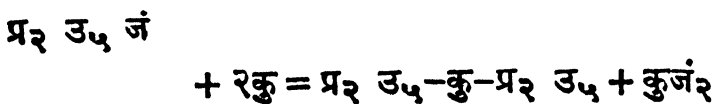
इस प्रतिक्रिया को फ्रैंकलैण्ड (Frankland) की प्रतिक्रिया कहते हैं।

४—धातु के जारेय वा उदजारेय की उपस्थिति में जल साथके तपाने से दक्षुल सुषव प्राप्त होता है।

$$प्र_2 उ_5 जं + द ज्ञ उ = प्र_2 उ_5 ज उ + द जं$$
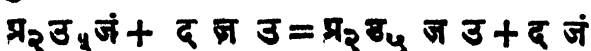
५—सुषविक दहर्जि (सुषव में प्रविलीन दहातु उदजारेय) की क्रिया से दक्षुलेन्य बनता है।

प्रउ$_3$ – प्रउ$_2$जं + दजउ = प्रउ$_2$ = प्रउ$_2$ + दजं + उ$_2$ज

६—सुषविक तिक्ताति (सुषव में प्रविलीन तिक्ताति) की क्रिया से दक्षुल तिक्ती प्राप्त होती है।

प्र$_2$उ$_5$जं + उनीउ$_2$ = प्र$_2$उ$_5$नउ$_2$ + उजं
दक्षुल तिक्ती

७—दहातु श्यामेय की क्रिया से दक्षुल श्यामेय बनता है।

प्र$_2$उ$_5$जं + दप्रभू = प्र$_2$उ$_5$प्रभू + दजं

रजत श्यामेय से दक्षुल स-श्यामेय प्र$_2$उ$_5$भूप्र बनता है।

८—रजत भूयित की क्रिया से भूय-दक्षीवय बनता है।

प्र$_2$उ$_5$जं + रभूज$_2$ = प्र$_2$उ$_5$भूज$_2$ + रजं

९—शुष्क भ्राजातु क्षोद से शुष्क दक्षु की उपस्थिति में, भ्राजातु दक्षुल जम्बेय प्राप्त होता है।

प्र$_2$उ$_5$जं + भ्र = भ्र(प्र$_2$उ$_5$) जं

इस प्रतिक्रिया को ग्रिग्नार्ड की प्रतिक्रिया कहते हैं।

१०—क्षारातु दक्षुलीय की क्रिया से द्वि-दक्षुल दक्षु बनता है।

प्र$_2$उ$_5$जं + क्षजप्र$_2$उ$_5$ = प्र$_2$उ$_5$जप्र$_2$उ$_5$ + क्षजं

दक्षुलेन्य और दक्षुलेयेन्य नीरेय, प्र$_2$उ$_4$नी$_2$। ये दोनों साभाजिक संयोग हैं। इनके व्यूहाणु सूत्र एक ही हैं पर इनके संस्थापना सूत्र भिन्न हैं। दक्षुलेन्य नीरेय की संचरना प्रउ$_2$नी–प्रउ$_2$नी है। यह दक्षुलेन्य प्रउ$_2$ = प्रउ$_2$ पर नीरजी की क्रिया से प्राप्त होता है।

प्रउ$_2$ = प्रउ$_2$ + नी$_2$ = प्रउ$_2$नी – प्रउ$_2$नी

दक्षुलेयेन्य नीरेय शुक्तलेन्य पर उदनीरिक अम्ल की क्रिया से प्राप्त होता है।

प्रउ ≡ प्रउ + २उनी = प्रउ$_3$ – प्रउनी$_2$

दग्धुलेन्य नीरेय में नीरजी के दो परमाणु दो प्रांगार परमाणुओं से सम्बद्ध हैं पर दग्धुलेयेन्य नीरेय में नीरजी के दो परमाणु प्रांगार के एक ही परमाणु से सम्बद्ध हैं। दोनों के संस्थापना सूत्र निम्न लिखित हैं।

दग्धुलेन्य नीरेय	दग्धुलेयेन्य नीरेय
प्रउ$_2$नी – प्रउ$_2$नी	प्रउ$_3$ – प्रउनी$_2$

भौतिक और रसायनिक गुणों में ये दोनों एक-लवणजन व्युत्पन्नों से सादृश्य रखते हैं। ये जल से भारी होते और उसमें अविलेय होते हैं। उनकी संस्थापना पर और विचार करने का यहाँ स्थान नहीं है।

निरवम्रल, प्रउनी$_3$। लीबिग (Liebig) ने निरवम्रल का आविष्कार १८३१ ई० में किया था। डूमाने (Dumas) १८३५ ई० में इसके सूत्र की स्थापना की। इसकी निश्चेत क्रिया को सिम्पसन (Simpson) ने १८४८ ई० में बतलाया और इन्होंने इसे शल्य में पहले-पहल प्रयुक्त किया।

प्राप्ति। १—थोड़ी मात्रा में शुद्ध निरवम्रल निरसु (chloral) को दहविक्षार के साथ आसवन से प्राप्त होता है।

प्रनी$_3$प्रउज + क्षजउ = प्रउनी$_3$ + उप्रजजक्ष

निरवम्रल क्षारातु वम्रीय

२—बड़ी मात्रा में दग्धुल सुषव अथवा शुक्ता पर श्वेतन क्षोद की क्रिया से निरवम्रल प्राप्त होता है। यहाँ जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं वे जटिल हैं पर यह अनुमान है कि प्रतिक्रियाएँ तीन पदों में होती हैं। पहले पद में श्वेतन क्षोद से प्राप्त नीरजी की जारक क्रिया से सुषव सुब्युद में परिणत होता है। दूसरे पद में सुब्युद फिर नीरजी कारक से निरसु बनता और तीसरे पद में यह निरसु चूर्णक से विबद्ध हो निरवम्रल प्रदान करता है।

(१) प्रउ$_3$प्रउ$_2$जउ + नी$_2$ = प्रउ$_3$ – प्रउज + २उनी

(२) $प्रउ_{३}$—प्रउज + $३नी_{२}$ = $प्रनी_{३}$ − प्रउज + ३उनी
निरसु

(३) $२प्रनी_{३}$प्रउज + चू (जउ$)_{२}$ = $२प्रउनी_{३}$ + (उप्रजज$)_{२}$चू
निरवम्रल चूर्णातु वम्रीय

संपरीक्षा २२—श्वेतन क्षोद के २०० घान्य को उलूखल में पीसकर १५० घ० शि० मा० जल के साथ पतला शर बनाओ और इस शर को प्रायः डेढ़ प्रस्थ धारिता के पलिघ में डालो। फिर प्रायः २०० घ० शि० मा० जल से धोकर उसमें डालो, और ३० घ० शि० मा० शुद्ध प्रासव डालकर संघनक लगाकर जल-तापन पर तपाओ। मिश्र को ऐसा उष्ण करो कि तल पर बुलबुले निकलने लगें। इससे पता लगता है कि अब प्रतिक्रिया आरम्भ हो रही है। जलतापन से दाहक को हटा लो। निरवम्रल का अब आसवन होगा। प्रतिक्रिया अधिक तीव्र न हो जाय इसका बचाव करना चाहिए। तीव्र होने से मिश्र बहुत फेन देता है। जब प्रतिक्रिया मन्द होने लगे, तब दाहक को फिर लगा दो और शेष निरवम्रल का आसवन कर लो। आसुत को मन्द दहविक्षार के विलयन से धोकर निरवम्रल के नीचले स्तर को विवरी निवाप में हटा लो, उसमें अजल चूर्णातु नीरेय के कुछ टुकड़े डालकर आधा घण्टा रखकर जल तापन पर आसवन कर लो।

गुण। निरवम्रल रङ्गहीन चञ्चल तरल है जिसमें विशेष मनोहर गन्ध और मधुर स्वाद होता है। यह ६१° श० पर उबलता है। यह जल में अल्प विलेय है। इसका आपेक्षिक भार १·५२५ है। यह अभिज्वाल्य नहीं है पर आहरि सधूमज्वाला से जलता है।

शुद्ध निरवम्रल आर्द्र वायु और सूर्य-प्रकाश में शीघ्रता से जारित होता है। इससे कुछ प्रांगारल नीरेय (carbonyl chloride) और नीरजी बनता है। ये दोनों ही विषाक्त हैं।

२ $प्रउनी_{३}$ + ३ज = २ $प्रजनी_{२}$ + $नी_{२}$ + $उ_{२}$ज
प्रांगारल नीरेय

यह विबन्धन बहुत कुछ रोका अथवा कम किया जा सकता है। निरवम्रल को रङ्गीन कूपी में ग्रीवातक भरा हुआ अँधेरे में और उसमें १ से २ प्रतिशत सुषव मिलाकर रखने से विबन्धन रुक जाता है। इसके विबन्धन से जो श्लेष्ट बनते हैं उनका परीक्षण रजत भूयीय के विलयन डालने से होता है। यदि ये विद्यमान हैं तो रजत भूयीय के विलयन से निस्साद व उपलभाषा (opalescent) नहीं प्राप्त होता। शुद्ध निरवम्रल से रजत भूयीय कोई निस्साद अथवा आविलता (turbidity) नहीं देता। निश्चेतना के लिए प्रयुक्त होनेवाले निरवम्रल में ये अशुद्धताएँ अति भयङ्कर हैं और इससे पूर्ण रूप से त्याज्य हैं।

निरवम्रल अपनी गंध से सरलता से पहचाना जाता है। पर इसका लेश भी बड़ी सरलता से स-श्यामेय अथवा प्रांगल तिक्ती प्रतिक्रिया से पहचाना जाता है। इस प्रतिक्रिया में निरवम्रल के कुछ बूंदों को एक परीक्षणनाल में लेकर एक बूंद विनीली (aniline) और थोड़ा सुषविक दहर्सजि डालकर तपाने से दर्शल स-श्यामेय (phenyl iso-cyanide) की असह्य गंध प्राप्त होती है। दर्शल स-श्यामेय प्रबल विषाक्त होता है। अतः इस परीक्षण को बड़ी सतर्कता से धूमायमान आधरण (fume cupboard) में प्रतिकर्त्ताओं की बहुत थोड़ी मात्रा लेकर करना चाहिए।

$प्र_{६}उ_{५}भूउ_{२} + प्रउनी_{३} + ३क्षजउ = प्र_{६}उ_{५}भूप्र + ३क्षनी + ३उ_{२}ज$

विनीली निरवम्रल दर्शल स-श्यामेय
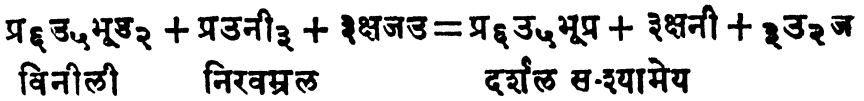
निरवम्रल के निरजी और रजत भूयीय के विलयन से कोई निस्साद नहीं प्राप्त होता। इस रीति से निरवम्रल के नीरजी की उपस्थिति का पता नहीं लगता। यदि निरवम्रल को सुषविक सर्जि के साथ उबाले तो इससे निरवम्रल विबद्ध हो क्षारातु नीरेय बनता है जिसको परीक्षा रजत भूयीय परीक्षण से हो सकती है।

उपयोग। निरवम्रल बहुत अधिकता से तैल, स्नेह और अन्य प्रांगारिक संयोगों के विलायक के रूप में व्यवहृत होता है। अभ्यन्तर

और वाह्य निश्चेतना में भी यह बहुत प्रयुक्त होता है। कभी कभी वह शर्करा, गोंद इत्यादि के कीटाण्वीय किण्वन से सुरक्षित रखने में प्रयुक्त होता है।

संस्थापना। निरवम्रल के अन्त्य (ultimate) विश्लेषण से इसका मात्रिक सूत्र प्रउनी$_3$ प्राप्त होता है। इसकी वाष्पघनता ५९·८ है। अतः इसका व्यूहाणुभार ५९·८×२=११९·६ हुआ। यह व्यूहाणुभार प्रउनी$_3$ सूत्र के अनुकूल है। चूंकि उदजन एक-संयुत और प्रांगार चतुःसंयुत है अतः निरवम्रल का चित्र सूत्र (graphic formula) हुआ।
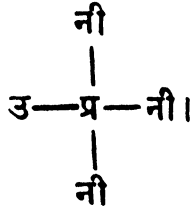
जम्बु-वम्रल (त्रि-जम्बु प्रदीन्य) प्रउ जं$_3$। १—दक्षुल सुषव अथवा शुक्ता पर जम्बुकी और क्षारक की क्रिया से जम्बु-वम्रल प्राप्त होता है। यहाँ जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं वे वैसी ही हैं जैसी निरवम्रल में। इस प्रतिक्रिया में जम्बुषु (iodal), प्रजं$_3$—प्रउज, पहले बनता है।

संपरीक्षा २३। शुक्ता के १६ घ० शि० मा० को क्षारातु प्रांगारीय के ८० घ० शि० मा० विलयन से मिलाकर एक जल-तापन पर चंचुकी में रखो। जल पर ७०° श० तक तपाओ। उसे बराबर हिलाते हुए ८ धान्य चूर्ण जम्बुकी थोड़ा थोड़ा करके डालते जाओ। जब सारी जम्बुकी की क्रिया समाप्त हो जाय और जम्बुकी का रंग हट जाय तो मिश्र को धीरे धीरे ठंढा होने दो। अब उसमें जम्बु-वम्रल के पीत स्फट निकल आवेंगे। उन्हें ठण्ढे जल से धोकर रान्ध्रीपट्ट (porous plate) पर अथवा पाव पत्र में दबाकर सुखाओ।

२—बड़ीमात्रा में जम्बु-वम्रल दक्षुल सुषव की उपस्थिति में दहातु जम्बेय के जलीय विलयन के विद्युद्दंशन से प्राप्त होता है। विद्युद्दंशन

से एक विद्युद्द्वार पर जम्बुकी मुक्त होता और दूसरे पर दहातु। दहातु जल से दहसर्जि बनता जिसकी जम्बुकी की उपस्थिति में सुषव पर की क्रिया से जम्बु वम्रल बनता है।

गुण। जम्बु वम्रल आ-पीत स्फटात्मक सान्द्र है। यह ११९° श० पर पिघलता है। उसकी विशिष्ट गंध होती है जिससे यह सरलता से पहचाना जाता है। यह जल में प्रायः अविलेय होता है। वाष्प में यह उत्पत है। सुषव में अल्प विलेय पर निरवम्रल और दशु में शीघ्र-विलेय है। दहसर्जि के उष्ण सुषविक विलयन से यह विबद्ध हो दहातु वम्रोय (potassium formate) और दहातु जम्बेय (potassium iodide) में परिणत होता है।

प्रउज$_३$ + ४क्षजउ = उप्रजजक्ष + ३क्षज + २उ$_२$ज
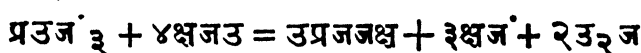
दहातु वम्रीय दहातु जम्बेय

इसी कारण जम्बु-वम्रल के तैयार करने में दहक्षारक के साथ इसे उबालना न चाहिए।

उपयोग। जम्बु-वम्रल प्रबल रोगाणुनाशक और प्रतिपूय (antiseptic) है। अतः भैषज्य और शल्य में यह प्रयुक्त होता है। इसकी रोगाणुनाशक क्रिया सम्भवतः जम्बुकी के मुक्त होने से होती है। इसकी विशिष्ट अरुचिकर गंध और चमड़े पर प्रदाहक क्रिया इसके दोष हैं। अनेक दूसरे प्रांगारिक संयोग इसके स्थान में प्रयुक्त होने के लिए बने हैं।

प्रांगार चतुःनीरेय अथवा चतुःनीर-प्रोदीन्य, प्रनी$_४$।

१—प्रोदीन्य पर नीरजी की क्रियासे यह प्राप्त हो सकता है।

२—साधारणतया यह अल्प अयस की उपस्थिति में प्रांगार द्विशुल्बेय पर शुल्वारि एक-नीरेय, शु$_२$नी$_२$, की क्रिया से तैयार होता है।

प्रशु$_२$ + २शु$_२$नी$_२$ = प्रनी$_४$ + ६शु
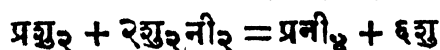
शेष को दहविक्षार के साथ हिलाकर आसवन करते हैं।

यह रुचिकर गंधवाला रंगहीन तरल है जो ७६°श पर उबलता है। इसका आपेक्षिक भार १.६ है। यह जल में अविलेय है। स्नेह,

सिक्थ और अन्य प्रांगारिक संयोगों के लिए सर्वोत्तम विलायक है। यह अदाह्य है। यह अग्नि-शामयिता (fire extinguisher) में, अजल धावन (dry cleaning) और अमाशय के कीटों (worms) को दूर करने में भैषज्य में प्रयुक्त होता है।

प्रश्न

१—मृद्वसा के एक-लवणजन आदिष्ट (substitute) शिष्टों का सामान्य सूत्र लिखो। किन बातों में ये मृद्वसा मे मिलते हैं।

२—दक्षुल दुरेय और दक्षुल जम्बेय की प्राप्ति और गुणों का वर्णन करो।

३—क्या क्रिया होती है?

(१) नीरजी की दक्षीरय पर।

(२) भास्वर और जम्बुकी की प्रोदल सुषव पर।

(३) सुषविक दहर्सजि की निरवम्रल पर।

(४) जलीय दहर्सजि की दक्षुल जम्बेय पर।

(५) क्षारातु और कुप्यातु की दक्षुल दुरेय पर।

४—मृद्वसा के एक-लवणजन व्युत्पन्नों की अधिक महत्व की प्रतिक्रियाओं का वर्णन करो।

५—प्र$_2$उ$_4$नी$_2$ के व्यवहाणु के कितने संयोग सम्भव हैं? इन संयोगों का संस्थापना सूत्र और प्राप्ति लिखो।

६—निरवम्रल कैसे तैयार होता है? इसके महत्व के भौतिक और रसायनिक गुणों और उपयोगों का वर्णन करो।

७—जम्बु-वम्रल क्या है और रस-शाला में कैसे और बड़ी मात्रा में कैसे प्राप्त होता है। इसके गुणों, उपयोगों और इसपर सुषविक दह-सर्जि की क्रिया का वर्णन करो।

८—प्रांगार चतुः नीरेय की प्राप्ति, गुणों और उपयोगों का वर्णन करो।

अध्याय १२

मृद्रसा के भूयाति संयोग

(Nitrogen compound & of Paraffins)

मृद्रसा के भूयाति के संयोगों में तीन महत्व के हैं। इन्हें तिक्ती (amines), भूय-मृद्रसा (nitro paraffins) और क्षारल श्यामेय अथवा अम्ल भूबिल (acid nitriles) कहते हैं। हम देख चुके हैं कि दद्धल जम्बेय पर सुषविक तिक्ताति, रजत भूयित (silver nitrite) और दहातु श्यामेय (potassium cyanide) की क्रिया से दद्धल तिक्ती (प्र$_२$उ$_५$भूउ$_२$), भूय-दक्षियय (प्र$_२$उ$_५$भूज$_२$) और दद्धल श्यामेय (प्र$_२$उ$_५$प्रभू) प्राप्त होते हैं।

प्र$_२$उ$_५$ | जं + उ | भूउ$_२$ = प्र$_२$उ$_५$भूउ$_२$ + उजं

प्र$_२$उ$_५$ | जं + र | भूज$_२$ = प्र$_२$उ$_५$भूज$_२$ + रजं

प्र$_२$उ$_५$ | जं + द | प्रभू = प्र$_२$उ$_५$प्रभू + दजं
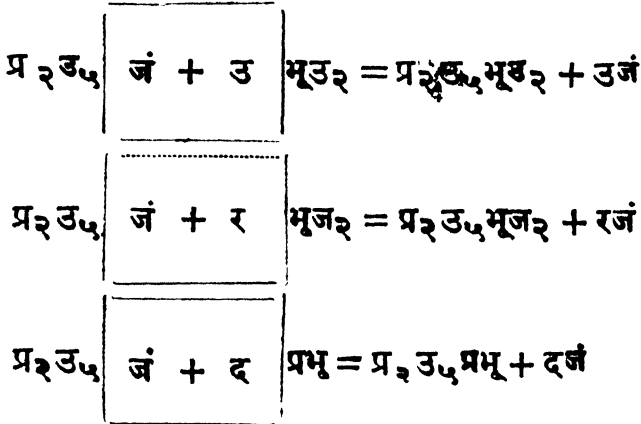
उपर्युक्त प्रतिक्रियाओं से यह स्पष्ट है कि तिक्ती, भूय और श्यामेय मूल सीधे प्रांगार परमाणु से संबद्ध हैं। यदि दद्धल जम्बेय के स्थान में अन्य कोई क्षारल जम्बेय उपयुक्त हो तो तत्वादी क्षारल संयोग प्राप्त होगा। प्रमेल जम्बेय से प्रमेल तिक्ती, भूय-प्रमेदीन्य और प्रमेल श्यामेय प्राप्त होते हैं।

दक्षुल तिक्ती, (Ethylamine) प्र$_{२}$उ$_{५}$भूउ$_{२}$ । दक्षुल तिक्ती निम्न रीतियों से प्राप्त हो सकते है।

१—दक्षुल जम्बेयपर सुषविक तिक्ताति की क्रिया से । इस रीति से
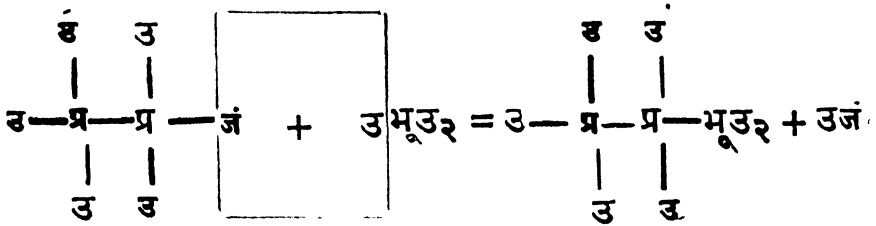
प्राप्त होने के कारण इसका निम्न संस्थापना सूत्र सर्वथा स्पष्ट हो जाता है।
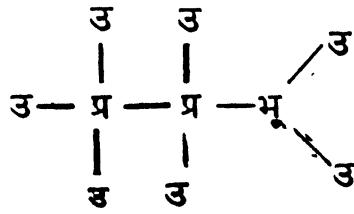
२—जायमान उद्‌जन, त्रपु और उदनीरिक अम्ल द्वारा भूय-दक्षिश्य के प्रहासन से

$$\text{प्र}_{२}\text{उ}_{५}\text{भूज}_{२} + ६\text{उ} = \text{प्र}_{२}\text{उ}_{५}\text{भूउ}_{२} + २\text{उ}_{२}\text{ज}$$
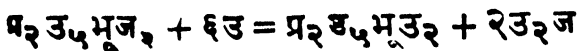
३—प्रोद्‌ल श्यामेय के प्रहासन से

$$\text{प्रउ}_{३}\text{प्रभू} + ४\text{उ} = \text{प्रउ}_{३}\text{—प्रउ}_{२}\text{भूउ}_{२}$$
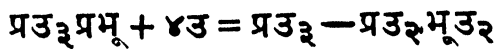
गुण । दक्षुल तिक्ती १९°श० के ऊपर रंगहीन वाति है। साधारण निपीड पर १९°श० पर यह तरल हो जाता है। गुणों में यह तिक्ताति के सदृश है। जल में स्वच्छन्दता से विलेय है। क्रिया में यह क्षारीय और गंध में तिक्तातिसी होती है। अम्लों के साथ यह तिक्तातिसा लवण बनता है।

$$\text{भूउ}_{३} + \text{उनी} = \text{भूउ}_{४}\text{नी} \; ; \; \text{प्र}_{२}\text{उ}_{५}\text{भूउ}_{२} + \text{उनी} = \text{प्र}_{२}\text{उ}_{५}\text{भूउ}_{२}\text{उनी}$$
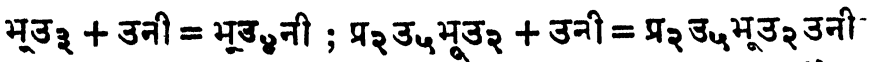
तिक्ताति नीरेय — दक्षुल तिक्ती उदनीरेय

अथवा

तिक्तातु उदनीरेय

तिक्तातु नीरेय के सदृश महातु नीरेय के साथ यह एक विशिष्ट पीत स्फटात्मक लवण बनता है। यह लवण जल में अविलेय होता है।

$$(भूउ_४नी)_२ मनी_४, \quad (प्र_२उ_५भूउ_२उनी)_२ मनी_४$$

दक्षुल तिक्ती के व्यूहाणु भार के निश्चयन में यह लवण प्रयुक्त होता है। इन गुणों से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि दक्षुल तिक्ती एक पीठ है।

दक्षुल तिक्ती पर भूय्य अम्ल की क्रिया महत्व की है। इससे जल, भूयाति और दक्षुल सुषव प्राप्त होते हैं। निम्न समीकार से यह प्रतिक्रिया स्पष्ट हो जाती है।

$$\begin{array}{r|c|l} प्र_२उ_५ & भू & उ_२ \\ & + & \\ उज & भू & ज \end{array} = प्र_२उ_५जउ + भू_२ + उ_२ज$$

संस्थापना। ऊपर हम देख चुके हैं कि दक्षुल तिक्ती की संस्थापना निम्न है।

```
      उ   उ    उ
      |   |   /
  उ—प्र—प्र—भू
      |   |   \
      उ   उ    उ
```
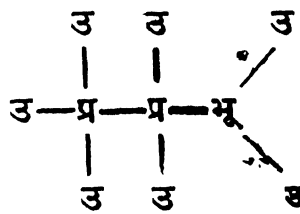
यह तिक्ताति का व्युत्पन्न है जिसमें तिक्ताति के एक उदजन के स्थापन में एक दक्षुल मूल विद्यमान है। तिक्ताति का दूसरा और तीसरा उदजन भी दक्षुल से प्रतिस्थापित हो सकते हैं। ऐसी दशा में निम्न संयोग बनते हैं।

$$प्रउ_३-प्रउ_२—भूउ_२ + प्र_२उ_५जं = \begin{array}{l} प्रउ_३-प्रउ_२ \\ \qquad\qquad > भूउ + उजं \\ प्रउ_३-प्रउ_२ \end{array}$$

$$\begin{array}{l} प्रउ_३-प्रउ_२ \\ \qquad\qquad > भूउ \\ प्रउ_३-प्रउ_२ \end{array} + प्र_२उ_५जं = \begin{array}{l} प्रउ_३-प्रउ_२ \\ प्रउ_३-प्रउ_२ > भू + उजं \\ प्रउ_३-प्रउ_२ \end{array}$$

जब तिक्काति का केवल एक उदजन परमाणु क्षारल से प्रतिस्थापित होता है ऐसे तिक्की को अद्य तिक्की (primary amine), जब दो परमाणु प्रतिस्थापित हो तो उसे द्वितीयक तिक्की (secondary amine) और जब तीनों प्रतिस्थापित हो तो उसे तृतीयक तिक्की (tertiary amine) कहते है। इन तीनों तिक्कियों के अतिरिक्त एक और संयोग होता है जो तिक्कातु लवणों के चार उदजन परमाणुओं के चार क्षारल से प्रतिस्थापित होने से बनता है। ऐसे संयोगोंको चतुर्थक तिक्कातु संयोग (quaternary ammonium compounds) कहते हैं।

दक्षुल तिक्की	प्र२उ५भूउ२	अद्य तिक्की
द्विदक्षुल तिक्की	(प्र२उ५)२भूउ	द्वितीयक तिक्की
त्रिदक्षुल तिक्की	(प्र२उ५)३भू	तृतीयक तिक्की

चतुर्दक्षुल तिक्कातु जम्बेय (प्र२उ५)४ भू जं चतुर्थक तिक्कातु जम्बेय

—भूउ२, = भूउ, ═ भू मूलों को क्रमशः तिक्की (amino) वितिक्की (imino) और तृतीयक भूयाति (tertiary nitrogen) मूल कहते हैं।

भूय-दक्षिण्य, प्र२उ५भूज२। भूय-दक्षिण्य दक्षुल जम्बेय पर रजत भूयित की क्रिया से प्राप्त होता है।

प्र२उ५जं + रभूज२ = प्र२उ५भूज२ + रजं
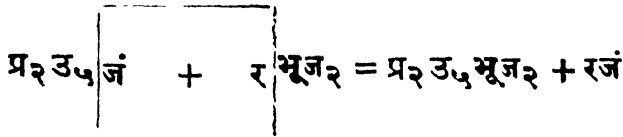
गुण और संस्थापना। भूय दक्षिण्य रंगहीन तरल है जो ११४°श० पर उबलता है। दह विक्षार से यह उद्‌ंशन नहीं होता पर उसमें प्रविलीन हो विलेय क्षारातु लवण बनता है।

प्र२उ५भूज२ + क्षजउ = प्र२उ४क्षभूज२ + उ२ज
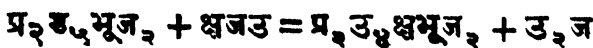
जायमान उदजन (त्रपु और उदनीरिक अम्ल) से यह प्रह्रावित होकर दक्षुल तिक्की बनता है।

प्रउ$_3$प्रउ$_2$भूज$_2$ + ६उ = प्रउ$_3$प्रउ$_2$भूउ$_2$ + २उ$_2$ज
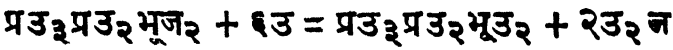
भूय-दक्षिण्य से दक्षुल तिक्ती प्राप्त होता है। दक्षुल तिक्ती में प्रांगार परमाणु से भूयाति का परमाणु सम्बद्ध है। इससे यह परिणाम नकलता है कि भूय-दक्षिण्य में भी भूयाति प्रांगार के परमाणु से सम्बद्ध है। अतः इसका संस्थापना सूत्र हुआ।
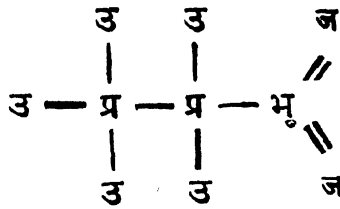
भूय-दक्षिण्य दक्षुल भूयित (ethyl nitrite) का समाजिक है। दक्षुल भूयित की संरचना निम्न है और यह दक्षुल सुषव पर भूय्य

```
      उ     उ
      |     |
उ — प्र — प्र —[ज उ + उ]ज भूज =
      |     |
      उ     उ

      उ     उ
      |     |
उ — प्र — प्र — ज — भू = ज + उ₂ ज
      |     |
      उ     उ
```
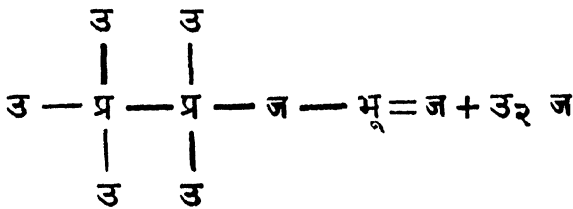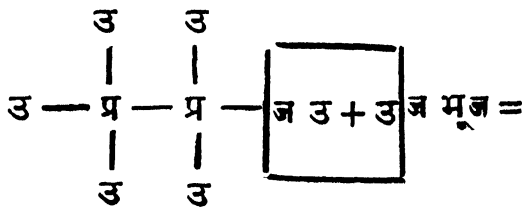
दक्षुल भूयित

अम्ल की क्रिया से प्राप्त होता है। दक्षुल भूयित में भूयाति सीधे प्रांगार के साथ सम्बद्ध नहीं है जैसे भूय दक्षिण्य में है। यह बात निम्न क्रियाओं से प्रमाणित होती है।

(१) क्षारक की क्रिया से दक्षुल भूयित दक्षुल सुषव और क्षारक भूयित में परिणत होता है। भूय-दक्षिण्य इसी की क्रिया से क्षारातु लवण बनता है।

प्र$_2$उ$_5$जभूज + दजउ = प्र$_2$उ$_5$जउ + दभूज$_2$
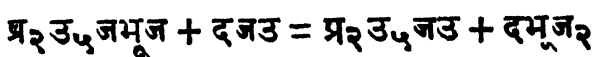
(२) प्रहासकों से दक्षुल भूयित दक्षुल सुषव और उदजारल-तिक्ती में अथवा तिक्ताति में परिणत होता है।

$$प्र_२ उ_५ जभूज + ४उ = प्र_२ उ_५ जउ + भू उ_२ जउ$$
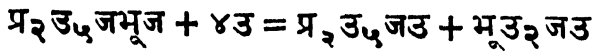
ठीक इसी क्रिया से भूय-दक्षिण्य दक्षुल तिक्ती में परिणत होता है। दक्षुल भूयित के साथ जो क्रियाएँ होती हैं उनमें भूयाति दक्षुल से अलग हो जाता है पर भूय-दक्षिण्य में ऐसा नहीं होता। इससे मालूम होता है कि दक्षुल भूयित में भूयाति सीधे प्रांगार परमाणु से सम्बद्ध नहीं है वरन् जारक के द्वारा प्रांगार से संयुक्त है।

दक्षुल श्यामेय, $प्र_२ उ_५ प्रभू$। निम्न रीतियों से यह संयोग प्राप्त हो सकता है।

१—दहातु श्यामेय की दक्षुल जम्बेय पर क्रिया से।

$$प्र_२ उ_५ जं + दप्रभू = प्र_२ उ_५ प्रभू + दजं$$
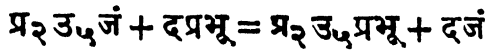
दक्षुल जम्बेय दहातु श्यामेय

२—तिक्तातु प्रमेदीय अथवा प्रमदि तिक्तेय (propionamide) से जल-तत्त्व निकाल लेने से।

$$प्र_२ उ_५ प्रजजभूउ_४ - २उ_२ ज = प्र_२ उ_५ प्रभू$$

तिक्तातु प्रमेदीय

$$प्र_२ उ_५ प्रजभूउ_२ - उ_२ ज = प्र_२ उ_५ प्रभू$$
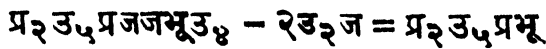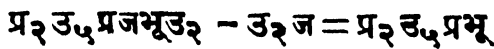
प्रमदि तिक्तेय

गुण और संस्थापना। दक्षुल श्यामेय एक तरल है जो ९८° श० पर उबलता है। इसकी गन्ध विशिष्ट पर अरुचिकर नहीं होती है। जायमान उदजन से यह प्रहासित हो प्रमेल तिक्ती बनता है।

$$प्रउ_३ - प्रउ_२ - प्रभू + ४उ = प्रउ_३ - प्रउ_२ - प्रउ_२ भूउ_२$$
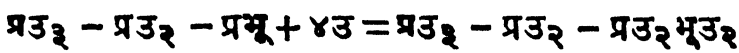
प्रमेल तिक्ती में तीन प्रांगार परमाणुओं के एक दूसरे से और फिर भूयाति से संयुक्त होने से पता लगता है श्यामेय मूल –प्रभू प्रांगार के द्वारा दक्षुल से संयुक्त है। प्रांगार चतुः संयुत है। इसकी एक

संयुजता क्षारल मूल से और शेष तीन संयुजता भूयाति की संयुजता से सन्तुष्ट है। अतः इसका संस्थापन सूत्र हुआ।

$$प्रउ_३ - प्रउ_२ - प्र \equiv भू$$

दक्षुल श्यामेव उदंशित हो पहले तिक्तेय (amide) बनता, फिर स्नैहिक अम्ल के तिक्तातु लवण में परिणत हो जाता है।

$$प्र_२उ_५प्र \equiv भू + उ_२ज = प्र_२उ_५प्र \begin{cases} / भूउ_२ \\ \backslash\backslash ज \end{cases}$$

प्रमदि तिक्तेय

$$प्र_२उ_५प्र \equiv भू + २उ_२ज = प्र_२उ_५प्र \begin{cases} / जउ \\ \backslash\backslash ज \end{cases} + भूउ_३$$

प्रमिदक अम्ल

तिक्ताति फिर अम्ल के साथ संयुक्त हो तिक्तातु लवण बनता है चूँकि श्यामेय उदंशन से अम्ल बनता है अतः इन्हें अम्ल भूयिल भी कहते हैं। दक्षुल श्यामेय को भी प्रमदिक भूयिल कहते हैं।

दक्षुल श्यामेय के सभाजिक एक दूसरे संयोग होते हैं जिन्हें दक्षुल स-श्यामेय कहते हैं। इनके गुणों से प्रमाणित होता है कि इनकी संस्थापना $प्र_२उ_५ - भू \equiv प्र$ है। ये स-श्यामेय अत्र तिक्ती पर सुषविक दह क्षार्जि की उपस्थिति में निरवप्रल की क्रिया से प्राप्त होते हैं। दक्षुल तिक्ती से प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है।

$$प्र_२उ_५भूउ_२ + प्रउनी_३ + ३क्षजउ = प्र_२उ_५भूप्र + ३क्षनी + ३उ_२ज$$

दक्षुल स-श्यामेय

स-श्यामेय को श्यामेय से (१) उनकी तीव्र गन्ध (२) उबलते क्षारक के प्रति व्यवहार और (३) जायमान उदजन के प्रहाधन से द्वितीयक तिक्ती में परिवर्तन से विभेद कर सकते हैं।

प्रश्न

१—दक्षिणय के अधिक महत्व के भूयाति व्युत्पन्नों का उल्लेख करो और उनके गुणों का वर्णन करो।

२—तिक्ती क्या है ? आद्य तिक्ती के प्राप्त करने की दो रीतियों का वर्णन करो।

दक्षुल तिक्ती पर (१) उदनीरिक अम्ल, (२) भूय अम्ल और उदनीरिक अम्ल में प्रविलीन महातु नीरेय की क्या क्रियाएँ होती हैं।

३—भूय-दक्षिणय कैसे प्राप्त होता है ? किस दूसरे भूयाति संयोग के साथ यह सभाजिक है। इन दोनों वर्गों के संयोगों की संस्थापना का उल्लेख करो।

४—दक्षुल तिक्ती के गुणों का वर्णन करो और उन्हें तिक्तातु के गुणों से तुलना करो। दक्षुल तिक्ती को दक्षुल सुषव में कैसे परिणत करोगे।

५—प्रोदल श्यामेय कैसे प्राप्त होता है ? (१) जयमान उदजन (२) उबलते जलीय दह क्षारक की प्रोदल श्यामेय पर क्या क्रियाएँ होती हैं ?

६—प्रोदल श्यामेय की संस्थापना की आलोचना करो। श्यामेय और स-श्यामेय की सभाजता के सम्बन्ध में क्या जानते हो।

अध्याय १३

सुषवों के जारण शिष्ट

हम देख चुके हैं कि एकोदिक सुषवों की विशेषता यह है कि उनमें क्षारक मूल से उदजारल संबद्ध रहता है। यह उदजारल उस प्रांगार परमाणु के साथ संयुक्त हो सकता है जो केवल एक ही और प्रांगार परमाणु से संयुक्त हो। ऐसा हम दहल सुषव, प्रउ$_३$–प्रउ$_२$ (जउ) में पाते हैं। यह उदजारल उस प्रांगार परमाणु के साथ भी संयुक्त हो सकता है जिससे दो प्रांगार परमाणु संयुक्त हों। ऐसा हम स-प्रमेल सुषव $\begin{matrix}प्रउ_३\\प्रउ_३\end{matrix}$>प्रउ (जउ) में पाते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि उदजारल उस प्रांगार परमाणु से संयुक्त हो जो तीन और प्रांगार परमाणुओं से संयुक्त है। ऐसा हम तृतीयक घृतल सुषव प्रउ$_३$—प्र(प्रउ$_३$)(प्रउ$_३$)—जउ में पाते हैं। इस प्रकार सुषव तीन प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के सुषव को आद्य सुषव (primary alcohols), दूसरे प्रकार के सुषव को द्वितीयक सुषव (secondary alcohols) और तीसरे प्रकार के सुषव को तृतीयक सुषव (tertiary alcohols) कहते हैं। दहल सुषव आद्य सुषव के, स-प्रमेल सुषव द्वितीयक सुषव के और तृतीयक घृतल सुषव तृतीयक सुषव के उदाहरण हैं। प्रोदल सुषव आद्य सुषव है। आद्य सुषव में–प्रउ$_२$ जउ आद्य (primary group) मूल, द्वितीयक सुषव में द्वितीयक (secondary)>प्रउ जउ मूल और तृतीयक सुषव में $\geqslant$प्र जउ तृतीयक (tertiary) मूल रहते हैं। अब हम लोग सुषवों के जारण का अध्ययन करें और देखें कि उनसे क्या

पदार्थ बनते हैं। जारण में उसी प्रांगार परमाणु पर प्रभाव पड़ता है जिससे उदजारल मूल संयुक्त है।

पहले हम आद्य सुषव लें। दह्नल सुषव आद्य सुषव का अच्छा नमूना है। दह्नल सुषव की संरचना निम्नलिखित है।
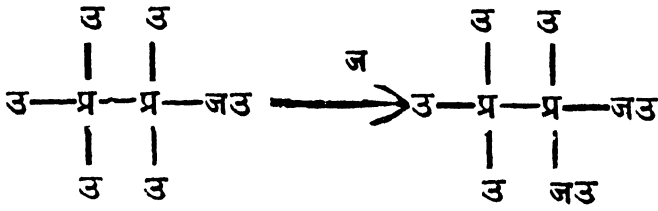
जब यह जारित होता है तब इसमें जारक का एक परमाणु जुट जाता है। इसके जुटने से आद्य मूल का एक उदजन उदजारल में परिणत हो जाता है।

```
     उ    उ                             उ    उ
     |    |            −उ₂ज             |    |
उ—प्र—प्र—जउ  ————————→  उ—प्र—प्र = ज
     |    |                             |
     उ    जउ                            उ
```
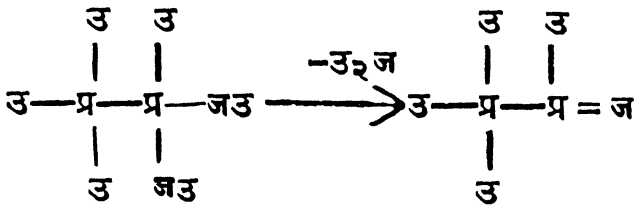
अब एक प्रांगार परमाणु से दो उदजारल संयुक्त हैं। ऐसे संयोग अस्थायी होते हैं इनसे जल निकल जाता और प्रांगार द्विबन्ध से जारक से संयुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो संयोग बनता है उसे शुक्त सुव्युद (acetaldehyde) कहते हैं। सुव्युद में जो विशिष्ट मूल

```
         उ
        /
—प्र
        \\
         ज
```

रहता है उसे सुव्युदिक (aldehydic) मूल, —प्र कहते हैं। यह मूल एक-संयुत है और सब सुव्युदों में होता है। यह सुव्युद भी जारित हो सकता है, क्योंकि सुव्युदिक मूल में एक उदजन अभी भी विद्यमान है और जारण से यह उदजारल में परिणत हो सकता है। वास्तव में

सुव्युद जरित होते हैं। सुव्युदिक मूल का उदजन उदजारल में परिणत हो जाता है।

```
        उ                       जउ
       /                       /
प्रउ₃ प्र      + ज  = प्रउ₃ प्र
       \\                      \\
        ज                       ज
```
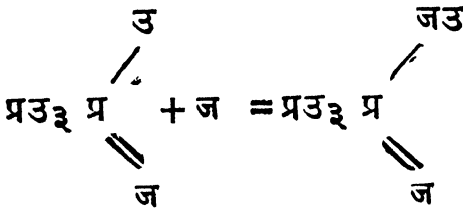
इस प्रकार जो संयोग बनता है उसे अम्ल कहते हैं। दव्युल सुषव से पहले शुक्त सुव्युद और फिर शुक्तिक अम्ल बनता है। अम्लों में

```
                                        जउ
                                       /
एक संयुत मूल —प्रजजउ वा —प्र              रहता है। इस मूल को
                                       \\
                                        ज
```

प्रांगाजारल (carboxyl) कहते हैं। प्रांगारिक जार-अम्लों (carbon oxy-acids) का प्रांगा जारल मूल सारभूत संघटक है। यहाँ हम देखते हैं कि आद्य सुषव के जारण से पहले सुव्युद बनता और फिर अम्ल बनता है और इन सुव्युदों और अम्लों में प्रागांर परमाणु की संख्याएँ वही हैं जो मूल सुषव में थी। इस प्रकार आद्य सुषव के जारण से सुव्युद और अम्ल बनते हैं। इनमें प्रांगार परमाणु की संख्याए वही रहती है जो आद्य सुषव में होती है।

अब यदि हम द्वितीयक सुषव को लें तो यहां भी उस प्रांगार में एक उदजन विद्यमान है जिसमें उदजारल है। यह भी सरलता से जारित हो जाता और जारण से एक और उदजारल संयुक्त हो जो संयोग बनता है उसमें एक प्रांगार परमाणु में दो उदजारल मूल विद्यमान है। ऐसे संयोग से पूर्व की भांति जल निकल कर जो संयोग बनता है उसे श्रौक्ता (ketone) कहते हैं।
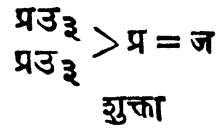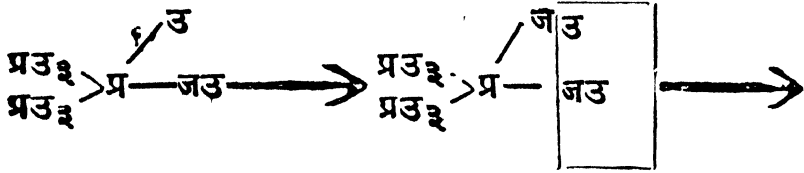
स-प्रमेल सुषव से शुक्ता प्राप्त होता है। शुक्ता में द्वि-संयुत मूल = प्र = ज विद्यमान रहता है। इस मूल को शौक्तिक (ketonic) मूल कहते हैं। सब शौक्ता में शौक्तिक मूल होता है। क्या शौक्ता भी जारित हो सकता है? शौक्ता में शौक्तिक प्रांगार परमाणु से दो प्रांगार परमाणु संयुक्त है। अतः सरलता से इसमें अब जारक प्रविष्ट नहीं कर सकता। उदजारल बनने का अन्न स्थान नहीं है। पर यह सम्भव है कि शौक्तिक प्रांगार से संबद्ध कोई प्रांगार विबद्ध हो शृंखल टूट जाय। इससे प्रांगार निकल कर प्रांगार द्विजारेय में परिणत हो सकता है। और इससे जो जारण-सृष्ट प्राप्त होगा उसमें प्रांगार परमाणु की संख्या मूल सुषव के प्रांगार परमाणु की संख्या से कम होगी।

$$\begin{matrix}\text{प्रउ}_3\\ \text{प्रउ}_3\end{matrix}>\text{प्र} = \text{ज} + २\text{ज}_2 = \text{प्रउ}_3 - \text{प्र}\begin{matrix}/\text{जउ}\\ \backslash\backslash\text{ज}\end{matrix} + \text{प्रज}_2 + \text{उ}_2\text{ज}$$
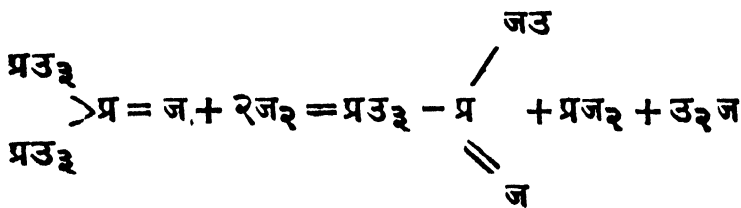
इससे स्पष्ट है कि शौक्ता भी जारित हो सकते हैं पर उनके जारण से जो अम्ल प्राप्त होगा उसमें प्रांगार परमाणुओं की संख्या कम होगी। इस प्रकार द्वितीयक सुषवों के जारण से पहले शौक्ता बनते हैं। शौक्ता में प्रांगार परमाणुओं की संख्या वही रहती है जो मूल सुषव में पर शौक्ताके जारण से जो अम्ल बनते हैं उनमें प्रांगार परमाणुओं की संख्या मूल सुषव के प्रांगार परमाणुओं से कम होती है।

अब हम तृतीयक सुषव

$$
\begin{array}{c}
\text{प्रउ}_3 \\
| \\
\text{प्रउ}_3\text{—प्र—जउ} \\
| \\
\text{प्रउ}_3
\end{array}
$$
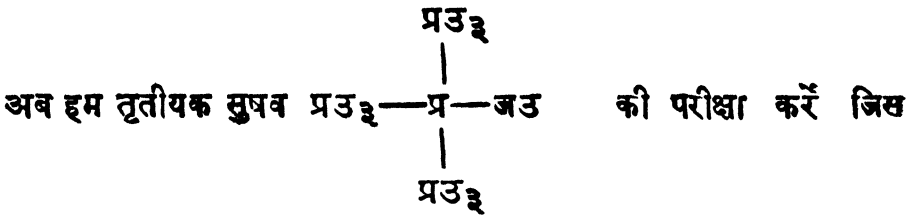
की परीक्षा करें जिस प्रांगार परमाणु से उदजारल संयुक्त होता है उसमें कोई उदजन नहीं होता। अतः तृतीयक सुषव सरलता से जारित नहीं होते। यदि इन्हें प्रबल जारणकर्ताओं से जारित की जाय तो इनसे भी शौक्ता बनते हैं पर इससे शृङ्खल टूट जाता और एक अथवा अधिक प्रांगार परमाणु निकल जाते हैं। इनके जारण से हमें जो शौक्ता और अम्ल प्राप्त होते हैं उनमें प्रांगार परमाणुओं की संख्या मूल सुषव से कम होती है।

उपर्युक्त कथन से मालूम होता है कि जारण पर एको-दिक सुषव कैसे व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार के व्यवहार वहु-उदिक-सुषवों के भी होते हैं। भेद केवल यही है कि वहु-उदिक सुषवों से अधिक संख्या में भिन्न शृष्ट प्राप्त होते हैं। मधुव द्वि-उदिक सुषव है। इसका सूत्र $\text{प्रउ}_2\text{जउ} - \text{प्रउ}_2\text{जउ}$ है। इसके जारण से निम्न जारण शृष्ट प्राप्त होते हैं।
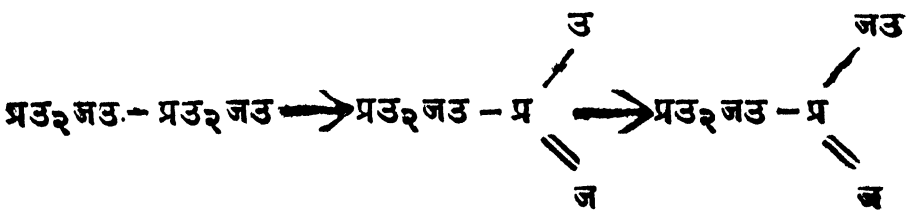
$$
\text{प्रउ}_2\text{जउ} - \text{प्रउ}_2\text{जउ} \longrightarrow \text{प्रउ}_2\text{जउ} - \text{प्र}\begin{array}{l} \diagup \text{उ} \\ \diagdown\!\!\diagdown \text{ज} \end{array} \longrightarrow \text{प्रउ}_2\text{जउ} - \text{प्र}\begin{array}{l} \diagup \text{जउ} \\ \diagdown\!\!\diagdown \text{ज} \end{array}
$$
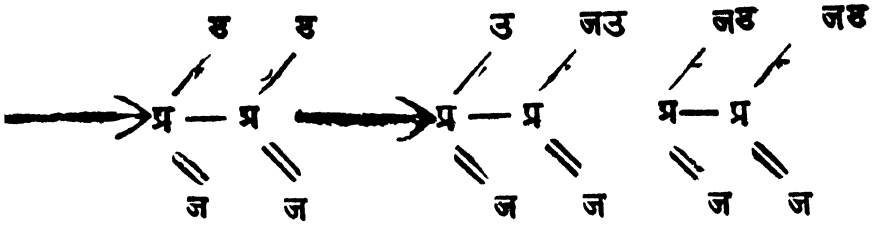
मधुव	सुव्युद सुषव	सुषव अम्ल
(Glycol)	Glycollic aldehyde	Glycollic acid
	(मधुविक सुव्युद)	(मधुविक अम्ल)

प्रश्न

१—आद्य, द्वितीयक और तृतीयक सुषवों में कौन विशिष्ट मूल विद्यमान है ? इनके जारण से क्या प्राप्त होते हैं ?

२—इनके जारण से क्या प्राप्त होंगे ? (१) प्रउ$_3$-प्रउ$_2$जउ (२) प्रउ$_3$ – प्रउ (जउ) प्रउ$_3$ (३) प्रउ$_3$जउ ।

३—द्वितीयक सुषव का क्या आशय है ? दो द्वितीयक सुषवों की संस्थापना सूत्र लिखो और उनके जारण से जो सृष्ट प्राप्त होते हैं उनका वर्णन करो ।

अध्याय १४

सुव्युद और शौक्ता

अद्य सुषवों के जारण सृष्ट सुव्युद हैं और द्वितीयक सुषवों के शौक्ता। ये दोनों ही वर्ग के संयोग सधर्म माला बनते हैं। इन दोनों मालाओं के एक ही सूत्र $प्र_{स} उ_{२स} ज$ हैं। इस सूत्र से पता लगता है कि इनमें तत्सम्वादी सुषवों से दो उदजन परमाणु कम हैं।

सुव्युदों में एक-संयुत मूल —प्र(/उ, =ज') क्षारल के साथ सम्बद्ध होता है। अतः इनके सामान्य सूत्र र — प्र(/उ, =ज) जहाँ "र" कोई क्षारल मूल है। शौक्ता में द्वि-संयुत मूल >प्र=ज रहता है। इसका सामान्य सूत्र र–प्रज–र है। सुव्युद सुषवों के जारण से प्राप्त होते हैं और स्वयं जारित हो अम्ल बनते हैं। अतः इनके नाम या तो सुषवों के नाम से अथवा अम्लों के नाम से बनते हैं।

$प्रउ_{३}$ – प्र(/उ, =ज) को दक्षुसुव्युद वा शुक्त-सुव्युद कहते हैं।
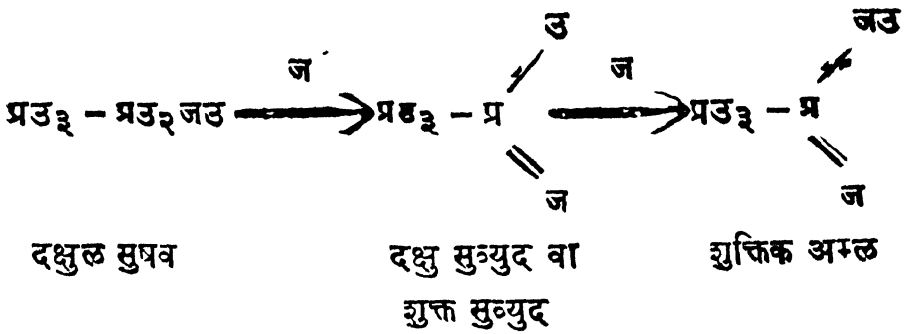
शौक्ताओं का नामकरण क्षारल मूलों के नाम से होता है। जिस शौक्ता में दो प्रोदल मूल विद्यमान है उसे द्वि-प्रोदल शौक्ता, जिसमें एक प्रोदल और एक दक्षुल विद्यमान है। उसे प्रोदल दक्षुल शौक्ता कहते हैं। यदि किसी शौक्ता में एक ही प्रकार के क्षारल मूल विद्यमान हैं तो उसे सरल शौक्ता (simple ketone) और जिसमें क्षारल मूल भिन्न है उसे मिश्रित शौक्ता (mixed ketone) कहते हैं। दक्षु के सदृश शौक्ता में भी समभाजता होती है।

सुव्युद और शौक्ता के सामान्य गुण। सुव्युद और शौक्ता दोनों में — प्र = ज मूल–जिसमें प्रांगार द्विबन्ध के साथ जारक से सम्बद्ध है—होते हैं। इसलिए इनके कुछ गुण समान हैं। इस — प्र = ज मूल के कारण इनकी कुछ रसायनिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। या तो (१) द्विबन्ध जारक प्रतिक्रियित पदार्थों के उदजन से उदजारल में परिणत हो जाता है अथवा (२) प्रतिक्रियित पदार्थों के दो उदजन परमाणुओं से जारक जल बनकर निकल जाता है। इनके गुणों को हम शुक्त सुव्युद और शुक्ता वा द्वि-प्रोदल शौक्ता लेकर प्रदर्शित करेंगे।

(१) जारक का उदजारल में परिणत होना।

१—जायमान उदजन से सुव्युद और शौक्ता प्रहासित हो क्रमशः आद्य और द्वितीयक सुषव में परिणत हो जाते हैं।

$$\begin{matrix}\text{प्रउ}_3\\ \text{प्रउ}_3\end{matrix} > \text{प्र} = \text{ज} + \text{२उ} = \begin{matrix}\text{प्रउ}_3\\ \text{प्रउ}_3\end{matrix} > \text{प्र}\begin{matrix}\diagup\ \text{उ}\\ \diagdown\ \text{जउ}\end{matrix}$$

स-प्रमेल सुषव
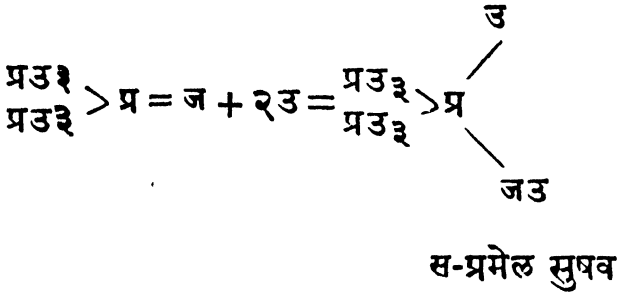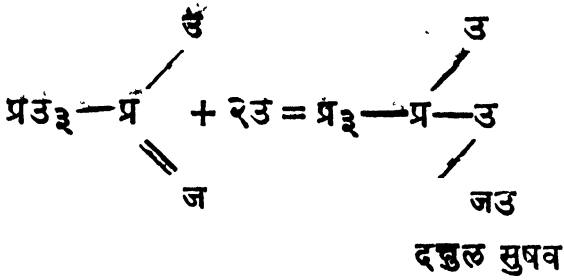
इन प्रतिक्रियाओं में दिबन्ध-बद्ध जारक जब उदजन का एक परमाणु ले लेता तब जारक एक-संयुत उदजारल में परिणत होता और प्रांगार की मुक्त संयुता उदजन के दूसरे परमाणु से संबद्ध हो जाती है।

२—उदश्यामिक अम्ल (hydrocyanic acid) के साथ वे श्यामोदि (cyanhydrin) बनते हैं।
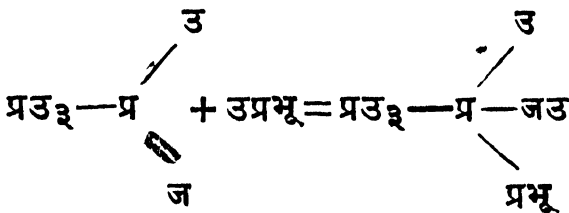
शुक्त सुव्युद श्यामोदि
(acetaldehyde cyanhydrin)

$$\begin{matrix}प्रउ_३ \\ प्रउ_३\end{matrix} > प्र = ज + उप्रभू = \begin{matrix}प्रउ_३ \\ प्रउ_३\end{matrix} > प्र \begin{matrix} / जउ \\ \backslash प्रभू \end{matrix}$$
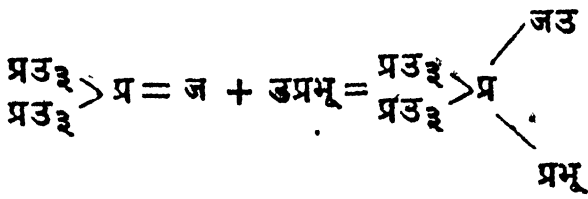
शुक्ता श्यामोदि
(acetone cyanhydrin)

३—क्षारातु उदजन शुल्बित—क्षउशुज$_३$—के अनुविद्ध विलयन से वे स्फटात्मक संकलन संयोग बनते हैं।

$$प्रउ_३—प्र \begin{matrix} / उ \\ \backslash\backslash ज \end{matrix} + क्षउशुज_३ = प्रउ_३—प्र \begin{matrix} / उ \\ —जउ \\ \backslash शुज_३क्ष \end{matrix}$$

$$\begin{matrix}प्रउ_३ \\ प्रउ_३\end{matrix} > प्र = ज + क्षउशुज_३ = \begin{matrix}प्रउ_३ \\ प्रउ_३\end{matrix} > प्र \begin{matrix} / जउ \\ \backslash शुज_३क्ष \end{matrix}$$
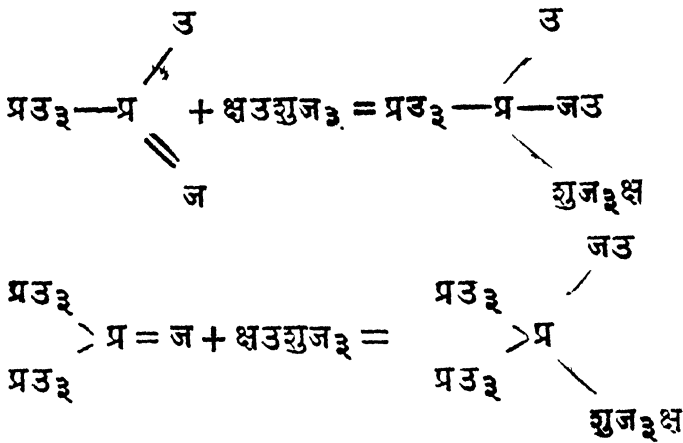
इस अन्तिम प्रतिक्रिया से सुव्युद और शौक्ताओंको प्रांगार के अन्य संयोगों से पृथक् करते हैं क्योंकि इससे क्षारातु द्वि-शुल्बित का अविलेय संयोग स्फट के रूप में निकल आता और अन्य प्रांगार संयोग विलयन में ही रह जाते। इन स्फटात्मक संयोगों को क्षारातु प्रांगारीय से तपाने से सुव्युद और शौक्ता निकल आते हैं। इस प्रतिक्रिया से प्रोदल अथवा दच्चुल सुषव से शुक्ता भी पृथक् किया जा सकता है।

(२) जारक परमाणु का निकालना।

४—उदजारल तिक्ती (Hydroxyl amine)—भूउ$_२$जउ—से सुव्युद और शौक्ता जावि बनते हैं, सुव्युद से सुविजावि (aldoxime) और शौक्ता से शौक्त जावि (ketoxime) बनता है।

$$प्रउ_३—प्र\begin{matrix}⫽ उ\\ \\ ⫽ ज\end{matrix} + उ_२भूजउ = प्रउ_३—प्र\begin{matrix}⫽ उ\\ \\ ⫽ भूजउ\end{matrix} + उ_२ज$$

शुक्त सुविजावि
(acetaldoxime)

$$\begin{matrix}प्रउ_३\\ प्रउ_३\end{matrix}>प्र = ज + उ_२भूजउ = (प्रउ_३)—प्र = भूजउ + उ_२ज$$
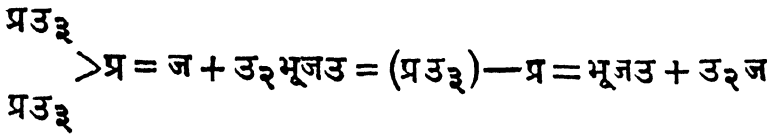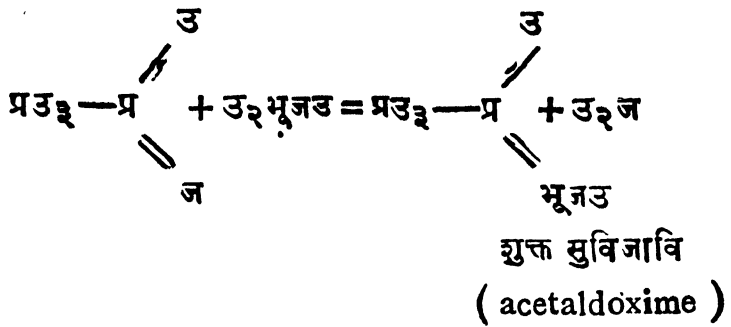
शुक्ता-जावि
(acetoxime)

यहां द्विबन्ध से संबद्ध जारक जल के रूप में निकल जाता और इसका स्थान द्वि-संयुत मूल =भूजउ जावि (oxime) ले लेता है।

५—उदाजीवी, (hydrazine)-$भूउ_२—भूउ_२$, अथवा दर्शल उदाजीवी (phenyl hydrazine) $भूउ_२—भूउप्र_६उ_५$ से सुन्युद और शौक्ता उदाजीवा (hydrazone) अथवा दर्शल उदाजीवा (phenyl hydrazone) बनते हैं।

$$प्रउ_३—प्र\begin{matrix}⫽ उ\\ \\ ⫽ ज\end{matrix} + उ_२भू—भूउप्र_६उ_५ =$$

$$प्रउ_३—प्र\begin{matrix}⫽ उ\\ \end{matrix} = भू—भूउप्र_६उ_५ + उ_२ज$$
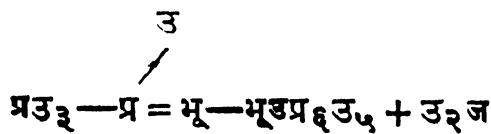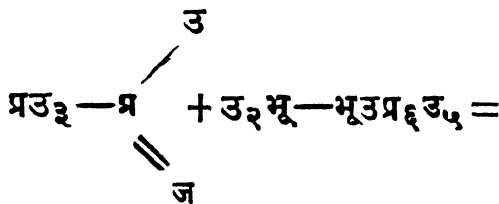
शुक्त सुन्युद दर्शल उदाजीवा
(acetaldehyde phenyl hydrazone)

$$\begin{matrix} प्रउ_3 \\ \\ प्रउ_3 \end{matrix} > प्र = ज + उ_2भू — भूउप्र_6उ_5 =$$

$$\begin{matrix} प्रउ_3 \\ \\ प्रउ_3 \end{matrix} > प्र = भू भूउप्र_6उ_5 + उ_2ज$$
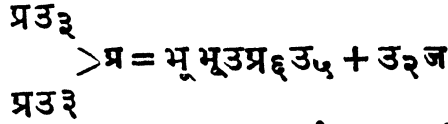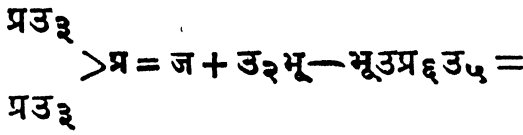
शुक्ता दर्शल उदाजीवा
(acetone phenyl hydrazone)

६—भास्वर पंचनीरेय से सुव्युद और शौक्ता द्वि·लवणजन व्युत्पन्न में परिणत हो जाते हैं।

$$प्रउ_3 प्रउज + भनी_5 = प्र उ_3—प्रउनी_2 + भजनी_3$$

दव्युलेयेन्य नीरेय

$$प्रउ_3—प्रज—प्रउ_3 + भनी_5 = प्रउ_3—प्रनी_2—प्रउ_3 + भजनी_3$$
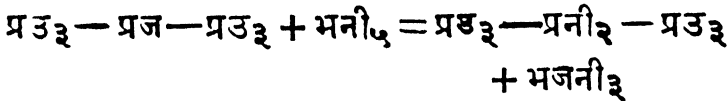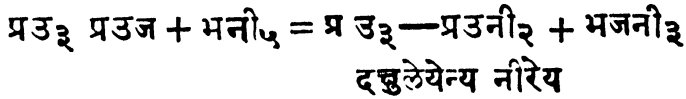
सुव्युदों के विशेषगुण। हम ऊपर देख चुके हैं कि सुव्युद सरलता से जारक लेकर अम्लों में परिणत हो जाते हैं पर शौक्ता कठिनता से ही जारित होते हैं। इन कारणों से सुव्युद प्रह्लासक होते हैं पर शौक्ता ऐसे नहीं होते।

१—सुव्युद तिक्तातिय रजत भूयीय को प्रह्लासित कर ध्वात्विक रजत में परिणत करते हैं। तिक्तातिय रजत भूयीय विलयन में रजत जारेय $र_2ज$ रहता है। यह रजत जारेय सुव्युद को जारक प्रदान कर उसे अम्ल में जारित कर देता है।

$$प्र उ_3—प्र\begin{matrix} ⁄ उ \\ \\ ⫽ ज \end{matrix} + र_2ज = प्र उ_3—प्र\begin{matrix} ⁄ ज उ \\ \\ ⫽ ज \end{matrix} + २ र$$
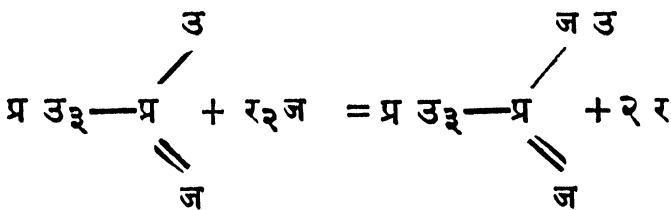
संपरीक्षा २४। रजत भूयीय के २ घ० शि० मा० मन्द विलयन को एक स्वच्छ परीक्षण नाल में रखो। उसमें तिक्ताति का मन्द विलयन बूँद बूँद तब तक डालो जब तक रजत जारेय का निस्साद

प्रविलीन न हो जाय। अब उसमें सुव्युद के विलयन की कुछ बूँदे डालो और परीक्षण नाल को चषुकी के उबलते जल में रखकर धीरे धीरे उष्ण करो। परीक्षण नाल के पार्श्व में रजत का अवसादन (deposit) चमकीले दर्पण के रूप में प्राप्त होगा।

२—सुव्युद ताम्र शुल्बीय के क्षारिय विलयन अथवा फेलिंग विलयन, (Fehling solution) को प्रह्वासित कर ताम्रय जारेय का रक्त निस्साद देता है।
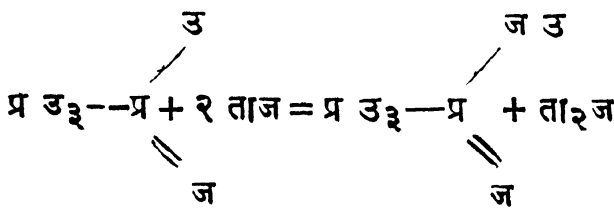
ताम्रय जारेय

फेलिंग विलयन वास्तव में ताम्र शुल्बीय और रौशेल लवण—क्षारातु दहातु न्यासवीय (sodium potassium tartrate)—का विलयन है जिसमें दह बिक्षार डाला हुआ है। क्षारातु दहातु न्यासवीय के लेने का उद्देश्य केवल ताम्रिक जारेय को विलयन में रखने का है। इस विलयन में ताम्रिक जारेय विलेय होता है।

संपरीक्षा २५। एक परीक्षण नाल में प्रायः ०·५ धान्य ताम्र शुल्बीय रखकर उसमें एक धान्य रौशेल लवण डालकर १० घ० शि० मा० जल में प्रविलीन करो। दह विक्षार के १० प्रतिशत विलयन का १०–१२ बूँद डालो। यह फेलिग विलयन बन गया। इसमें कुछ बूँदे शुक्त सुव्युद की डालो। ताम्रय जारेय–ता₂ज—का रक्त निस्साद प्राप्त होगा।

३—तिक्ताति से सुव्युद स्फटात्मक संयोग बनते हैं। इन्हें सुव्युद तिक्ताति कहते हैं। सुव्युद को अन्य संयोगों से इसी प्रतिक्रिया से पृथक करते हैं। अन्य संयोगों से ऐसी कोई क्रिया नहीं होती। पर वम्र सुव्युद का व्यवहार इस क्रिया का अपवाद है।

```
               उ                        उ
              /                        /
प्र उ₃—प्र  +भू उ₃ = प्र उ₃—प्र—भू उ₂
              \\                       \
               ज                        ज ष
```
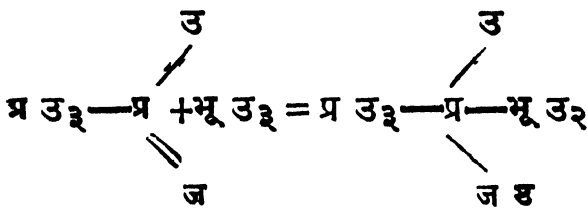
५—मंजीठ (magenta) विलयन में शुल्बारि द्वि-जारेय के प्रवाह से वह विरंजित हो जाता है। ऐसे विरंजित विलयन में सुष्युद के डालने से सुन्दर नील-लोहित रंग प्राप्त होता है। इस परीक्षण को "शिफ" का परीक्षण (Schiff's test) कहते हैं।

संपरीक्षा २६। एक परीक्षण नाल में थोड़ा मंजीठ का विलयन लेकर उसमें शुल्बारि द्विजारेय का प्रवाह प्रवाहित करो। जब वह रंगहीन हो जाय तब उसमें कुछ बूँदें शुष्क सुष्युद को डालो, विलयन सुन्दर नील-लोहित रंग का हो जायगा।

६—सुष्युदों को प्रबल क्षारक के साथ तपाने से उद्यास सृष्ट.प्राप्त होते हैं।

७—सुष्युद का सरलता से पुरुभाजन होता है। १ से ५ प्रतिक्रियाओं के द्वारा सुष्युद को शौक्ता से विभेद कर सकते हैं।

```
                 उ
                /
वम्र सुष्युद उ—प्र   । साधारण ताप पर यह वाति है। प्रोदल
                \\
                 ज
```
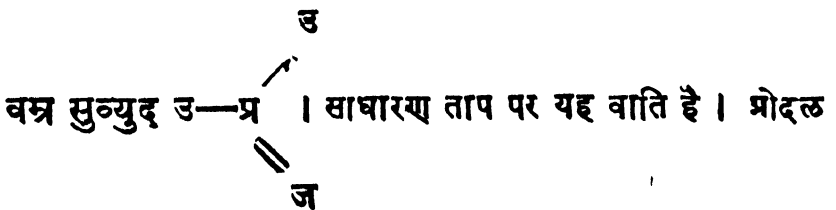
सुषव के अपूर्ण जारण से जारक की सीमित मात्रा में यह प्रस्तुत होता है। पूर्ण जारण से प्रोदल सुषव प्रांगार द्विजारेय और जलमें परिणत हो जाता है।

```
                          उ
                         /
प्र उ₃ ज उ+ज = उ–प्र + उ₂ ज
                         \\
                          ज
```

प्र उ₃ ज उ + ३ ज = प्र ज₂ + २ उ₂ ज
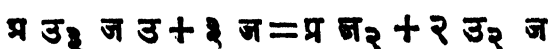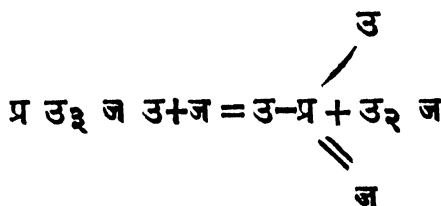
प्रोदल सुषव का वम्र सुव्युद में जारण इस प्रकार होता है। प्रोदल सुषव के वाष्प और वायु के मिश्र को उष्ण ताम्र या उष्ण महातु पर प्रवाहित करते हैं, उष्ण महातु साधारणतया महातुरोपित (platinum covered) अदह के रूप में प्रयुक्त करते हैं। महातु धातु के आवेजक क्रिया को महातु तन्तु के उष्ण कुण्डल (coil) को चञ्चुकी में रखें उष्ण प्रोदल सुषव पर डालने से सरलता से दिखलाया जा सकता है। उसमें कुण्डल चमकता रहता है। वम्र सुव्युद बनता है जिसकी तीखी गंध से सरलता से पहचान सकते हैं।

वम्र सुव्युद की प्राप्ति। प्रोदल सुषव का ५० घ० शि० मा० को एक पलिघ में रखो जिसमें दो छेदवाली त्वक्षा लगी हो। एक छेद में एक काँच नाल डालो जो पलिघ के बुघ्न तक जाता हो दूसरे छेद में एक वक्रनाल डालो जो पलिघ को एक दहननाल से जोड़ दे। इस दहन नाल में महातुरोपित अदह रखो। इस दहन-नाल का दूसरा सिरा जलके पलिघ में हो। दूसरे पलिघ को जल क्षिप (jet) स्वसित्र (aspriator) से जोड़ दो। प्रोदल सुषव वाला पलिघ को ४०° श० तक जल-तापन पर तपाओ और स्वसित्र से वायु के प्रबल-प्रवाह को खींचो। महातुरोपित अदह को तपाओ जिससे वह चमकने लगे। जब प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है तो प्रतिक्रिया की उष्मा उसे चमकते रखने के लिए पर्याप्त होती है। फिर तपाने की आवश्यकता नहीं होती। वम्र सुव्युद बनकर दूसरे पलिघ के जल में प्रचूषित होता है।

प्रोदल सुषव और दहातु द्विवर्णीय और शुल्बारिक अम्ल के सावधान जारण से भी वम्र सुव्युद प्राप्त हो सकता है।

गुण। वम्र सुव्युद एक वाति है जो -२१° श० पर तरल बनता है। इसमें प्रबल तीव्र और तिखी गंध होती है। इससे कराठ की झिल्ली पर उतेजना उत्पन्न होती है। यह जल में अतिविलेय है।

इसका ४० प्रतिशत विलयन को वाणिज्य में वम्रस्वि(formalin or formol) कहते हैं।

वम्र सुव्युद में सुव्युद के सामान्य गुण होते हैं। इसपर उदजन, उदश्यामिक अम्ल, क्षारातु द्वि-शुल्बित से संकलन संयोग बनते हैं, उद्जारल तिक्ती से सुविजावि, उदाजीवी से उदाजोवा बनते हैं। यह तिक्ताति रजत भूयीय और क्षारिय ताम्र शुल्बीय विलयन को प्रह्वासित करता है। दाहक क्षारक से अन्य सुव्युदों के सदृश यह उद्यास में परिणत हो जाता। तिक्ताति के साथ इसका व्यवहार अन्य सुव्युदों से भिन्न होता है। इसके साथ यह षट्प्रोदलेन्य चतुः तिक्ती (hexamethylene tetramine) (प उ$_2$)$_6$भू$_4$ बनता है जो भैषज्य में 'उरोट्रोपीन' के नाम से प्रयुक्त होता है।

पुरुभाजन (polymerisation)। अन्य सुव्युदों के सदृश इसमें भी पुरुभाजन की प्रबल क्षमता है। यदि वम्र सुव्युद के विलयन को शून्यक में अथवा अल्प संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल की उपस्थिति में उद्वाष्पण किया जाता तो यह एक अस्फटात्मक क्षोद में परिणत हो जाता है। इस क्षोद को परा-वम्र-सुव्युद (paraformal-dehyde) कहते हैं। इसका व्यूहाणु सूत्र (प उ$_2$ ज)$_स$ हैं जहाँ स कोई अनिश्चित संख्या हैं। वातीय वम्र सुव्युद को कुछ परिस्थितियों में ठण्ढा करने से त्रिजार-प्रोदलेन्य (प उ$_2$ ज)$_3$ बनता है। ये दोनों संयोग फिर वम्र सुव्युद में पुनः परिणत हो सकते हैं।

चूर्णक-जल की उपस्थिति में वम्र सुव्युद पुरुभाजित हो शर्कराओं के मिश्र में परिणत होता है जिसे उग्रमधु (acrose or formose) कहते हैं। कुछ लोगों का ऐसा मत है कि वायु से प्रांगार द्वि-जारेय को पौधे लेकर हरि पर्णशाद (green chlorophyll) के द्वारा प्रह्वासित कर उसे वम्र सुव्युद में परिणत करते और यह वम्र सुव्युद फिर पौधों द्वारा पुरुभाजन से शर्कराओं में परिणत होता है।

उपयोग। वम्र सुव्युद प्रचुरता से रोगाणुनाशक, कीटाणुनाशक और प्रतिपूय (antiseptic) के रूप में व्यवहृत होता है। शल्य

उपकरणों के जीवाणुघ्न (sterilisation) में वम्र सुव्युद का मन्द विलयन प्रयुक्त होता है। शारीरीय नमूने (anatomical specimens) और खाद्य के संरक्षण में भी यह प्रयुक्त होता है। वम्रस्वि की कुछ बूदों को १ प्रस्थ दूध में छोड़ देने से अनेक दिन तक वह दूध सुरक्षित रह सकता है। वम्र सुव्युद का मानव शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः राज्य नियम से इसका प्रयोग वर्जित है।

श्लिषि और श्लेष (glue and gelatine) को यह जल में अविलेय बना देता। अतः चर्म व्यवसाय में शल्किक (tannic) अम्लों के स्थान में और श्लेष से कृत्रिम कौशेय (silk) की प्राप्ति में और संश्लिष्ट उद्यासों और अभिघट्य (plastic) जैसे दर्शयास (bakelite), किलाटिश्रंग (galalith) इत्यादि में यह प्रयुक्त होता है।

संस्थापना। प्रांगार चतुः संयुत है, जारक द्वि-संयुत है और उदजन एक-संयुत है। अतः वम्र सुव्युद को एक ही संस्थापना सूत्र दिये जा सकते हैं और वह है।

```
   उ              उ
   |             /
उ—प्र=ज       —प्र      मूल को सुव्युदिक मूल कहते हैं।
                \\
                 ज
```
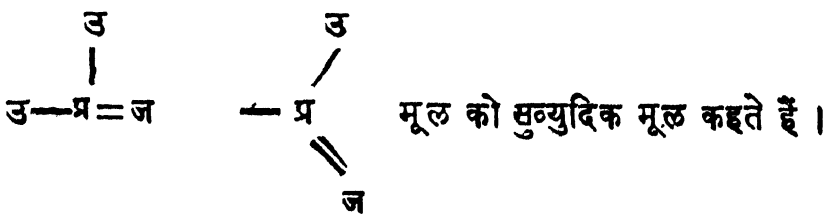
इस सूत्र से वम्र सुव्युद की सब प्रतिक्रियाओं का सरलता से समाधान हो जाता है।

```
                          उ
                         /
शुक्त सुव्युद, प्रउ₃—प्र      दक्षुल सुषव के क्षारातु द्वि-वर्णीय
                         \\
                          ज
```
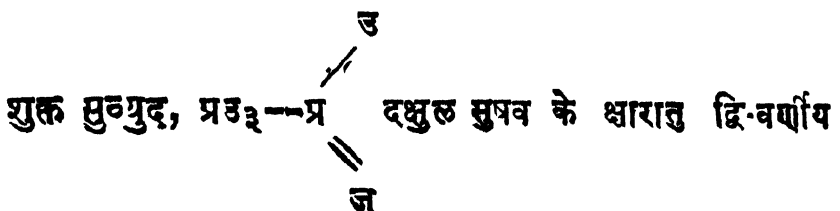
के जारण से शुक्त सुव्युद प्राप्त होता है। यहां सुषव अधिक्य में रहना चाहिए। इससे सुषव का अम्ल में जारण कम हो जाता है। इस प्रकार से प्राप्त सुव्युद को स्फाटात्मक सान्द्र संयोज—सुव्युद-तिक्काति में परिणत कर फिर उसे मन्द शुल्बारिक अम्ल के आसवन से सुव्युद पुनः प्राप्त करते है। आसुत को चूर्णातुनीरेय पर विजलीयन कर आसवन करते है।

संपरीक्षा २८। डेढ़ प्रस्थ धारित का गोल वुघ्न का पलिघ लेकर उसमें १०० धान्य सकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल और २०० घ· शि· मा· जल डालकर त्रक्षा द्वारा विन्दुपाति निवाप और एक लम्बा सघनक और आदाता जोड़ दो। आदात को श्यान मिश्र में रखो। अब विन्दुपाति से २०० घ· श· मा· जल में २०० धान्य प्रविलीन क्षारातु द्वि-वर्णीय के विलयन और १०० धान्य सुषव को धीरे धीरे पतले धार में डालो। प्रतिक्रिया में उष्माका उद्भव होता है और वह तरल को उबलते रखता है। यदि ऐसा न हो तो विलयन को कुछ थोड़ा तपाओ और ज्योंही बुदबुदाना प्रारम्भ हो ज्वाला को हटालो। विन्दुपाति निवाप का छोर तरल से एक मांग्रल ऊँचा होना चाहिए। और मिश्र को उबलते ताप पर रहना चाहिए। जब द्विवर्णीय का डालना समाप्त हो जाय तो पलिघ को सिकता-तापन पर तपाकर सुव्युद को निकाल डालो। आसुत में सुव्युद, जल, कुछ सुषव और शुक्तल (acetal) रहते हैं। प्रभागशः आसवन से पूर्ण शुद्ध सुव्युद प्राप्त करने के लिए उसे स्फटात्मक संयोग-सुव्युद तिक्काति में परिणत करते है।

आसत को पलिघ में डालकर जल-तापन पर आसवन करते है। वाष्प सघनक में जाता है। यह संघनक ऊपर की ओर झुका होता और इसमें २५°श· का जल प्रवाहित करते है। सुषव और जल संघनक में तरलबन फिर पलिघ में आ जाता है और केवल सुव्युद वाष्प (बु· २१° श) संघनक-नाल से बाहर निकल कर आदाता में इकट्ठा होता है। आदाता में हिम से ठण्डा किया हुआ शुष्क दक्षु

रखा होता है। इस दग्ध विलयन को लेकर उसमें शुष्क तिक्ताति प्रवाहित करते हैं। इससे सुव्युद तिक्ताति बनकर स्फट रुप में निस्स्रावित हो जाता है। स्फट को उदंच (pump) की सहायता से छानकर, दग्धु से धोकर पाव पत्र में सुखा लेते हैं। इन स्फटों को मन्द शुल्बारिक अम्ल के साथ आस्रवन से शुद्ध सुव्युद प्राप्त होता है।

चूर्णातु शुक्तीय को चूर्णातु वम्रीय के साथ तपाने से शुक्त सुव्युद प्राप्त होता है।

(प्रउ$_3$ प्रजज)$_2$ चू + (उप्रजज)$_2$ चू = २ प्रउ$_3$--प्रउज + २ चू प्रज$_3$
चूर्णातु शुक्तीय चूर्णातु वम्रीय शुक्त सुव्युद

गुण। शुक्त सुव्युद तीखी गंधवाला रंगहीन तरल है जो २१° श० पर उबलता है। यह सब अनुभाग में जल में विलेय है। इसके रसायनिक गुणों का ऊपर में उल्लेख हो चुका है।

एक बूँद सकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल से पुरुभाजित (polymense) हो यह परा-सुव्युद (प्र$_2$उ$_4$ज)$_3$ बनता है जो जल में अविलेय है और १२४° श० पर उबलता है। भौषज्य में स्वापक (hyptonic) के रूप में यह प्रयुक्त होता है। निम्नतापपर उदनीरिक अम्ल वाति अथवा मन्द शुल्बारिक अम्ल से यह एक दूसरे सान्द्र पुरुभाज (polymer) सम-सुव्युद (metaldehyde) में परिणत हो जाता है। यह हलका पत्र सा स्फट में उद्भाषित होता है।

उपयोग। शुक्त सुव्युद कुछ रंजकों और भैषज्य रसायनों के निर्माण में और सम-सुव्युद सान्द्र ईंधन के रूप में लघुदीपों में प्रयुक्त होता है।

संस्थापना। दग्धुल सुषव के शुक्तिक अम्ल में जारण का यह बोधक स्पष्ट है। दग्धुल सुषव और शुक्तिक अम्ल दोनों में प्रोदल मूल होता है।

प्रउ$_3$प्रउ$_2$जउ ———→ प्र$_2$उ$_4$ज ———→ प्रउ$_3$प्रजजउ

अतः यह प्रोदल मूल सुव्युद में भी रहना चाहिए। प्र$_2$उ$_4$ज से

प्रउ$_३$ निकाल लेनेपर—प्रजउ बच जाता है। शुक्त सुब्युद पर भास्वर पंचनीरेय से निम्न प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

प्रउ$_३$प्रजउ + भनी$_५$ = प्रउ$_३$प्रउनी$_२$ + भजनी$_३$
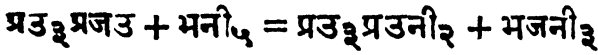
यहाँ एक जारक परमाणु के स्थान पर नीरजी के दो परमाणु प्रविष्ट करते हैं। चूँकि यहाँ कोई उदजन उदनीरिक अम्ल के रूप में नहीं निकलता इस से सिद्ध होता है कि इस संयोग में कोई उद-जारल—जउ—मूल नहीं है।

```
                                              उ
                                             /
इस कारण जो नीरेय बनता है उसका सूत्र होगा—प्र—नी। अतः
                                             \
                                              नी
```

शुक्त सुब्युद जिसमें एक जारक परमाणु विद्यमान है का सूत्र होगा

```
        उ
       /
प्रउ₃—प्र=ज
```
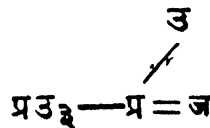
इस सूत्र से इसकी सब प्रतिक्रियाओं का समाधान सरलता से हो जाता है। इसमें सुब्युदिक मूल (aldehyde group)—प्र उ ज विद्यमान है।

शुक्ता, द्विप्रोदल शौक्ता, प्रउ$_३$प्रजप्रउ$_३$। काष्ठ के नाशक आसवन से जो काष्ठासुत (pyroligneous) अम्ल प्राप्त होता है उसमें शुक्तिक अम्ल, प्रोदल सुषव और शुक्ता रहते हैं। वाणिजिक शुक्ता का यही उद्गम है। इसके प्राप्त करने की रीति का प्रोदल सुषव में उल्लेख हो चुका है। निम्न रीतियों से भी यह प्राप्त हो सकता है।

१—स-प्रमेल सुषव के जारण से। यह रीति साधारणतया प्रयुक्त नहीं होती।

प्र उ$_३$-प्र उ ज उ—प्र उ$_३$ + ज = प्र उ$_३$प्र ज प्र उ$_३$ + उ$_२$ज

स-प्रमेल सुषव।
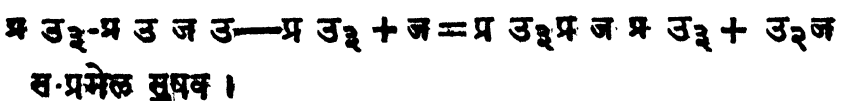
२—चूर्णातु शुक्तीय के तपाने से
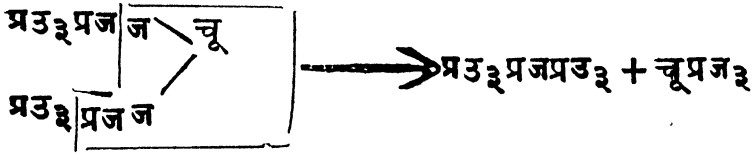
यह रीति व्यापक है और अनेक शौक्ता इस रीति से प्राप्त हा सकते हैं। इसमें केवल चूर्णातु के विभिन्न अम्लों के लवण का आवश्यकता पड़ती है।

गुण। यह रुचिकर गंधवाला तरल है जो ५६°श० पर उबलता है। इसके अनेक गुण शुक्त सुव्युद के गुणों से हैं। यह उदजन, उदश्यामिक अम्ल, और क्षारातु द्वि-शुल्वित से सकलन संयोग बनता है। उदजारल तिक्ती और उदार्जावी से यह जावि और उदाजीवा बनता है। भास्वर त्रिनीरेय की इस पर कोई क्रिया नहीं होती। इससे इसके अणु में उद्जारल का अभाव सिद्ध होता है। भास्वर पंचनीरेय से इस पर उसी प्रकार की क्रिया होती है जैसी शुक्त सुव्युद पर होती है। इससे जारक के एक परमाणु के स्थान में नीरजी के दा परमाणु प्रविष्ट करते हैं।

$$प्र_3उ_6ज + भनी_5 = प्र_3उ_6नी_2 + भजनी_3$$
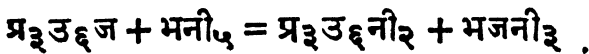
इससे सिद्ध होता है कि शुक्त सुव्युद सा इसमें भी दिबन्ध संबद्ध जारक है। इसके चूर्णातु शुक्तीय से प्राप्त करने से भी यही बात प्रमाणित होती है। अतः इसका संस्थापना सूत्र है।

```
    उ       उ
    |       |
उ—प्र—प्र—प्र—उ वा        प्रउ₃
    |   ||   |                  >प्र = ज
    उ   ज   उ              प्रउ₃
```
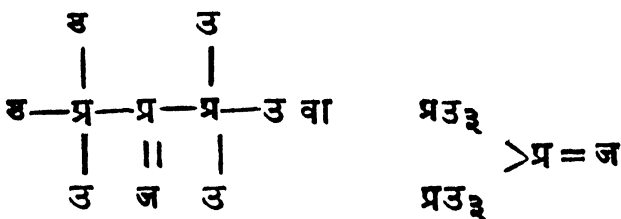
शुक्त सुव्युद और अन्य सुव्युदों से शुक्ता का भेद इस बात में है कि यह फेलिंग विलयन, रजत भूयीय के तिक्ताति विलयन और ताम्र

शुल्वीय के क्षारिय विलयन को प्रह्वासित नहीं करता। यह "शीफ" का परीक्षण भी नहीं देता।

प्रश्न

१—सुव्युद क्या है? दक्षुल सुषव से शुक्त सुव्युद कैसे प्राप्त करोगे।

२—सुव्युदों और शौक्ताओं के गुणों की तुलना करो।

३—निम्न लिखित पदार्थों का शुक्त सुव्युद और शुक्ता पर क्या क्रियाएं होती हैं।

(१) जायमान उदजन

(२) उदश्यामिक अम्ल

(३) उदजारल तिक्ती

(४) दर्शल उदाजीवी

४—कौन विशिष्ट मूल सुव्युदो और शौक्ताओं में विद्यमान है? सुव्युदों को शौक्ताओं से कैसे विभेद करोगे?

५—पुरुभाजन क्या है? वम्र सुव्युद का उदाहरण लेकर इसकी व्याख्या करो।

६—वम्र सुव्युद कैसे बनता है। इसके गुणों और उपयोगों का वर्णन करो।

७—शुक्तिक अम्ल से शुक्ता कैसे तैयार करोगे? वाणिज्य में यह कैसे प्राप्त होता है? सुषव और शुक्ता के मिश्र से शुक्ता को कैसे पृथक करोगे?

८—वम्र सुव्युद की संस्थापना कैसे प्रमाणित करोगे?

९—शुक्तसुव्युद पर (१) तिक्ताति (२) क्षारातु द्वि-शुल्वित, (३) दह विक्षार और (४) संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल की क्या क्रियाएँ होती है?

१०—किन दो संयोगों का प्र३उ६ज सूत्र है। इन दोनों को एक-दूसरे से कैसे विभेद करोगे?

अध्याय १५

स्नैहिक अम्ल

(Fatty acids)

स्नैहिक अम्ल एक सधर्म माला है जिसके प्रथम दो एकक वम्रिक और शुक्तिक अम्ल हैं। इन्हें स्नैहिक अम्ल इसलिए कहते हैं कि इनके कुछ अम्ल तैलों और स्नेहों के संघटक हैं। इनके व्यूहाणु में तत्सम्वादी सुव्युदों से जारक के एक परमाणु अधिक होते हैं। इनके सामान्य सूत्र $प_{स}उ_{२स}ज_{२}$ हैं। इन अम्लों में जो विशेषता है वह यह है कि इनमें एक-बन्धक मूल

$$—प\begin{matrix} //ज \\ \backslash जउ \end{matrix}$$

प्रांगजारल होता है जो उदजन परमाणु अथवा क्षारल मूल से सम्बद्ध होता। इनके सामान्य सूत्र

$$र—प\begin{matrix} //ज \\ \backslash जउ \end{matrix}$$

जहाँ र कोई क्षारल मूल अथवा उदजन है। इस माला के अधिक महत्व के संयोग निम्नलिखित हैं।

	सूत्र	बुदबुदांक
वम्रिक अम्ल	उपजजउ	१०१° श०
शुक्तिक अम्ल	$पउ_{३}पजजउ$	११८° श०
प्रमेदिक अम्ल	$प_{२}उ_{५}पजजउ$	१४१° श०

	सूत्र	बुदबुदांक
घृतिक अम्ल	प$_३$उ$_७$प्रजजउ	१६२° श०
तालिक अम्ल	प$_{१५}$उ$_{३१}$प्रजजउ	द्रा० ६२·६° श०
वसिक अम्ल	प$_{१७}$उ$_{३५}$प्रजजउ	द्रा० ६९·६° श०

स्नैहिक अम्लों के सामान्य गुण। ये रङ्गहीन तरल अथवा सान्द्र होते हैं। निम्न एकक तरल और उच्च एकक जैसे तालिक और वसिक अम्ल सान्द्र होते हैं। निम्न एककों में तीव्र और तिखी गन्ध और खट्टा स्वाद होता है। ये जल में विलेय और इनमें अम्लों के सामान्य गुण होते हैं। ये सब ही एक-पैठिक अम्ल हैं। पीठों से लवण और सुषवों से प्रलवण बनते हैं।

व्रमिक अम्ल, उप्रजजउ। यह अम्ल मधुमखी के डंकों और डंक से घाव करनेवाले पौधों में और मूत्र और स्वेदन में रहता है। चीटियों को जल के साथ आसवन से इसका जलीय विलयन प्राप्त होता है। इसी से इसका नाम वम्रिक (वम्र = चींटी) पड़ा है।

प्राप्ति। तीव्र निपीड में प्रांगार एक-जारेय को १२०° श० पर दह विक्षार में प्रवाहित करने से यह बनता है। इस ताप पर यह शीघ्रता से प्रचूषित होकर क्षारातु वम्रीय बनता है। क्षारातु वम्रीय को क्षारातु उदजन शुल्वीय के साथ आसवन से शुद्ध अजल अम्ल प्राप्त होता है।

प्रज + क्षजउ = उप्रजजक्ष

२—रसशाला में यह साधारणतया प्राप्त होता है मधुरव और तिग्मिक अम्ल के मिश्र को प्रायः ११०° से ११५° श० पर तपाने और आसवन करने से। यहाँ जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं वे जटिल हैं। अनेक मध्यम संयोग बनते हैं पर अन्त में तिग्मिक अम्ल विबद्ध हो वम्रिक अम्ल और प्रांगार द्वि-जारेय में परिणत होता है। मधुरव पुनः निकल आता है और अधिक तिग्मिक अम्ल के विबद्ध करने में प्रयुक्त हो सकता है।

उजजम—मजजउ = मज$_2$ + उमजजउ
तिग्मिक अम्ल

जलीय अम्ल को फिर सीस प्रांगारीय से उबाल कर सीस वम्रीय में परिणत करने और सीस वम्रीय को १००° श० पर उदजन शुल्वेय से विबद्ध करने से अजलीय वम्रिक अम्ल प्राप्त होता है।

(उमजज)$_2$ सी + उ$_2$शु = २ उमजजउ + सी शु

संपरीक्षा २९। एक वकभाण्ड लो। उसमें तापमान लगाओ। तापमान का कन्द वकभाण्ड के बुघ्न तक जाता रहे। वकभाण्ड में एक जलसंघनक जोड़ दो। मधुरव ५० धान्य और तिग्मिक अम्ल का ४५ धान्य वकभाण्ड में रखो और वकभाण्ड का प्रायः ११०°—११५° श० तक सिकता तापन पर तपाओ। इस ताप पर वम्रिक अम्ल का जलीय विलयन आसुत होगा। जब ७० से ८० घ॰ शि॰ मा॰ आसुत इकट्ठा हो जाय तब उसे सीस प्रांगारीय के साथ तब तक उबालो जब तक विलयन क्लीव न हो जाय। उष्णाही छान लो और ठण्ढा होने दो। ठण्ढे होने पर सीस वम्रीय के स्फट निकल आवेंगे। इन्हें १००° श० पर सूखा कर एक ऐसे नाल में रखो जिसके दोनों छोर खुले हों। उन छोरों को अदह से भर दो। इस नाल को अब भाष्ट्र में तपाओ। नीचले छोर को नीचे की ओर तिरछा रखकर आदाता से जोड़ दो। दूसरे छोर से नाल में शुष्क शुल्वेयित उदजन का प्रवाह प्रवाहित करो। अजलीय वम्रिक अम्ल मुक्त हो नीचे बहकर आदाता में इकट्ठा होगा। इस वम्रिक अम्ल में जल नहीं रहेगा।

गुण। वम्रिक अम्ल रङ्गहीन तरल है। इसमें तीक्ष्ण तीखी और उत्तेजक गन्ध होती है। यह प्रबल संक्षारक (corrosive) होता है। इससे चमड़े पर फोड़े पड़ जाते हैं। २०° श० पर इसका आपेक्षिक भार १·२२ है। यह ९° श० पर पिघलता और १०१° श० पर उबलता है। यह सब अनुभाग में जल, सुषव और द्वसु में विलेय होता है।

प्रतिक्रिया में यह अम्लकर होता है। और धातुक पीठों, तिक्ताति और प्रांगारिक पीठों से जो लवण बनते हैं उन्हें वम्रीय कहते हैं। सब वम्रीय थोड़ा बहुत जल में विलेय होते हैं। केवल सीस और रजत के लवण बहुत कम विलेय होते हैं। वम्रिक अम्ल और वम्रीय संकेन्द्रित शुल्वारिक अम्ल से जल और प्रांगार एक-जारेय में विबद्ध हो जाते हैं। कुछ बातों में वम्रिक अम्ल अन्य स्नैहिक अम्लों से भिन्न होता है। वम्रिक अल्म में प्रह्रासन के गुण होते हैं। अन्य अम्लों में यह गुण नहीं होता। इस गुण के कारण वम्रिक अम्ल रजत भूयीय के विलयन को प्रह्रामित कर रजत धातु का अवसाद देता है। पारदिक नीरेय को प्रह्रासित कर पारद्य नीरेय का श्वेत निस्साद अथवा पारद धातु का भूरा निक्षेप देता है। इस विशेष गुण का

कारण यह है कि इस अम्ल में वही मूल —प्र(—उ)(=ज) विद्यमान है।

जो सुव्युदों में होता है और सुव्युदों की प्रह्रासन विशेषता है।

संस्थापना। उद्-श्यामिक (hydrocyanic) अम्ल के उद्यांशन से वम्रिक अम्ल बनता और तिक्ताति निकलता है। यदि यह उद्यांशन वैसा ही होता जैसा प्रोदल श्यामेय में होता है तो इस प्रतिक्रिया को निम्नरीति से प्रदर्शित कर सकते हैं।

$$\text{उ—प्र} \equiv \text{भू} + \begin{matrix}\text{उ}_2\ \text{ज} \\ \text{उ}_2\ \text{ज}\end{matrix} \longrightarrow \text{उ—प्र}\begin{matrix}=\text{ज} \\ -\text{ज उ}\end{matrix} + \text{भू उ}_2$$
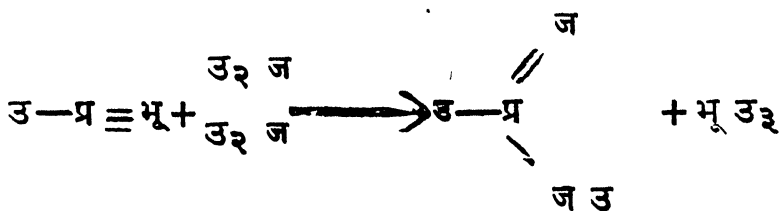
इस प्रकार हमें वम्रिक अम्ल की संस्थापना यह प्राप्त होती है।
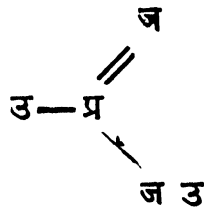
यह संस्थापना एक दूसरी रीति से भी स्थापित की जा सकती है। निरवम्रल को जब दह सर्जि से उबालते हैं तो उससे निरवम्रल विबद्ध हो वम्रिक अम्ल और दहातुनीरेय बनते हैं। हम जानते हैं कि क्षारातु उदजारेय की क्रिया से मृद्वसा के लवणजन परमाणु उदजरिल मूल से प्रतिस्थापित हो जाते हैं। अतः यहाँ निम्न प्रतिक्रियाएँ होती हैं।
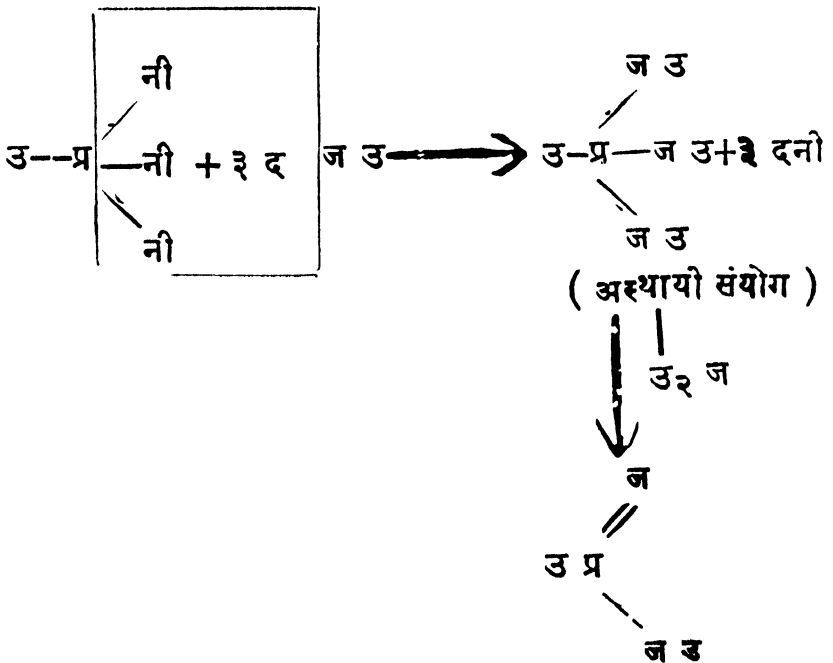
इससे सिद्ध होता है कि वम्रिक अम्ल का संरचना सूत्र निम्न है।
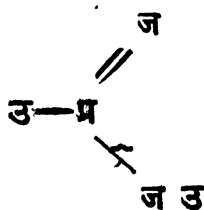
शुक्तिक अम्ल, प उ₃—प ज ज उ। यह अम्ल बहुत प्राचीन काल से सिरके के रूप ज्ञात है। स्टाल (Stahl) ने प्रायः १७०० ई० में शुद्ध रूप से इसे तैयार किया था और बर्ज़ीलियस (Berzelius) ने १८१४ ई० इस के निबन्ध को स्थापित किया था।

प्राप्ति। यह दक्षुल सुषव के जारण से अथवा प्रोद्दल श्यामेय के जलांशन से प्राप्त हो सकता है।

प उ$_3$—प उ$_2$ ज उ + ज$_2$ = प उ$_3$—प ज ज उ + उ$_2$ ज

प उ$_3$—प भू + २ उ$_2$ ज = प उ$_3$ प ज ज उ + भू उ$_3$

२. वाणिज्य का शुक्तिक अम्ल काठ के नाशक आसवन से प्राप्त काष्टासुत अम्ल से प्राप्त होता है। काष्टासुत को चूर्णक दूध से साधते हैं। इससे शुक्तिक अम्ल चूर्णातु शुक्तीय में परिणत हो जाता और वह वकभांड में रह जाता और प्रोदल सुषत्र और शुक्ता का आसवन हो वे निकल जाते हैं। चूर्णातु शुक्तीय को सूखाकर २५° श० पर सावधानी से तपाते हैं। इससे विराल और उद्यास अशुद्धताएँ विवद्ध हो जाती और 'चूर्णक का भूरा शुक्तीय' रह जाता। इसे अब ताम्र के पात्र में रखकर आवश्यक मात्रा में प्रबल उदनीरिक अम्ल डाल कर तपाते है। इससे प्रायः १० प्रतिशत शुक्तिक अम्ल का आसवन होता है। इसे अब क्षारातु प्रांगारीय से क्लीव बना विलायन को उद्वाष्पण से सूखा देते है। अब क्षारातु शुक्तीय के स्फट—प उ$_3$ प ज ज क्ष, ३ उ$_2$ ज—प्राप्त होते हैं। इन स्फटों को तपाकर उनके स्फट के जल को निकालकर अजलीय बनाकर संकेन्द्रित शुल्वारिक अम्ल डालकर आसवन करते हैं। आसुत प्रायः जल से मुक्त शुद्ध शुक्तिक अम्ल होता है और ठण्ढा करने से रंगहीन स्फट में परिणत हो जाता है। ऐसे शुक्तिक अम्ल को 'हिम्य (glacial) शुक्तिक अम्ल' कहते हैं।

३. क्षिप्र सिरका विधा। दक्षुल सुषव के मन्द विलयन के जारण से सिरका तैयार होता है। यह जारण एक किण्व के द्वारा होता है जिसे शुक्त छदकवक (mycodermi aceti) कहते है। मद्य,

यविरा (beer) इत्यादि जब वायु में खूले रहते हैं तब इसी किण्व
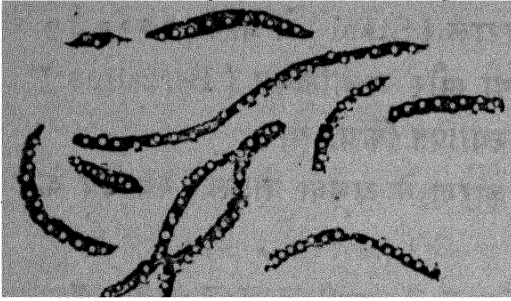
(ferment) चित्र २८ के कारण खट्टे हो जाते हैं। शुद्ध सुषव पर इसकी कोई क्रिया नहीं होती क्योंकि जीवी (organisims) की वृद्धि के लिए

(चित्र २८)

इसमें आवश्यक खाद नहीं होता। १५ प्रतिशत सुषव से अधिक विलयन पर भी इसकी कोई क्रिया नहीं होती क्योंकि सुषव की उच्च

प्रतिशतता से जीवी organisims) की वृद्धि रुक जाती है। साधारण परिस्थियों में दक्षुल सुषव का शुक्तिक अम्ल में जारण अपेक्षया मन्द होती है पर क्षिप्र सिरका विधा में इसकी गति द्रुत हो सकती है। इस विधा में ५ से ७ प्रतिशत सुषव का मन्द विलयन प्रयुक्त होता है। एक काठ
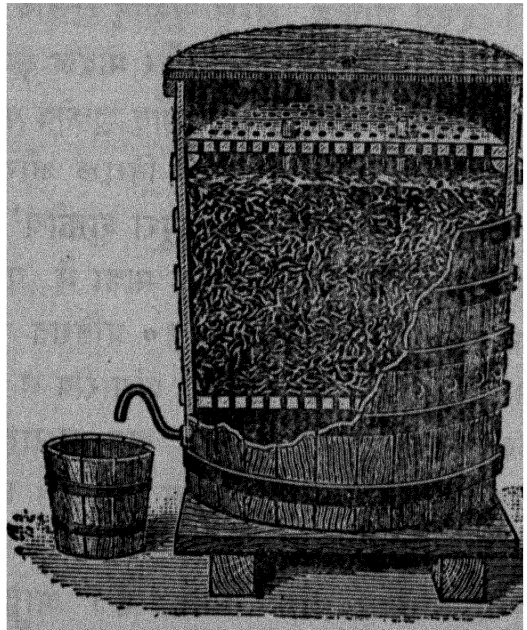
(चित्र २९)

के पीपे में चित्र २९ 'बर्च' (birch) की डालियाँ रखी होती है। ये डालियाँ दो रन्ध्री बिम्बों के बीच रहती है और इन पर सुषव का विलयन प्रवाहित होता है। पीपे के पार्श्व में छेदें होती हैं जिनसे वायु प्रविष्ट करती है।

बर्च की डालियों को सिरका में भीगाकर रखते हैं। इस सिरके

से आवश्यक किण्व प्राप्त होता है और ऊपर से प्रासव को धीरे धीरे डालते हैं। पीपे के अन्दर का ताप ३५° श० रखा जाता है क्योंकि इस ताप पर जारण अति शीघ्रता से होता है। वायु की मात्रा के प्रवाह में बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है। वायु की मात्रा उपयुक्त, न अधिक और न कम होनी चाहिए। यदि इसकी मात्रा कम है तो इससे शुक्त सुव्युद बनता है और यदि अधिक है तो इसे जारण हो प्रांगार द्वि-जारेय और जल बनते हैं। सिरके में शुक्तिक अम्ल की मात्रा १० प्रतिशत से कम रहती है। सिरके से शुक्तिक अम्ल नहीं तैयार होता क्योंकि शुक्तिक अम्ल को अशुद्धताओं से मुक्त करना कुछ कठिन है पर यदि प्रयोगशाला में शुक्तिक अम्ल प्राप्त करना चाहें तो चूर्णक दूध के साथ साधित कर चूर्णातु शुक्तीय में परिणत कर उससे शुक्तिक अम्ल उसी प्रकार प्राप्त कर सकते हैं जैसे काष्ठासुत अम्ल से।

४. आज कल वाणिज्य के लिए शुक्तिक अम्ल शुक्तलेन्य से भी प्राप्त होता है। जब शुक्तलेन्य के ६ प्रतिशत शुल्वारिक अम्ल के विलयन में जिसमें कुछ पारदिक जारेय भी है ६० से ६५° श० पर प्रवाहित करते हैं तो उससे शुक्त सुव्युद प्राप्त होता है और इसके जारण से फिर शुक्तिक अम्ल बनता है।

$$\text{प उ} \equiv \text{प उ} + \text{उ}_2 \text{ ज} = \text{प उ}_3\text{–प ज उ} \xrightarrow{\text{ज}} \text{प उ}_3\text{–प ज जउ}$$

गुण। शुक्तिक अम्ल रंगहीन तीखी गंधवाला तरल है जो ११८° पर उबलता और १६.६° श० पर रंगहीन स्फटात्मक सान्द्र में परिणत हो जाता है। इसका आपेक्षिक भार १.०५ है। यह सब अनुभाग में जल में विलेय होता है। चमड़े पर इसकी संक्षारक क्रिया होती है। वम्रिक अम्ल से यह न्यून अम्लकर होता है पर अन्य स्नैहिक अम्लों से अधिक अम्लकर। इसके लवणों को शुक्तीय कहते हैं। धातुओं और धातु के जारेयों से इसके लवण बनते हैं। ऋजु लवण जल में विलेय होते। अयस और स्फट्यातु के शुक्तीय रंजन में रंजक-स्थापक (mordant) के रूप में प्रयुक्त होते हैं। चूर्णातु

शुक्तीय से शुक्ता प्राप्त होता है। ताम्र के पैटिक शुक्तीय हरि रंगा (pigment) के रूप में व्यवहृत होता है। सुषवों के साथ मिलकर यह प्रलवण बनता है। दक्षुल सुषव के साथ यह दक्षुल शुक्तीय बनता है।

$$\text{प्र}_2\ \text{उ}_5\ \text{ज उ} + \text{प्र उ}_3\ \text{प्र ज ज उ} \rightleftharpoons \text{प्र उ}_3\ \text{प्र ज ज प्र}_2\ \text{उ}_5 + \text{उ}_2\text{ज}$$
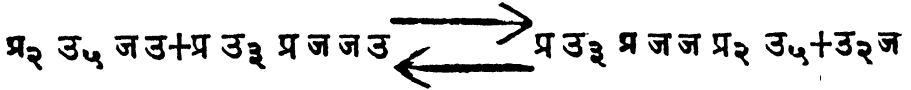
यह प्रतिक्रिया प्रतिवर्तिनी होती है। एक दिशा में उसी अवस्था में पूर्ण होती है जब सृष्ट में से किसी एक को क्रिया के क्षेत्र से हटा लिया जाय। यदि इस प्रतिक्रिया में संकेन्द्रित शुल्वारिक अम्ल अथवा उदनीरिक अम्ल वाति से प्रचूषित कर हटा लें तो पर्याप्त प्रलवण प्राप्त होगा।

शुक्तिक अम्ल पर अन्य स्नैहिक लवणों के सदृश भास्वर त्रिनीरेय अथवा भास्वर पञ्चनीरेय की भी प्रतिक्रिया होती है। इससे उदजारण मूल नीरजी के एक परमाणु से प्रतिस्थापित हो अम्ल-नीरेय बनता है।

$$\text{प्र उ}_3\ \text{प्र ज ज उ} + \text{भनी}_5 = \text{प्र उ}_3\ \text{प्र ज नी} + \text{भजनी}_3 + \text{उ नी}$$
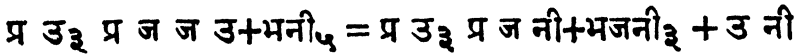
शुक्तिक अम्ल की नीरजी और दुराघ्री से भी-जंबुकी से नहीं—प्रतिक्रिया होती है और उससे नीरजी और दुराघ्री के आदेश सृष्ट बनते हैं। यहाँ प्रोदल मूल के उदजन को नीरजी और दुराघ्री प्रतिस्थापित करते हैं। यह क्रिया सूर्य-प्रकाश अथवा कुछ अन्य पदार्थों की उपस्थिति में जिन्हें वोढ़ा (carrier) कहते हैं अधिक तीव्रता से होती है। शुक्तिक अम्ल और नीरजी से एक-नीर-शुक्तिक, द्वि-नीर-शुक्तिक और त्रिनीर-शुक्तिक अम्ल प्राप्त होते हैं।

$$\text{प्र उ}_3\ \text{प्र ज ज उ} + \text{नी}_2 = \text{प्र उ}_2\ \text{नी प्र ज ज उ} + \text{उ नी}$$

एक-नीर-शुक्तिक अम्ल

$$\text{प्र उ}_2\ \text{नी प्र ज ज उ} + \text{नी}_2 = \text{प्र उ नी}_2\ \text{प्र ज ज उ} + \text{उनी}$$

द्वि-नीर-शुक्तिक अम्ल

$$\text{प्र उ नी}_2\ \text{प्र ज ज उ} + \text{नी}_2 = \text{प्र नी}_3\ \text{प्र ज ज उ} + \text{उनी}$$
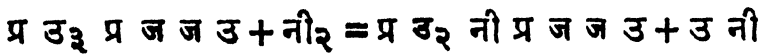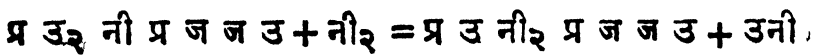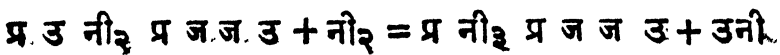
त्रि-नीर-शुक्तिक अम्ल

एक-नीर-शुक्तिक अम्ल, प उ₂ नी प ज ज उ। यह रंगहीन स्फटात्मक सान्द्र है जो ६२° श० पर पिघलता है। इससे चमड़े पर फोड़े बनते और आँखों में आँसू आती है। यह उदजार, तिक्ती और श्यामजन व्युत्पन्नों के तैयार करने में प्रयुक्त होता है।

द्वि-नीर-शुक्तिक अम्ल प उ नी₂ प ज ज उ। यह तरल है जो १९०° श० पर उबलता है। यह शुक्तिक अम्ल अथवा एक-नीर-शुक्तिक अम्ल से अधिक प्रबल अम्ल है।

त्रि-नीर-शुक्तिक अम्ल, पनी₃ प ज ज उ। यह स्फटात्मक सान्द्र है जो ५२° श० पर पिघलता है। यह द्वि-नीर-शुक्तिक, अम्ल से अधिक प्रबल अम्ल है। यह प्रोभूजिन परीक्षण में प्रतिकर्ता के रूप में प्रयुक्त होता है।

उपयोग। शुक्तिक अम्ल रसशाला में यह सामान्य प्रतिकर्ता है और सामान्य विलायक। श्वेत सीसे (white lead), धातु के शुक्तीय, प्रलवण और अनेक प्रांगारिक संयोगों के निर्माण में यह प्रयुक्त होता है। कृत्रिम कौशेय, सिनेमा के अदह पट्ट के निर्माण में भी व्यवहृत होता है।

संस्थापना। प्रोदल श्यामेय के जलांशन से शुक्तिक अम्ल और तिक्ताति बनते हैं। प्रोदल श्यामेय का संस्थापना सूत्र है।

```
      उ
      |
उ — प — प ≡ भू
      |
      उ
```
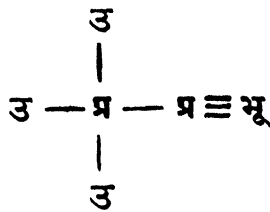
शुक्तिक अम्ल का व्यूहाणु सूत्र प₂उ₄ज₂ है। अतः इस प्रतिक्रिया को इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं।

$$प उ_3 प \equiv भू + 2 उ_2 ज = प_2 उ_4 ज_2 + भू उ_3$$
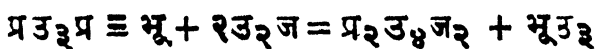
हम जानते हैं कि जब किसी संयोग का जिसमें क्षारल मूल

विद्यमान है जलांशन होता है तब क्षारल मूल पर इसका कोई असर नहीं होता। वह ज्यों का त्यों रहता है। अतः जब प्रोदल श्मामेय का जलांशन होता है तब प्रोदल मूल ज्यों का त्यों रह जाता है। अतः शुक्तिक अम्ल का सूत्र होगा।
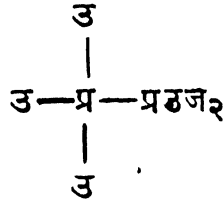
जिसमें प्रउज२' के विन्यास का हमें पता लगाना है।

शुक्तिक अम्ल पर भास्वर पञ्चनीरेय की क्रिया से एक उदजन और एक जारख के स्थान में एक नीरजी परमाणु प्रविष्ट करता है।

$$प्र_२उ_४ज_२ + भनी_५ = प्र_२उ_३जनी + उनी + भजनी_३$$
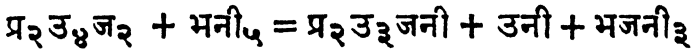
इससे ज्ञात होता है कि इसमें एक उदजारल मूल विद्यमान हैं। अतः अब हम इसका चित्र सूत्र इस प्रकार लिख सकते हैं।
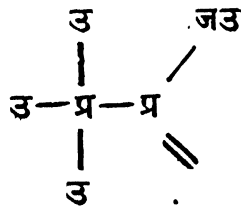
यहाँ प्रांगार के दो बन्ध मुक्त हैं और एक जारख परमाणु की इस सूत्र में कमी है। अतः एक जारक के परमाणु के जोड़ने से निम्न सूत्र प्राप्त होता है।
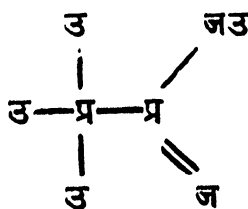
इस सूत्र की पुष्टि निम्न रीति से होती है। प्रोदल श्यामेय के

जलांशन से शुक्तिक अम्ल प्राप्त होता है। प्रोदल श्यामेय में प्रांगार के साथ त्रिबन्ध से भूयाति संयुक्त है। जलांशन से भूयाति निकल जाता और उसके स्थान में जारक प्रविष्ट करता है। इन क्रियाओं से शुक्तिक अम्ल के निम्न सूत्र प्राप्त होते हैं।
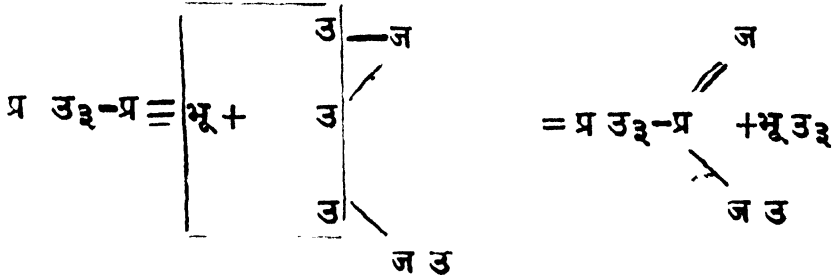
अतः शुक्तिक अम्ल का संस्थापना-सूत्र होगा।
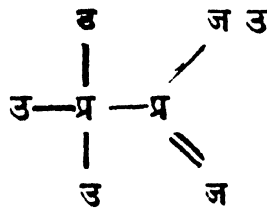
इसी प्रकार किसी स्नैहिक अम्ल का संस्थापना सूत्र होगा।

जउ
/
र—प्र
\\
ज
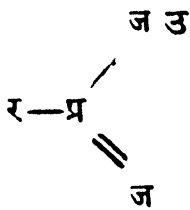
जहाँ 'र' एक क्षारल मूल है। इसमें जो मूल

जउ
/
रहता है वह —प्र
\\
ज
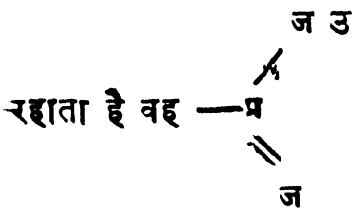
है, इसे प्रांग-जारल (carbonyl) कहते हैं। प्रांगारिक जार-अम्लों में प्रांग-जारल अवश्य रहता है। जिसमें प्रांगजारल एक है उसे एक पैठिक अम्ल, जिसमें दो है उसे द्वि-पैठिक अम्ल कहते हैं।

उच्चतर (higher) स्नैहिक अम्ल ।

प्रमेदिक (Propionic) अम्ल प्र$_3$प्र$_2$प्रजज । यह तरल है और १४०° श० पर उबलता है । यह काष्टासुत अम्ल में होता और इसकी गन्ध सड़ी होती और यह जल में विलेय होता है ।

घृतिक (Butyric) अम्ल प्रउ$_3$प्रउ$_2$प्रउ$_2$प्रजजउ । यह तरल १६२° श० पर उबलता है । यह घी में प्रलवण के रूप में रहता है । इसकी गन्ध सड़ी, जल में किञ्चिनमात्र विलेय और वाष्प में उत्पत होता है ।

वलिक (Valeric) अम्ल प्रउ$_3$ (प्रउ$_2$)$_3$ प्रजजउ । यह तरल १८६° श० पर उबलता है यह एक पौधे (valerian) के मूल में प्रलवण के रूप में पाया जाता है और वाष्प में उत्पत है ।

तालिक (Palmitic) अम्ल प्र$_{१५}$उ$_{३१}$प्रजजउ । यह मधुरीय (glyceride) के रूप में तैल और स्नेहों में रहता है । उष्ण सुषव से यह सूक्ष्माकार स्फट बनता है जो ६२·६° श० पर पिघलता है । यह जल में अविलेय, उबलते सुषव और दग्ध में सरल विलेय होता है ।

वसिक (Stearic) अम्ल प्र$_{१७}$ उ$_{३५}$ प्र ज ज उ । मधुरीय के रूप में यह तैल और स्नेह में रहता है । सुषव से पर्णक (leaflet) सा स्फट बनता जो ६६·६° श० पर पिघलता है । यह जल में अविलेय होता पर उष्ण सुषव में सरल विलेय होता है ।

इन अम्लों के अतिरिक्त स्नेह और तैलों में कुछ और अम्ल होते हैं जो एक पैठक तो हैं पर अननुबद्ध हैं अर्थात्, इनके अणु में उदजन की संख्या कम होती है । ऐसे अननुविद्ध अम्लों में दो महत्व के हैं । एक है म्रक्षिक अम्ल oleic acid , प्र$_{१७}$ उ$_{३३}$ प्र ज ज उ और दूसरा है आतसिक अम्ल (linoleicacid), प्र$_{१७}$ उ$_{३१}$ प्रजजउ

प्रश्न

१—'क्षिप्र सिरका विधा' क्या है ? इसकी क्रिया को वर्णन करो । सिरके से शुद्ध शुक्तिक अम्ल कैसे प्राप्त करोगे ?

२—किस उद्गम से और कैसे वाणिज्य का शुक्तिक अम्ल प्राप्त होता है ? शुक्तिक अम्ल के गुणों और उपयोगों का वर्णन करो।

३—स्नैहिक अम्ल क्या हैं ? शुक्तिक अम्ल का संस्थापना सूत्र कैसे स्थापित करोगे।

४—प्रांग जारल मूल एक-संयुज क्यों है ? किन बातों में वम्रिक अम्ल अन्य स्नैहिक अम्लों से विभिन्न हैं।

५—तिग्मिक अम्ल से अजल वम्रिक अम्ल कैसे तैयार करोगे ? इस अम्ल का संस्थापना सूत्र क्या है और उसे कैसे प्रमाणित करोगे ?

६—स्नैहिक अम्लों के सामान्य गुणों का वर्णन करो। इन्हें स्नैहिक अम्ल क्यों कहते हैं ? इस माला के तीन अम्लों के नाम और संस्थापना सूत्र लिखो।

७—दक्षुल सुषव से शुक्तिक अम्ल कैसे प्राप्त करोगे ? शुक्तिक अम्ल पर (१) भास्वर पञ्चनीरेय, (२) दक्षुल सुषव की क्या क्रियाएँ होती हैं ?

८—क्या होता है जब (१) प्रोदल श्यामेय का जलांशन होता है।
(२) १२०° श० पर दह विक्षार के विलयन में प्रांगार एक-जारेय प्रवाहित होता है,
(३) क्षारातु वम्रीय संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल से तपाया जाता है,
(४) वम्रिक अम्ल रजत भूयीय के विलयन से उष्ण किया जाता है ?

अध्याय १६

अम्ल व्युत्पन्न

(Acid derivatives)

गत अध्यायों में हम देख चूके हैं कि एकोदिक सुषवों में उद-

```
                                         ज
                                        //
जारल-जउ-मूल और स्नैहिक अम्लों में प्रांगजारल,—प्र        मूल
                                        \
                                         ज उ
```
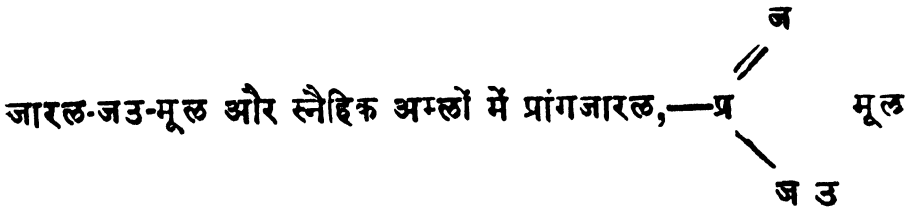
प्रत्येक दशा में किसी क्षारल मूल के साथ संबद्ध होता है। इसीसे एकोदिक सुषवों के सामान्य सूत्र र ज उ और स्नैहिक अम्लों के

```
      ज
     //
र—प्र        हैं।
     \
      ज उ
```
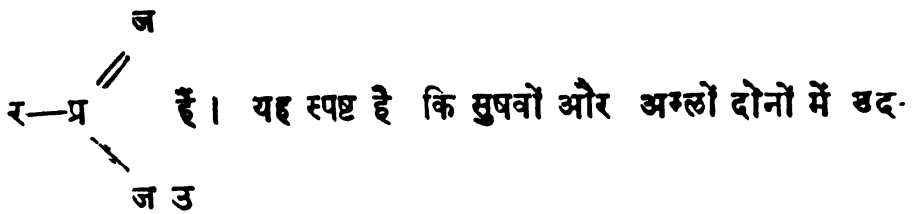
यह स्पष्ट है कि सुषवों और अम्लों दोनों में उदजारल मूल—(ज उ) होते हैं। इस उदजारल के नीरजी, दुरागी, तिक्तो और श्यामजन इत्यादि एक-संयुत मूलों के द्वारा प्रति स्थापित होने से सुषवों से सुषविक व्युत्पन्न और अम्लों से अम्ल व्युत्पन्न बनते हैं। जैसे सुषवों के एक-संयुत मूल को क्षारल कहते हैं वैसे ही अम्लों के एक-संयुत मूल र—प्र = ज को अम्लल करते हैं। प्र$_{२}$ उ$_{५}$ को क्षारल और प्र उ$_{३}$—प्र = ज को अम्लल, शुक्ल कहते हैं।

शुक्ल नीरेय, प्र उ$_{३}$ प्र ज नी। शुक्तिक अम्ल पर भास्वर त्रिनीरेय की क्रिया से शुक्ल नीरेय प्राप्त होता है।

३ प्र उ$_{३}$ प्र ज ज उ + भनी$_{३}$ = ३ प्र उ$_{३}$ प्र ज नी + उ$_{३}$ भ ज$_{३}$
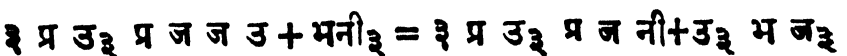
संपरीक्षा ३०। एक आसवन पलिघ में विवरी निवाप, संघनक और आदाता जोड़ो। आदाता में एक विक्षार-चूर्णक नाल जोड़ दो जो प्रतिक्रिया में उत्पन्न उदनीरिक अम्ल को प्रचूषित कर ले। पलिघ में ५० घान्य हिम्य शुक्तिक अम्ल डालो और पलिघ को ठण्ढे जल में डूबा दो। अब विवरी निवाप से ४० घान्य भास्वर त्रिनीरेय धीरे धीरे डालो। ४०°-५०° श० तक पलिघ को धीरे धीरे तपाओ और तपाना बन्द कर दो जब उदनीरिक अम्ल का निकलना मन्द पड़ जाय। अब सृष्ट को जल-तापन पर आसवन करो और ५०°-६०° श० के बीच आसुत को अलग इकट्ठा करो। यह आसुत शुक्ल नीरेय का है।

गुण। शुक्ल नीरेय रंगहीन, प्रबल उन्दचूष और धूमन द्रव है जो ५१° श० पर उबलता है। यह अति प्रतिक्रिआशील है। आर्द्र वायु में धूम देता है और जल से शीघ्रता से जलांशन हो शुक्तिक अम्ल और उदनीरिक अम्ल बनता है।

$$प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ \boxed{नी + उ}\ ज\ उ = प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ ज\ उ + उ\ नी$$
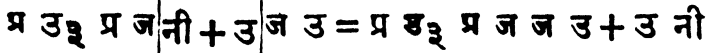
तिक्तातित के साथ यह शीघ्रता से प्रतिक्रियित हो शुक्त तिक्तेय और उदनीरिक अम्ल बनता है।

$$प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ \boxed{नी + उ}\ भू\ उ_2 = \underset{\text{शुक्त तिक्तेय}}{प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ भू\ उ_2} + उनी$$
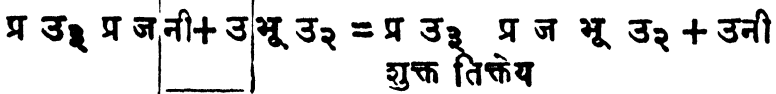
सुषव के साथ इसकी क्रिया होती है और उससे प्रलवण—दक्षुल शुक्तीय—बनता है।

$$प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ \boxed{नी + उ}\ ज\ प्र_2\ उ_5 = \underset{\text{दक्षुल शुक्तीय}}{प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ ज\ प्र_2\ उ_5} + उनी$$
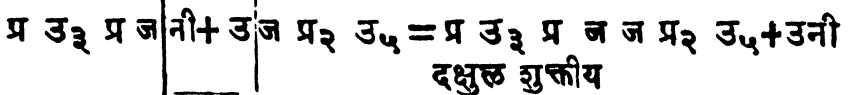
शुक्तिक अम्ल अथवा क्षारातु शुक्तीय के साथ यह शुक्तिय अजलेय और क्षारातु नीरेय बनता है।

प उ$_{३}$ प ज नी+क्ष ज प ज प उ$_{३}$ = प उ$_{३}$ प ज–ज–प ज प
शुक्तिय अजलेय उ$_{३}$ + क्षनी

प्रह्लाघन से यह शुक्त सुव्युद बनता है।

$$\text{प उ}_{३}\text{ प ज नी} \xrightarrow{\text{२ उ}} \text{प उ}_{३}\text{ प उ ज + वनी}$$

उपर्युक्त प्रतिक्रियाओं से स्पष्ट है कि शुक्तल नीरेय बड़ी सरलता से जल, तिक्ताति और सुषव से आक्रान्त होता है। इससे शुक्तल नीरेय की नीरजी अन्य पदार्थों के उदजन से मिलकर उदजन नीरेय बनती और शुक्तल मूल एक-संयुत मूल से मिलकर नया संयोग बनता है। ये नये संयोग अम्ल व्युत्पन्न है क्योंकि इनमें अम्लल मूल, शुक्तल रहता है।

यदि हम शुक्तल नीरेय के गुणों को तत्संवादी क्षारल (सुषविक) व्युत्पन्न, प्रोदल नीरेय–से तुलना करे तो उनमें बहुत भेद पावेंगे। शुक्तल सयोग अति क्रियाशील होते हैं। क्षारल संयोग उतने क्रियाशील नहीं होते। शुक्तल नीरेय पर जल, तिक्ताति और सुषव की क्रिया शीघ्रता से होती है पर प्रोदल नीरेय पर इनकी क्रिया इतनी शीघ्रता से नहीं होती। जल का प्रोदल नीरेय पर कोई विशेष क्रिया नहीं होती, तिक्ताति की विशेष परिस्थितियों में ही क्रिया होती है और सुषव की कोई क्रिया होती ही नहीं। सारांश यह है कि अम्लल व्युत्पन्न अति क्रियाशील और क्षारल व्युत्पन्न अपेक्षया कम क्रियाशील होते हैं।

शुक्तल नीरेय की उन सब संयोगों पर क्रियाएँ होती हैं जिनमें उदजारल मूल विद्यमान है। अतः प्रांगार रसायन में उदजारल मूल के उपलम्भन में प्रतिकर्ता के रूप में यह प्रयुक्त होता है। इससे केवल उसकी उपस्थिति ही नहीं जानी जाती वरन् उनकी संख्या का भी निश्चयन होता है। भास्वर पञ्च-नीरेय से यह अच्छा प्रतिकर्ता है।

शुक्तिक अजलेय (Acetic anhydride) $\begin{matrix} \text{प्रउ}_3\text{प्रज} \\ \text{प्रउ}_3\text{प्रज} \end{matrix} > \text{ज}$ ।

१—द्रवित क्षारातु शुक्तिय और शुक्तल नीरेय के मिश्र के आसवन से जो आसुत १३०°–१४०°श० के बीच प्राप्त होता है वह शुक्तिक अजलेय का है ।

$$\text{प्रउ}_3\text{प्रज}\boxed{\text{नी} + \text{क्ष}}\text{जजप्र प्रउ}_3 = \begin{matrix} \text{प्रउ}_3\text{प्रज} \\ \text{प्रउ}_3\text{प्रज} \end{matrix} > \text{ज} + \text{क्षनी}$$
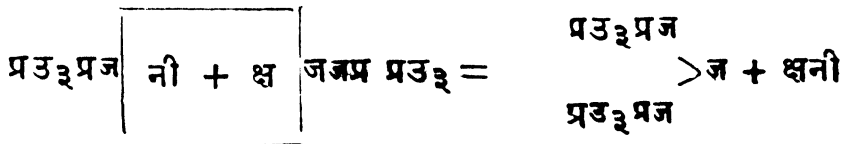
२—यह शुक्तिक अम्ल से भास्वर पञ्चजारेय के द्वारा जल-तत्व के निकाल लेने से भी प्राप्त होता है । इससे इसकी मात्रा अल्प ही प्राप्त होती है ।

$$\text{२ प्रउ}_3\text{प्रजजउ} + \text{भ}_2\text{ज}_5 = (\text{प्रउ}_3\text{प्रज})_2\text{ज} + \text{२उभज}_3$$

गुण । शुक्तिक अजलेय चञ्चल, तीखी गंधवाला तरल है जो १३७°श० पर उबलता है । इसका आपेक्षक भार १·०७ है और आर्द्र वायु में शुक्तल नीरेय के सदृश धूम नहीं देता । जल से यह अमिश्रणीय (immiscible) स्तर बनता है पर धीरे धीरे शुक्तिक अम्ल बनने से वह प्रविलीन हो जाता है ।

$$\begin{matrix} \text{प्रउ}_3\text{प्रज} \\ \text{प्रउ}_3\text{प्रज} \end{matrix} > \text{ज} + \text{उ}_2\text{ज} = \text{२प्रउ}_3\text{प्रजजउ}$$

सुषव के साथ यह प्रलवण और शुक्तिक अम्ल बनता है ।

$$\begin{matrix} \text{प्रउ}_3\text{प्रज} \\ \text{प्रउ}_3\text{प्रज} \end{matrix} > \text{ज} + \text{प्र}_2\text{उ}_5\text{जउ} = \underset{\text{दक्षुल शुक्तीय}}{\text{प्रउ}_3\text{प्रजजप्र}_2\text{उ}_5} + \text{प्रउ}_3\text{प्रजजउ}$$
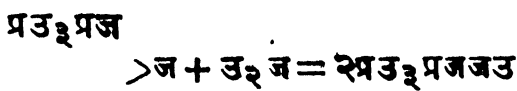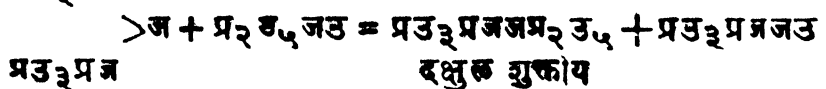
तिक्ताति से यह शुक्त तिक्तेय और शुक्तिक अम्ल बनता है । यह शुक्तिक अम्ल फिर तिक्ताति से युक्त हो तिक्तातु शुक्तीय बनता है ।

प्रउ$_3$प्रज

> ज + उभूउ$_2$ = प्रउप्रजभूउ$_2$ + प्रउ$_3$प्रजजउ

प्रउ$_3$प्रज

प्रउ$_3$प्रजजउ + भूउ$_3$ = प्रउ$_3$प्रजजभूउ$_4$

शुक्तिक अजलेय का शुक्तिक अम्ल से वैसा ही संबंध है जैसा दक्षुल दक्षु का दक्षुल सुषव से संबंध है।
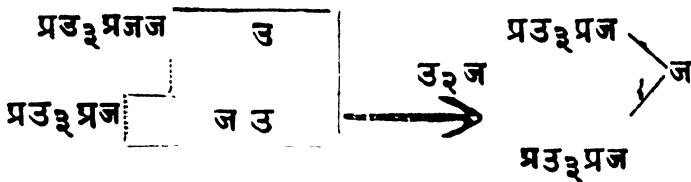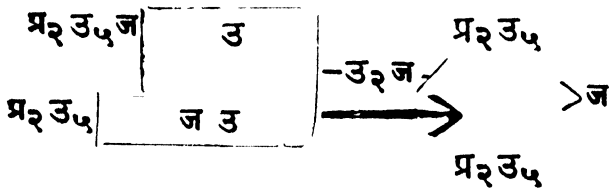
अम्लका व्युत्पन्न होने के कारण शुक्तिक अम्ल क्रियाशील है। जल, तिक्ताति और दक्षुल सुषव की इस पर क्रियाएँ होती है। दक्षु सुषव का व्युत्पन्न है। इस कारण जल, तिक्ताति और दक्षुल सुषव की इस पर कोई क्रिया नहीं होती। शुक्तिक अजलेय भी प्रांगार रसायन में उदजारल मूल के उपलम्भन और निश्चयन में प्रयुक्त होता है।

शुक्त तिक्तेय (Acetamide) प्रउ$_3$प्रजभूउ$_2$। शुक्त तिक्तेय शुक्तल नीरेय अथवा शुक्तिक अजलेय पर तिक्ताति की क्रिया से प्राप्त होता है। अधिक सुभीते से यह तिक्तातु शुक्तीय के तपाने—अच्छा होता है निपीड में तपाने-से प्राप्त होता है। तिक्तातु शुक्तीय से जल का एक व्यूहाणु निकल कर शुक्त तिक्तेय बनता है।

प्रउ$_3$प्रजजभूउ$_4$ = प्रउ$_3$प्रजभूउ$_2$ + उ$_2$ज

संपरीक्षा ३१। तिक्तातु शुक्तीय के ५० धान्य को एक चीनमृत्स्ना पात्री में पिघलाकर आसवन पलिघमें ढाल दो। पलिघ में एक वायु संधानक और तापमान जोड़ दो। सिकता—तापन पर अब सावधानी से तपाओ। तिक्ताति, जल और शुक्तिक अम्ल की पर्याप्त मात्रा का

आसवन होगा। फिर ताप १८०°श० पर उठ जायगा और अब जो आसुत होगा वह सान्द्र हो जायगा और प्रधानतया शुक्त तिक्तेय का होगा। तरल आसुत को पलिघ में लौटा दो और फिर आसवन करो। जब शुक्त तिक्तेय की पर्याप्त मात्रा इकट्ठी हो जाय, पाव पत्र के स्तर में सुखाओ।

सामान्य निपीड पर आसवन करने से शुक्त तिक्तेय की मात्रा अल्प प्राप्त होती है। २००°श० पर समुद्रित नाल में निपीड में ४ से ५ घण्टा तपाने और आसवन करने से अच्छी मात्रा प्राप्त होती है।

गुण। शुक्त तिक्तेय रंगहीन स्फटात्मक सान्द्र है जो ८१° श० पर पिघलता है। इसमें एक विशिष्ट गंध-चूहे सी होती है पर यह गंध सावधानी से शुद्ध करने पर चली जाती है।

यह जल में विलेय और विलयन क्लीब होता है। खनिज अम्लों से यह लवण बनता है पर ये लवण अस्थायी होते और जल में प्रविलीन होनेपर पूर्ण रूप से जलांशित हो जाते हैं।

क्षारक अथवा प्रबल खनिज अम्लों के साथ उबालने से शुक्त तिक्तेय जलांशित हो शुक्तिक अम्ल और तिक्ताति बनता है जो फिर परस्पर सयुक्त हो तिक्तातु शुक्तीय बनते है।

$$\text{प्र}\text{उ}_3\text{प्रजभूउ}_2 + 2\text{उ}_2\text{ज} = \text{प्र}\text{उ}_3\text{प्रजजउ} + \text{भूउ}_3$$

शुक्तिक अम्ल

$$\text{प्र}\text{उ}_3\text{प्रजजउ} + \text{भूउ}_3 = \text{प्र}\text{उ}_3\text{प्रजजभूउ}_4$$
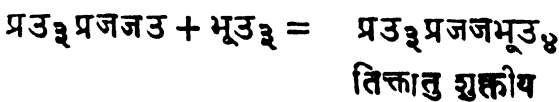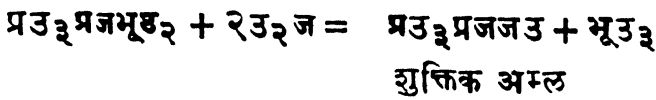
तिक्तातु शुक्तीय

जब शुक्त तिक्तेय भास्वर पंच-जारेय सदृश विजलीयन कर्त्ता से तपाया जाता है तब यह प्रोदल श्यामेय में परिणत हो जाता है। प्रोदल श्यामेय के अपूर्ण जलांशन से शुक्त तिक्तेय प्राप्त होता है।

$$\text{प्र}\text{उ}_3\text{प्रजभूउ}_2 \rightleftharpoons \text{प्र}\text{उ}_3\text{प्रभू} + \text{उ}_2\text{ज}$$
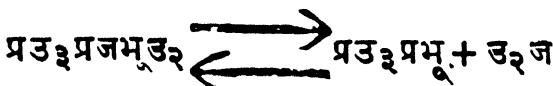
हम देखते हैं कि प्रोदल श्यामेय, शुक्त तिक्तेय और तिक्तातु

शुक्तीय में घना संबंध है और ये एक दूसरे में सरलता से परिणत हो जातें हैं ।

प्रोद्ल श्यामेय के अपूर्ण जलांशन से शुक्त तिक्तेय और पूर्ण जलांशन से तिक्तातु शुक्तीय प्राप्त होते हैं ।

$प्रउ_३प्रभू + उ_२ज = प्रउ_३प्रजभूउ_२$

$प्रउ_३प्रभूउ_२ + उ_२ज = प्रउ_३प्रजजभूउ_४$

तिक्तातु शुक्तीय के तपाने से शुक्त तिक्तेय और प्रबल विजलीयन कर्त्ता से प्रोद्ल श्यामेय में परिणत हो जाता है । ये क्रियाएँ निम्न लिखित चित्र से सरलता से प्रदर्शित की जा सकती हैं ।
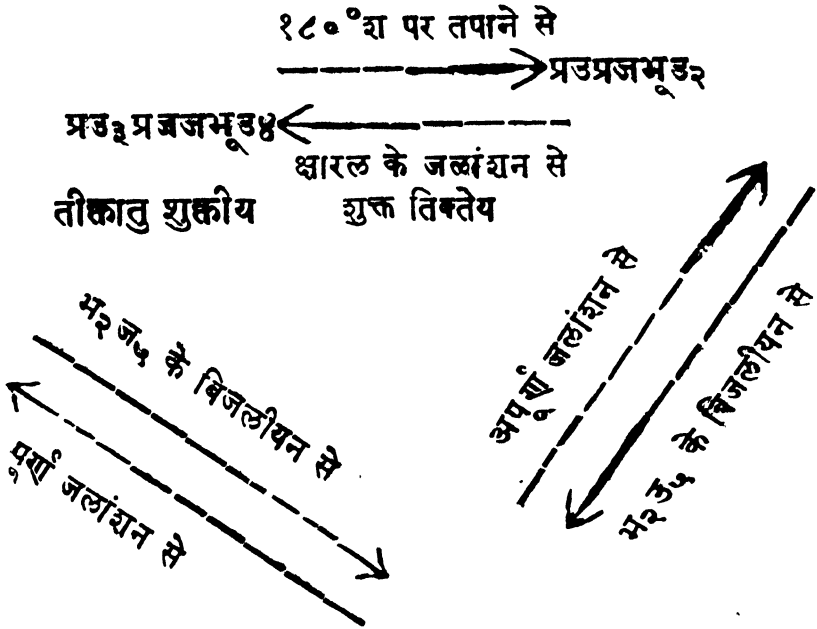
दह सर्जि की उपस्थिति में दुराघ्री की क्रिया से शुक्त तिक्तेय प्रोद्ल तिक्ती में परिणत हो जाता है जिसमें शुक्त तिक्तेय से प्रांगार

परमाणु की संख्या कम होती है। यह प्रतिक्रिया जटिल है। इसमें पहले शुक्त-दुरा-तिक्तेय का मध्य संयोग बनता जो दह सर्जि की क्रिया से प्रोदल तिक्ती में परिणत हो जाता है।

$$प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ भू\ उ_2 + दु = प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ भू\ उ\ दु + उदु$$

शुक्त-दुरा-तिक्तेय

$$प्र\ उ_3\ प्र\ उ\ भू\ उदु + उ\ द\ ज\ उ = प्र\ उ_3\ प्र\ भू + द\ दु + द_2\ प्र\ उ_3 + उ_2\ ज$$
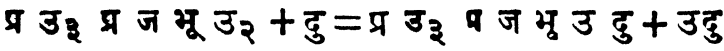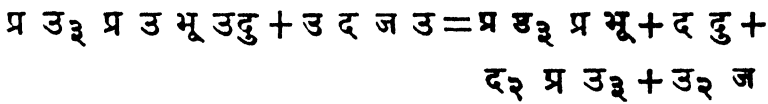
यह प्रतिक्रिया महत्व की है क्योंकि इससे तिक्तेय तिक्ती में परिणत हो जाता है और इस प्रकार एक प्रांगार परमाणु कम हो जाता है। यह एक रीति है जिससे किसी माला के उच्च एकक से निम्न एकक प्राप्त होते हैं। इस रीति से दक्षुल सुषव प्रोदल सुषव में परिणत हो जाता है। इस प्रतिक्रिया के विभिन्न क्रम निम्नलिखित हैं।

$$\underset{\text{दक्षुल सुषव}}{प्र_2\ उ_5\ ज\ उ} \xrightarrow{ज} \underset{\text{शुक्तिक अम्ल}}{प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ ज\ उ} \xrightarrow{भू\ उ_3} \underset{\text{तिक्तातु शुक्तीय}}{प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ ज\ भू\ उ_4}$$

↓ ताप से

$$\underset{\text{प्रोदल सुषव}}{प्र\ उ_3\ ज\ उ} \xleftarrow{उ\ भू\ ज_2} \underset{\text{प्रोदल तिक्ती}}{प्र\ उ_3\ भू\ उ_2} \xleftarrow{दु + द\ ज\ उ} \underset{\text{शुक्त तिक्तेय}}{प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ भू\ उ_2}$$
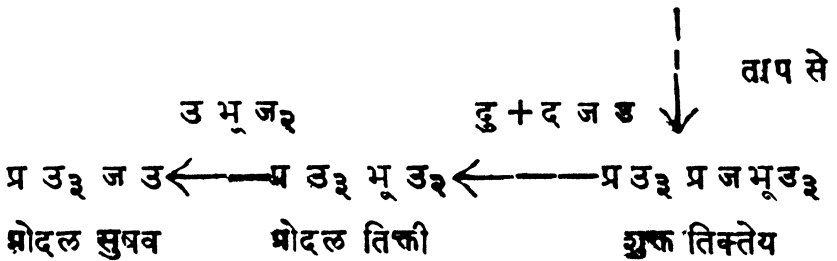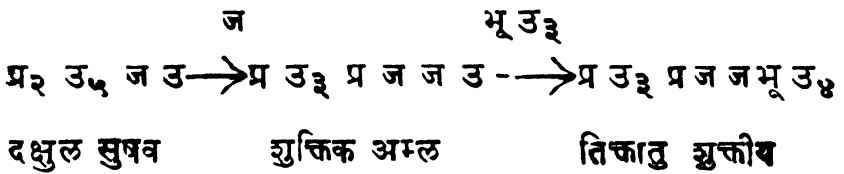
एक दूसरी रीति से भी यह क्रिया सम्पादित हो सकती है।

$$प्र_2\ उ_5\ ज\ उ \xrightarrow{\text{विक्षार चूर्णक}} \underset{\text{शुक्तिक अम्ल}}{प्र\ उ_3\ प्र\ ज\ ज\ उ} \longrightarrow$$
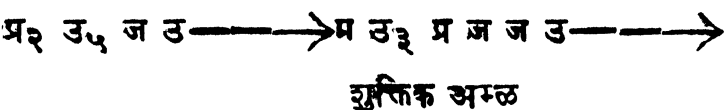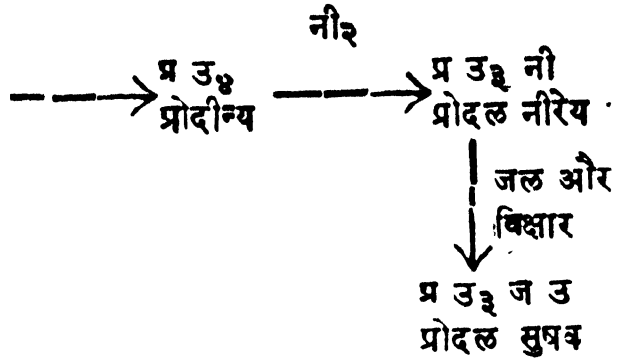
निम्न एकक से ऊच्च एकक इस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं

भा+जं ; क्ष प्र भू

प्र उ$_3$ ज उ ———→ प्र उ$_3$ जं ———→ प्र उ$_3$ प्र भू

प्रोदल सुषव प्रोदल जंवेय प्रोदल श्यामेय

↓ ४उ

प्र उ$_3$ प्र उ$_2$ भू उ$_2$

दक्षुल तिक्ती

↓ उ भू ज$_2$

प्र उ$_3$ प्र उ$_2$ ज उ

दक्षुल सुषव

इसकी दूसरी विधि यह है—

भा + जं ; क्ष

प्र उ$_3$ ज उ प्र उ$_3$ जं प्र उ$_3$—प्र उ$_2$

प्रोदल सुषव प्रोदल जंवेय दक्षिवय

नी$_2$; जल और विक्षर

———→ प्र उ$_3$—प्र उ$_2$ नी ———→ प्र उ$_2$ प्र उ$_2$ ज उ

दक्षुल नीरेय दक्षुल सुषव
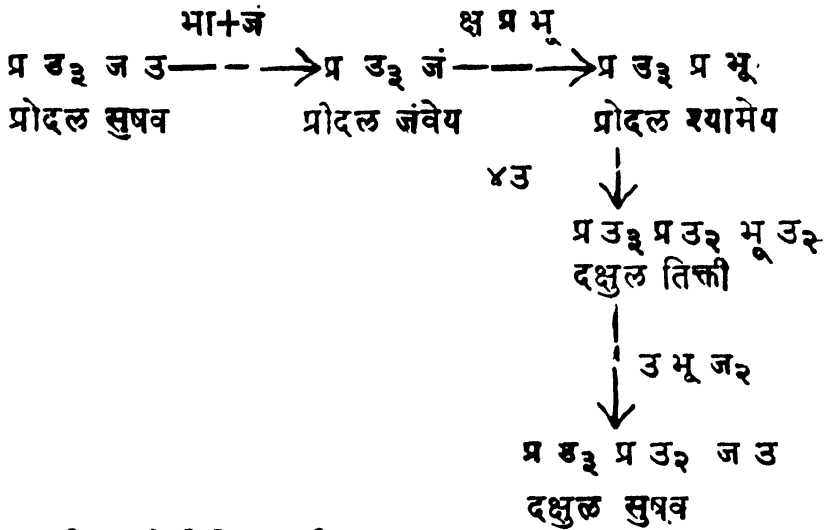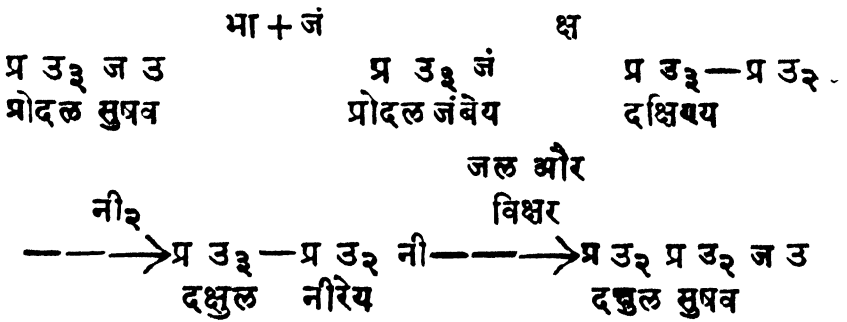
दक्षुल शुक्तीय (Ethyl acetate) प्र उ$_3$ प्र ज ज प्र$_2$उ$_5$ । प्रांगारिक संयोगों के उस वर्ग का यह एक आदर्श संयोग है जिस वर्ग को हम प्रलवण कहते हैं। प्रलवण वास्तव में प्रांगारिक अम्लों और

आसुत को एक बड़े चञ्चुकी में रखकर क्षारातु प्रांगारीय के मन्द विलयन से साधन करो और बराबर हिलाते जाव। इससे शुक्तिक अम्ल निकल जायगा और प्रलवण अब अम्लकर प्रतिक्रिया नहीं देगा। अब मिश्र को विवरी निपात में रखकर नीचे का जलीय स्तर हटा लो। अब प्रलवण को चूर्णातु नीरेय के प्रबल विलयन (१०० घ॰ शि॰ मा॰ के जल में १०० धान्य) से साधने से सुषव निकल जाता है। चूर्णातु नीरेय का नीचला स्तर यथासम्भव पूर्ण रूप से निकाल लो। अब प्रलवण को रातभर चूर्णातु नीरेय के साथ सूखने को छोड़ दो! फिर एक शुष्क आसवन पलिघ में छानकर आसवन करो। ७१° और ७६° श॰ के बीच जो प्रभाग आसवन होगा वह शुद्ध दक्षुल शुक्तीय का होगा।

गुण। दक्षुल शुक्तीय रुचिकर गंधवाला तरल है जो ७७·५°श॰ पर उबलता है। इसका आपेक्षिक भार ०·९ है। जल में किञ्चिन्मात्र विलेय है। पर जल से धीरे धीरे विबद्ध होता है। यह सुषव और दक्षु में विलेय है। जलीय दह क्षारकों से अधिक शीघ्रता से विबद्ध होता है। और भी शीघ्रता से विबद्ध होता है यदि जलीय दह क्षारक के स्थान में सुषविक क्षारक प्रयुक्त हो।

$$प्रउ_३प्रज|जप्र_२उ_५ + उ|जउ = प्रउ_३प्रजजउ + प्र_२उ_५जउ$$
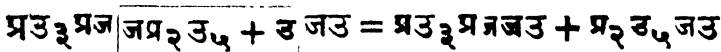
उपर्युक्त प्रतिक्रिया में जल के एक व्यूहाणु से प्रलवण विबद्ध हो दक्षुल सुषव और शुक्तिक अम्ल बनते है। इस विधा को जलांशन अथवा उद्यांशन कहते हैं। जल के एक अथवा एक से अधिक व्यूहाणुओं के योग से संयोगों का जो विबन्धन होता है उस विधा को जलांशन कहते है। जलांशन केवल जल से हो सकता है पर जल से जलांशन की गति बड़ी मन्द होती है। जलांशन अधिक तीव्र होता है क्षारक से क्योंकि क्षारक से प्रतिक्रिया में बना अम्ल क्षारक लवण के रूप में निकल कर प्रतिवर्तिनी क्रिया को रोक देता है।

तिक्ताति की क्रिया से दक्षुल शुक्तीय शुक्त तिक्तेय और दक्षुल सुषव में परिणत हो जाता है।

$$\text{प्रउ}_3\text{प्रज}\ \boxed{\text{जप्र}_2\text{उ}_5 + \text{उ}}\ \text{भूउ}_2 = \text{प्रउ}_3\text{प्रजभूउ}_2 + \text{प्र}_2\text{उ}_5\text{जउ}$$

निम्न गुणों से प्रलवणों को समाजिक स्नैहिक लवणों से विभेद कर सकते हैं ।

प्रलवण	अम्ल
सामान्य सूत्र । $\text{प्र}_{\text{स}}\text{उ}_{2\text{स}}\text{ज}_2$	सामान्य सूत्र । $\text{प्र}_{\text{स}}\text{उ}_{2\text{स}}\text{ज}_2$
१–इनमें सुगंध होती है ।	१–निम्न संयोगो में तीखी गंध और उच्च संयोग गंधहीन होते हैं ।
२–जल में अविलेय अथवा किञ्चिन्मात्र विलेय होते है ।	२–जलमें विलेय अथवा अल्प विलेय होते हैं ।
३–शेवल पर कोई क्रिया नहीं होती	३–जलीय विलयन अम्ल कर होते और नीलेशेवल को रक्त कर देते है ।
४–क्षारक के मन्द विलयन में ठण्ढे में अविलेय होते हैं । तपाने से जलांशन के कारण क्षारक लवण और सुषव में परिणत होने के कारण प्रविलीन हो जाते है । आसवन से सुषव को आसव कर आसुत में उनका परीक्षण कर सकते है । अवशिष्ट क्षारकर लवण मे अम्ल को पृथक कर उसको पहचान सकते हैं ।	४–क्षारक के मन्द विलयन से ठण्ढे में भी विलेय होते हैं और इससे स्नैतिक अम्लों के क्षारक लवण बनते है ।

उपयोग। दक्षुल शुक्तीय सुगन्धित द्रव्यों और भैषज्य में और विलायक के रूप में प्रयुक्त होता है। प्रांगार रसायन में एक बहु मूल्य संश्लेषन-कर्त्ता (synthetic agent) दक्षुल शुक्त शुक्तीय (ethyl aceto-acetate) के निर्माण में यह व्यवहृत होता है।

कुछ अन्य प्रलवणो में भी सौरभ होता है। इस कारण वे कृत्रिम सुगंध के निर्माण में प्रचुरता से प्रयुक्त होते हैं। दक्षुल घृतीय अनानास के सुगंध, स-मंडल-शुक्तीय नासपाती के सुगध, और दक्षुल स-बलीय सेव के सुगंध के लिए प्रयुक्त होते हैं। स्नेह और सिक्थ अधिकांश उच्चतर स्नैतिक अम्लों के प्रलवण होते हैं।

प्रश्न

१—अम्ल व्युत्पन्न क्या हैं ? ऐसे दो व्युत्पन्नों का नाम लो। और उनकी प्राप्ति और गुणों का वर्णन करो।

२—शुक्तल नीरेय को कैसे प्रस्तुत करोगे ? इस के गुणों का प्रोद्‌ल नीरेय के गुणों से तुलना करो।

३—अधिक महत्व के क्षारल व्युत्पन्न के गुणों का अम्ल व्युत्पन्न के गुणों से तुलना करो।

४—शुक्तिक अम्ल से शुक्तिक अजलेय कैसे तैयार करोगे ? इसके गुणों का द्विदक्षुल दक्षु के गुणों से तुलना करो।

५—शुक्त तिक्तेय की प्राप्ति और गुणों का वर्णन करो। शुक्त तिक्तेय पर (१) मन्द क्षारक (२) भास्वर पञ्चजारेय (३) दह सर्जि और दुराघ्री की क्या क्रियाएँ होती है ?

६—स्नैहिक अम्लों और प्रलवणों की सभाजता की व्याख्या करो।

७—तुमको एक संयोग दिया जाता है जिसका निबन्धन $प्र_४ उ_८ ज_२$ है। इस सूत्र के कितने संयोग हो सकते हैं। इन संयोगो की प्रकृति का कैसे निश्चयन करोगे ?

८—दक्षुल शुक्तीय को कैसे तैयार करोगे ? इसके गुणों और उपयोगों का वर्णन करो।

९—प्रोदल श्यामेय, शुक्त तिक्तेय और तिक्तातु शुक्तीय के परस्पर संबंध का उल्लेख करो।

१०—(१) प्रोदल सुषव के दक्षुल सुषव में और (२) दक्षुल सुषव के प्रोदल सुषव में परिवर्तन की रीतियों का वर्णन करो।

११—समीकारों के द्वारा शुक्ल नीरेय के (१) जल से (२) दक्षुल सुषव से (३) तिक्ताति से और (४) क्षारातु शुक्तीय से व्यवहार का वर्णन करो।

१२—अम्ल को प्रलवण से कैसे विभेद करोगे ?

अध्याय १७

तैल, स्नेह, स्वफेन और मधुरव

प्राकृतिक तैल साधारणतया तीन वर्गों में विभक्त हैं। (१) खनिज तैल। ये मृत्तैल के रूप में पृथ्वी-स्तर में पाये जाते हैं और घोंघे (shells) के नाशक आसवन से प्राप्त होते हैं। ये उदांगारों के मिश्र हैं। (२) उत्पत तैल जो उत्पत होते और पौधों के वाष्प आसवन से प्राप्त होते हैं। इनमें प्रलवण और सरलेन्य (terpenes) रहते हैं। (३) स्थायी तैल जो उद्भिद और प्राणी उद्गमों से प्राप्त होते हैं। ये अनुत्पत होते हैं और इनमें स्नैहिक अम्लों से सुषव संबद्ध होते हैं।

स्थायी तैल और स्नेह पौधों के बीजों और फलों और प्राणी तन्तुओं में होते हैं। वे संचित खाद्य का कार्य करते हैं। उद्भिद तैल, जैसे अलसी के तैल, रेंड़ी, बिनौले और चीनीया बादाम इत्यादि के तैल-बीजों को निपीड में दलने से निस्सारित होते हैं। अवशिष्ट भाग को तेल-खली कहते हैं और चूँकि इसमें अब भी स्नैहिक पदार्थ और प्रोभूजिन (proteins) रहते हैं यह पशुओं के खाद्य में प्रयुक्त होती है। रेंड़ी की खली खाद के लिए प्रयुक्त होती हैं। जान्तव तैल और स्नेह जैसे भेड़ की चर्बी गाय की चर्बी और मछली के तैल तन्तुओं को उष्ण जल में तपाने से प्राप्त होते हैं। इससे पिघला हुआ स्नेह ऊपर उठता है और निकाल लिया जाता है। इस आम सृष्ट (product) को छानकर रंग, गंध और अन्य अशुद्धताओं के दूर करने के लिए इसे रसायनतः शुद्ध करते हैं।

तैलों और स्नेहों की संरचना। तैल और स्नेह प्रलवण वर्ग के पदार्थ हैं। ये मधुरव नामक त्र्योदिक सुषव और उच्चतर स्नैहिक

अम्लों और कुछ इससे संबंधित अनतुविद्ध अम्लों के प्रलवणों के मिश्र है। मधुरव के प्रलवणों को मधुरल प्रलवण अथवा मधुरेय कहते हैं। मधुरव में तीन उदजारल मूल होते हैं और इसका सूत्र है

प्र उ$_२$ ज उ
|
प्र उ ज उ   अतः यह एक, दो, वा तीन अम्ल मूलकों से संवद्ध
|
प्र उ$_२$ ज उ

हो क्रमशः एक—, द्वि— और त्रि— मधुरेय बन सकता है। शुक्तिक अम्ल से यह निम्न लिखित तीन मधुरेय बनता है।

प्र उ$_२$ ज उ   प्र उ$_२$ ज उ   प्र उ$_२$ ज प्र ज प्र उ$_३$ प्र उ$_२$ ज प्र ज प्र उ$_३$
| | | |
प्र उ ज उ ⟶ प्र उ ज उ ⟶ प्र उ ज उ ⟶ प्र उ—ज प्र ज प्र उ$_३$
| | | |
प्र उ$_२$ ज उ   प्र उ$_२$ ज प्र ज प्र उ$_३$ प्र उ$_२$ ज—प्र ज प्र उ$_२$ प्र उ$_२$ ज प्र ज प्र उ$_३$

मधुरव   मधुरल एक-शुक्तीय   मधुरल द्वि-शुक्तीय   मधुरल त्रिशुक्तीय

वा   वा   वा

एक-शुक्ति   द्वि-शुक्ति   त्रि-शुक्ति

(Mono-acetin)   (Diacetin)   (Triacetin)

तैल और स्नेह उच्चतर अम्लों के त्रिमधुरेय हैं। स्नैहिक अम्ल जो इनमें रहते हैं वे साधारणतया वसिक प्र$_{१७}$ उ$_{३५}$ प्र ज जउ और तालिक अम्ल प्र$_{१५}$ उ$_{३१}$ प्र ज ज उ होते हैं। ये दोनों अम्ल और उनके मधुरेय, त्रि-वसि और त्रि-तालि, साधारणताप पर सान्द्र होते हैं। वसि और तालि के अतिरिक्त तैलों और स्नेहों में त्रिप्रक्षि-एक अनतुविद्ध अम्ल, प्रक्षिक अम्ल प्र$_{१७}$ उ$_{३३}$ प्र ज ज उ, का मधुरेय भी रहता है। यह मधुरेय साधारण ताप पर तरल होता है और इसका तत्संवादी अम्ल भी तरल होता है।

प्र$_{१७}$ उ$_{३५}$ प्र ज ज—प्र उ$_{२}$ प्र$_{१५}$ उ$_{३१}$ प्र ज ज—प्र उ$_{२}$

| |

प्र$_{१७}$ उ$_{३५}$ प्र ज ज—प्र उ   प्र$_{१५}$ उ$_{३१}$ प्र ज ज—प्र उ

| |

प्र$_{१७}$ उ$_{३५}$ प्र ज ज—प्र उ$_{२}$ प्र$_{१५}$ उ$_{३१}$ प्र ज ज—प्र उ$_{२}$

(Stearin)   (Palmitin)

वसि वा   तालि व

मधुरल वसीय   मधुरल तालीय

प्र$_{१७}$ उ$_{३३}$ प्र ज ज—प्र उ$_{२}$

|

प्र$_{१७}$ उ$_{३३}$ प्र ज ज—प्र उ

|

प्र$_{१७}$ उ$_{३३}$ प्र ज ज—प्र उ$_{२}$

(Olein)

म्रक्षि वा

मधुरल म्रक्षीय

स्नेहो में वसि और तालि का आधिक्य होता है। इससे ये साधारण तापपर सान्द्र वा अर्ध-सान्द्र होते हैं। तैलों में म्रक्षि का आधिक्य होता है जिससे साधारण तापपर यह तरल होता है।

रसायनतः तैलों और स्नेहों में विशेष भेद नहीं होता। दोनों ही उच्च स्नैहिक अम्लों और अननुविद्ध अम्लों के मधुरेय हैं।

खनिज तैलों और उद्भिद और जान्तव तैलों और स्नेहों में बहुत भेद हैं। इनकी संरचना और गुण विभिन्न हैं। खनिज तैल मृद्वसा माला के भिन्न उदांगारों के मिश्र हैं और इस कारण इनमें जारक नहीं होता। उद्भिद् और जान्तव तैल स्नेह प्रलवण वर्ग के संयोगों के मिश्र है जिनका जारक सारभूत संघटक है। उद्भिद तैल खाद्य है, खनिज तेलों का खाद्यमूल कुछ नहीं होता। उद्भिद तैल और स्नेह प्रलवण होने के कारण जलीय वा सुषविक क्षारक से सरलता से

जलांशित हो जाते हैं। खनिज तैल उदांगार होने के कारण इन प्रतिकर्त्ताओं से प्रभावित नहीं होते।

उच्च व्यूहाणु भारवाले स्नैहिक अम्लों और उच्चतर व्यूहाणु भार-वाले एकोदिक सुषवों के प्रलवण सिक्थ (wax) होते हैं। मधुमक्खी सिक्थ में प्रधानतः मधु-सिक्थिल (myricyl) सुषव (प्र$_{३०}$ उ$_{६१}$ ज उ) का तालीय और जनंगिरवता (spermaceti) विभिन्न सुषव के तालीय और तालसिक्थ सिक्थकिक (प्र$_{२५}$ उ$_{५१}$ प्र ज ज उ) अम्ल के मधुसिक्थिल प्रलवण हैं।

तैल और स्नेहों के गुण। रसायनतः शुद्ध तैल और स्नेह को रंग, स्वाद और गन्ध हीन होना चाहिए पर प्राकृतिक तैल और स्नेह साधारणतया रंगीन और उनमें स्पष्ट गन्ध और स्वाद होता है। वे जल में अविलेय पर सुषव में किञ्चिनमात्र विलेय और दक्षु और निरवम्रल में शीघ्र विलेय होते हैं। रसानिक संयोगों के मिश्र होने के कारण उनका द्रवांक वा बुदबुदांक निश्चित नहीं होता। ३००° श० के ऊपर तपाने से वे विबद्ध हो जाते हैं। वे जल से हल्के होते हैं और वाष्प में अनुत्पत।

तैल और स्नेह क्लीब पदार्थ हैं। सान्द्र तैल और स्नेह में अननु-बिद्धत्ता अत्यल्प होती है पर तरलों में अननुबद्धत्ता अधिक होती है इससे वे वायु से जारण प्रचूषित करते हैं। इस गुण के कारण तैलों को तीन वर्गों में विभक्त किया है। १. शोषण तैल २. अर्ध-शोषण तैल और ३. ऊ-शोषण तैल। अलसी के तैल सदृश शोषण तैल लेपी (paint) और लाक्षी में प्रयुक्त होते हैं। कुछ परिस्थितियों में शोषण तैल बड़ी शीघ्रता से जारक का प्रचूषण करके सान्द्र में परिणत हो जाते हैं। अर्ध-शोषण तैलों में यह गुण अल्प होता और ऊ-शोषण तैलों में अत्यल्प ही होता है।

तैलों और स्नेहों का बड़ा महत्व का गुण कुछ प्रतिकर्त्ताओं से जलांशन होना है। यह जलांशन अधिन्तप्त वाष्प, क्षारकों, अम्लों और कुछ किण्वों के द्वारा तत्संवादी अम्लों और सुषवो में होता है।

तैलों और स्नेहों के क्षारक द्वारा इस जलांशन को जिससे अम्लों के क्षारक लवण और मधुरव बनते हैं स्वफेनकरण (saponification) कहते हैं। यह स्वफेनकरण विस्तृत अर्थ में किसी प्रलवण के अम्ल और सुषव में जलांशन के लिए भी प्रयुक्त होता है।

अधितप्त वाष्प अथवा क्षारक से यदि तैलों के वसीय और तालीय को जलांशित किया जाय तो इससे स्नैहिक अम्ल अथवा उनके क्षारक लवण बनते और मधुरव प्राप्त होता है। स्नैहिक अम्ल सिक्थ-वर्त के निर्माण और क्षारक लवण स्वफेन (साबुन) बनाने में प्रयुक्त होते हैं। स्वफेन केवल तैलों और स्नेहों में विद्यमान अम्लों के दहातु अथवा क्षारातु के लवण हैं। स्वफेनकरण के बाद जो 'मीठा जल' रह जाता है उसके उद्वाष्पण और वाष्प आसवन से मधुरव प्राप्त होता है। निम्न समीकार से मधुरल तालीय का जलांशन स्पष्ट हो जाता है।

प$_{15}$ उ$_{31}$ प्र ज ज—प्रउ$_{2}$ उ ज उ

|

प$_{15}$ उ$_{31}$ प्र ज ज—प्रउ + उ ज उ ⟶ ३ प$_{15}$ उ$_{31}$ प्रजजउ

| + प्र उ$_{2}$ ज उ

प$_{15}$ उ$_{31}$ प्र ज ज—प्रउ$_{2}$ उ ज उ   प्र उ ज उ प्र उ$_{2}$ ज उ
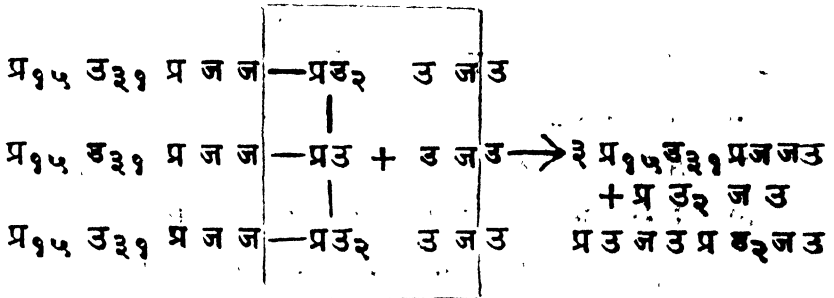
यदि क्षारक का प्रयोग हुआ है तो उससे स्वफेन बनता है।

प$_{15}$ उ$_{31}$ प्र ज ज—प्र उ$_{2}$ उ ज द

|

प$_{15}$ उ$_{31}$ प्र ज ज—प्र उ + उ ज द ⟶ ३ प$_{15}$ उ$_{31}$ प्र ज ज द

| + प्र उ$_{2}$ ज उ प्र उ

प$_{15}$ उ$_{31}$ प्र ज ज—प्रउ$_{2}$ उ ज द   ज उ प्र उ$_{2}$ ज उ
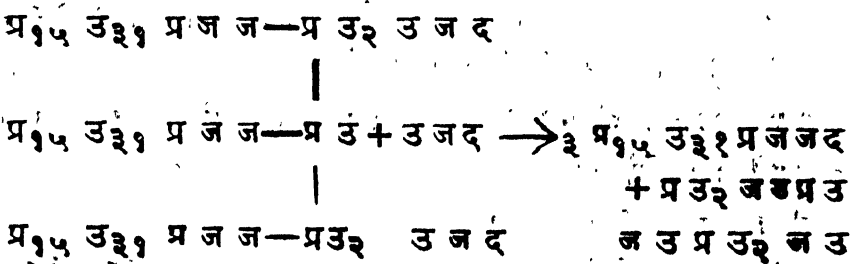
तैल और स्नेहों में विद्यमान वसीय और तालीय इसी प्रकार विबद्ध होते हैं। स्वफेन के बनाने में दह विक्षार या दह सर्जि सदा प्रयुक्त होता है। स्वफेन लघु होने और जल में कठिनता से विलेय

होने के कारण पिंड के रूप में ऊपर तलपर आ जाते हैं। पिंड को दबाकर उससे जल निकाल कर उसे स्वफेन के लिये प्रयुक्त करते हैं। स्वफेन के निर्माण में स्नेह वा तैल को आवश्यक मात्रा क्षारक के साथ मिलाकर उबालते हैं। इससे जलांशन पूर्ण हो जाता है। उसमें फिर सामान्य लवण डालते हैं जिससे स्वफेन का क्षारातु लवण पृथक् हो जाता है।

संपरीक्षा ३३—स्वफेनकी प्राप्ति। दह विक्षारका ३२ धान्य लेकर जलके प्रायः १५० घ॰ शि॰ मा॰ में प्रविलीन कर हलका विलयन बनाओ। गड़ी के तेल के २०० धान्य को गरम कर तरल बनाओ। अब क्षारातु उदजारेय विलयन को तेल में थोड़ा थोड़ा डालकर बराबर हिलाते हुए सब क्षारक को डालदो। आधे घण्टे तक विलयन को तपाओ और बराबर हिलाते रहो जिससे प्रतिक्रिया पूर्ण होजाय।

अब विलयन को विबरी निवाप में रखकर नीचले स्तरको निकाल लो। नीचले स्तर में मधुरव और कुछ क्षारक रहता है। अब स्वफेन को चञ्चुकी में रखकर थोड़ा सामान्य लवण का प्रबल विलयन डालकर तपाओ और फिर ठण्ढा होने को छोड़ दो। ठण्ढा होनेपर साबुन का पिंड तलपर तैरता पाया जायगा।

कठोर स्वफेन क्षारातु का लवण होता है और मृदु स्वफेन दहातु का लवण होता है। कैस्टाइल साबुन जैतून के तेल से बनता है। समुद्री साबुन जो लवण जलसे भी झाग देता है गड़ी के तेल से बनता है। धोनेवाले साबुन में उद्ग्रयास और अन्य निर्मलकरण (detergent) पदार्थ मिले रहते है। स्वफेन का निर्मलकरण गुन इस कारण है कि स्वफेन में जो बहुत थोड़ा मुक्त क्षारक रहता है वह तल से लिपट अल्प स्नेह को प्रविलीन कर शेष को पायस कर देता हैं। इससे वस्त्र के तन्तुओं से मैल निकल कर स्वफेन में आकर दूर हो जाती है।

तैलों का उदजनीभवन (Hydrogenation)। तैलों में कुछ अनतुविद्ध अम्लों के मधुरेय होते है जो सामान्य तापपर तरल होते हैं। इनपर उदजन की कोई क्रिया नहीं होती। उदजन इनसे प्रचूषित

नहीं होता पर विशेष परस्थितियों में उदजन प्रचूषित हो जाता है। रूपक के सूक्ष्म क्षोद जो आवेजक का काम करता है की उपस्थिति में अननुविद्ध मधुरेय पर्याप्त मात्रा में उदजन को प्रचूषित कर लेता है। इस प्रचूषण से तरल मधुरेय सान्द्र वा अर्ध सान्द्र मधुरेय में परिणत हो जाते है। इससे तैल उदजनीभूत हो कठोर हो जाता है।

इस विधा को तैल और स्नेह का उदजनीभवन अथवा कठोर भवन कहते हैं। इस प्रकार तेलों को सान्द्र व अर्ध-सान्द्र बनाकर इसको वनस्पति सृष्ट जैसे गड़ी के तैल से कोकोजेम, बिनौले के तैल से कोटोजम, और स्वफेन और सिक्थवती के निर्माण में प्रयुक्त करते हैं।

उपयोग। तैल और स्नेह प्रमुख खाद्य है। मारगेरीन, कोकोजेम, कोटोजेम, दालदा कठोर किये हुए तैल है और घी के स्थान में प्रयुक्त ह ते हैं। शोषण तैल, रगलेप और लाक्षी और तैल वस्त्रों के निर्माण में प्रयुक्त होता है। तैल और स्नेह से स्वफेन, मधुरी और वासेक अम्ल तैयार होते है।

मधुरव, प्रउ$_२$जउ प्रउजउ प्रउ$_२$जउ। प्रोदल और दक्षुल सुषव के व्यूहाणु में केवल एक उदजारल मूल होता है पर और भी सुषव हैं जिनके व्यूहाणु में एक से अधिक उदजारल मूल होते है। दक्षुलेन्य-मधुव द्व्यदिक सुषव है। बहु-उदिक-सुषवों में सबसे महत्व का संयोग मधुरव है। यह त्र्यदिक सुषव है। इसका संस्थापना सूत्र निम्न-लिखित है।

मधुरव का आविष्कार शीलद्वारा १७७९ ई० में हुआ था उन्होंने जैतून के तेल से इसे प्राप्त किया था। पीछे मालूम हुआ कि

सब तैलो और स्नेहों का यह सामान्य संघटक है। शर्करा के किण्वन में इसकी अल्पमात्रा बनती है।

साधारणतया तैलों और स्नेहों के जलांशन व स्वफेनकरण से यह प्राप्त होता है। अनेक साधनों से अधितप्त वाष्प वा दाह क्षारक वा जलांशक विभेदेद (lipase) किण्वन से यह जलांशन कार्यान्वित हो सकता है। स्वफेन और सिक्थवर्ती के निर्माण में यह उपसृष्ट के रुप में प्राप्त होता है। स्वफेन निर्माण में अविकृत क्षार (spent lye) प्राप्त होता है। इसे अशुद्धताओं से मुक्त कर अपूर्ण शून्यक में उद्वाष्पण द्वारा संकेन्द्रित करते हैं। संकेन्द्रण में वाष्पनल के द्वारा तपाते है। शून्यक में इसलिये तपाते है कि इससे निम्न ताप परही उद्वाष्पण होता है और इससे मधुरव विबद्ध नहीं होता। अन्त में वाष्पतप्त शून्यक भाजन (pan) में न्यून निपीड पर इसका आसवन करते है।

गुण। मधुरव स्वच्छ आलग मीठा तरल है। यह २९०°श० पर कुछ विबन्धन के साथ पिघलता है। न्यून निपीड में विना विबन्धन यह आसवन करता है। १५°श० पर इसका आपेक्षिक भार १·२६ है। यह प्रवल उन्दचूष है। इसी कारण ग्लाय (gloy) और प्रतिलिपि मसी इत्यादि में व्यवहृत होता है। यह जल और सुषव में सब अनुभाग में मिश्रणीय है। पर दग्ध में अविलेय हैं।

तपाने से तिखी गंधवाला तरल-उग्रगन्धिन (acrolein) नामक अननुविद्ध बुब्युद में विबद्ध हो जाता है। यह विबन्धन संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल वा द्वारातु उदजन शुल्बीय से अधिक शीघ्रता से होता है।

$$प्र_३उ_५(ज उ)_३ = प्र_२उ_३ प्र उज + २उ_२ज$$

उग्रगन्धिन
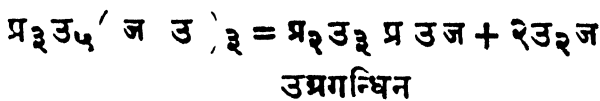
प्रांगारिक और अप्रांगारिक अम्लों से यह तीन प्रकार का प्रलवण बनता है। प्रांगारिक प्रलवणों को मधुरेय कहते है। भूयिक अम्ल से

मधुरव मधुरल त्रिभूयीय बनता है। इस संयोग को साधारणतया

प्रउ₂जभूज₂
|
प्रउजभूज₂
|
प्रउ₂जभूज₂

भूय-मधुरी कहते है और अभिस्फोट (dynamite), रज्जुस्फोट (cordite) इत्यादि उत्स्फोटों के निर्माण में प्रयुक्त होता है। भूय-मधुरी अशुद्ध नाम है क्योंकि वास्तव में यह भूय-संयोग नहीं है। यह एक भूयीय है।

उदजम्बुकिक अम्ल वा जंबुकी और भास्वर से मधुरव प्रहसित होकर लाघुणल जंबेय, स-प्रमेल जंबेय और प्रमेदलयेन (propylene) बनता है। यह प्रतिक्रिया ताप और उदजंबुकिक अम्ल के संकेन्द्रण पर निर्भर करती है। मधुरव के तिग्मिक अम्ल के साथ तपाने से वम्रिक अम्ल वा लाघुणल सुषव प्राप्त होता है।

मधुरव के जारण से अनेक सृष्ट बनते है। इनमें मधुरव के सुव्युद, प्रउ₂जउप्रजउप्रउज द्वि-उदजार-शुक्ता प्रउ₂जउ प्रजप्रउ₂जउ, मधुरवक अम्ल प्रउ₂जउप्रउजउप्रजजउ, न्यासवायिक अम्ल उजजप्रप्रउ (जउ) प्रजजउ, प्रमुख हैं।

उपयोग। मधुरव अनेक प्रांगारिक और अप्रांगारिक पदार्थों के लिए एक उपयोगी विलायक है। यह एक प्रबल उत्स्फोट, भूय-मधुरी, के निर्माण में और अनेक प्रांगारिक संयोगों जैसे वम्रिक अम्ल, लाघुणल सुषव (allyl alcohol) इत्यादि की प्राप्ति में प्रयुक्त होता है। यह जूते की स्याही, प्रतिलिपि स्याही, (gloy) इत्यादि, और भैषज में और संरक्षण में अधिकता से उपयुक्त होता है।

प्रश्न

१—तैलों और स्नेहों की संस्थापना पर एक छोटी टिप्पणी लिखो सामान्य तैलों और स्नेहों में साधारणतया कौन अम्ल होते है।

२—स्वफेन क्या है ? स्वफेन के एक नमूने को गड़ी के तेल से कैसे प्राप्त करोगे ? स्वफेन में साफ करने का गुण क्यों होता है।

३—तैलों और स्नेहो के रसायन पर एक छोटी टिप्पणी लिखो।

४—मधुरव क्या है ? तैल वा स्नेह से इसे कैसे प्राप्त करोगे ?

५—मधुरव पर (१) भूयिक अम्ल। (२) उदजंबुक्कि अम्ल। तिमिक अम्ल और (४) शुल्वारिक अम्ल की क्या कियाएँ होती है ? मधुरव की सस्थापना कैसे स्थापित करोगे ?

६—किन बातो में उद्भिद तैल खनिज तैल से भिन्न होते हैं ? बताओ क्यों खनिज तैलो से स्वफेन नहीं बन सकता।

७—स्वफेनकरण क्या है ? स्वफेनकरण और जलांशन में क्या भेद है ?

अध्याय १८

द्वि-पैठिक अम्ल

हम देख चुके हैं कि प्रांगारिक अम्लों में प्रांगजारल — प (जउ, =ज) मूल होता है। यदि किसी संयोग में एक ही प्रांगजारल मूल है तो इसे एक-पैठिक अम्ल, दो है तो उसे द्वि-पैठिक अम्ल, तीन है तो उसे त्रै-पैठिक अम्ल इत्यादि इत्यादि कहते हैं। सरलतम द्वि-पैठिक अम्ल प्रांगारिक अम्ल है। इसका संस्थापना सूत्र है
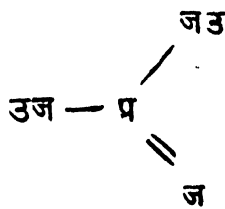
जिससे ज्ञात होता है कि इसमें एक ही प्रांगजारल मूल है। पर यह द्वि-पैठिक अम्ल इस कारण है कि प्रांगजारल मूल के साथ एक और उदजारल मूल जोड़ा हुआ है। इससे यह दो प्रांगजारल का काम करता है।

प्रांगारिक अम्ल (Carbonic acid) प = ज (ऊपर जउ, नीचे जउ)। यह अस्थायी संयोग है। अस्थायी होने का कारण यह है कि एक ही प्रांगार परमाणु से दो उदजारल मूल सम्बद्ध है। ऐसे संयोग अस्थायी होते हैं।

और उनसे जल निकल जाता है। प्रांगारिक अम्ल से भी जल निकल कर प्रांगार द्वि-जारेय मुक्त होता है।

$$\text{प्र}{=}\text{ज}\,(\text{जउ})_2 \longrightarrow \text{प्रज}_2 + \text{उ}_2\text{ज}$$
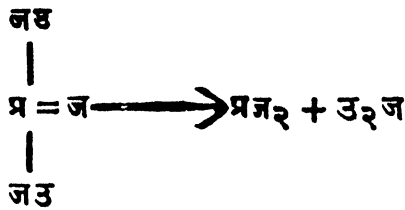
प्रांगारिक अम्ल शुद्ध रूप में प्राप्त नहीं हो सका है। जब प्रांगार द्विजारेय जल में प्रविलीन होता है तब विलयन में कुछ अम्लकर गुण आ जाता है और वह नील शेवल को दुर्बल रक्त कर देता है। इसके जलीय विलयन में अस्थायी प्रांगारिक अम्ल के होने का प्रमाण मिलता है।

प्रांगारिक अम्ल के धात्वीय लवणों को प्रांगारीय कहते हैं। प्रांगारीय और प्रलवण स्थायी संयोग है और शुद्ध रूप में प्राप्त हो सकते हैं। प्रांगारिक अम्ल का दक्षुल प्रलवण दक्षुल जम्बेयपर रजत प्रांगारीय की क्रिया से प्राप्त होता है।
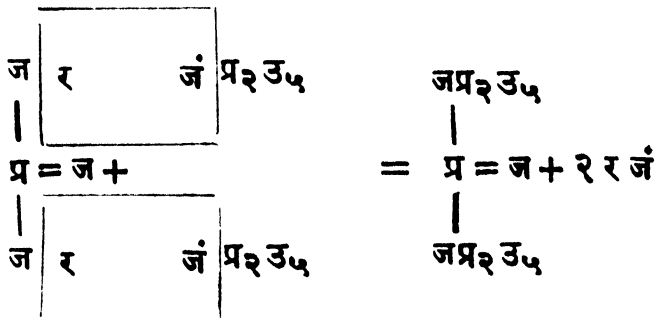
रजत प्रांगारीय दक्षुल प्रांगारीय

प्रांगारल नीरेय (Carbonyl chloride) प्र ज नी_2। जब प्रांगार एक-जारेय और नीरजी को सूर्य-प्रकाशमें रखते हैं विशेषत: आवेजक के रूप में क्षिप्र अंगार (active carbon) की उपस्थिति में तो इससे प्रांगारिक अम्ल का अम्ल-नीरेय, प्रांगारल नीरेय अथवा भाजवाति (phosgene) प्राप्त होती है। यह विषाक्त होता है और

इसमें तीखी और दमघुटनेवाली गन्ध होती है। अन्य अम्लनीरेय के सदृश ही इसका व्यवहार होता है और आर्द्र वायु में धूम्र देता और उदनीरिक अम्ल और प्रांगार द्विजारेय में परिणत हो जाता है।

=प्रज$_2$ + उ$_2$ज + २उनी।
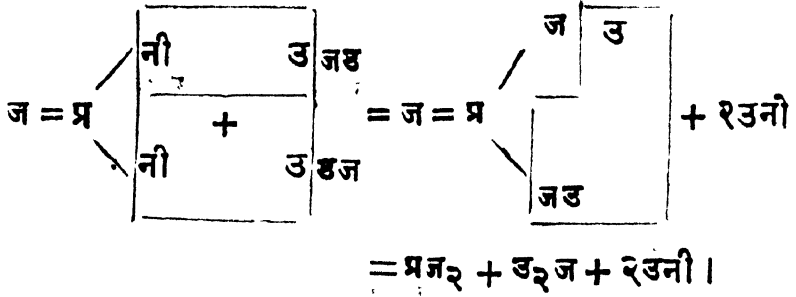
सुषव के साथ प्रतिक्रिया से यह प्रलवण बनता और तिक्ताति के साथ मिह बनता है। इसके व्यवहार से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि प्रांगारल नीरेय प्रांगारिक अम्ल का अम्ल-नीरेय है और जल, सुषव और तिक्ताति के साथ वैसी ही प्रतिक्रिया देता है जैसी शुक्ल नीरेय देता है।

मिह प्रांगतिक्तेय, (Urea, Carbamide) प्रज $\left\langle \begin{matrix} भूउ_2 \\ भूउ_2 \end{matrix} \right.$ ।
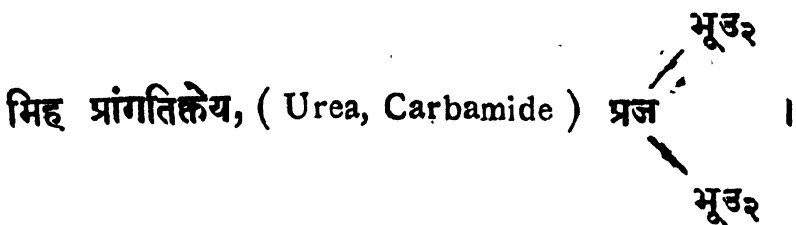
यह प्रांगारिक अम्ल का तिक्तेय है। तिक्तेय अम्लोंके व्युत्पन्न हैं और अम्लों के उदजारल मूल के तिक्ती मूल से प्रतिस्थापित समझे जाते हैं। जिस प्रकार शुक्तिक अम्ल के उदजारलके तिक्ती द्वारा प्रतिस्थापन से शुक्ततिक्तेय प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रांगारिक अम्ल
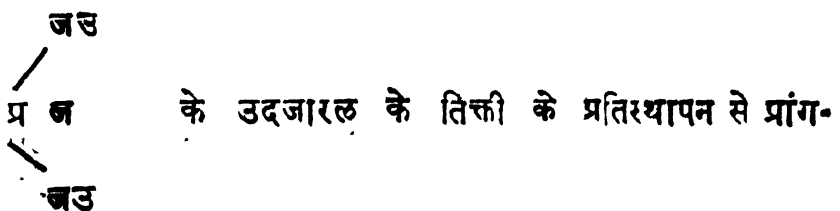
प्र ज $\left\langle \begin{matrix} जउ \\ जउ \end{matrix} \right.$ के उदजारल के तिक्ती के प्रतिस्थापन से प्रांग-तिक्तेय प्राप्त होता है।
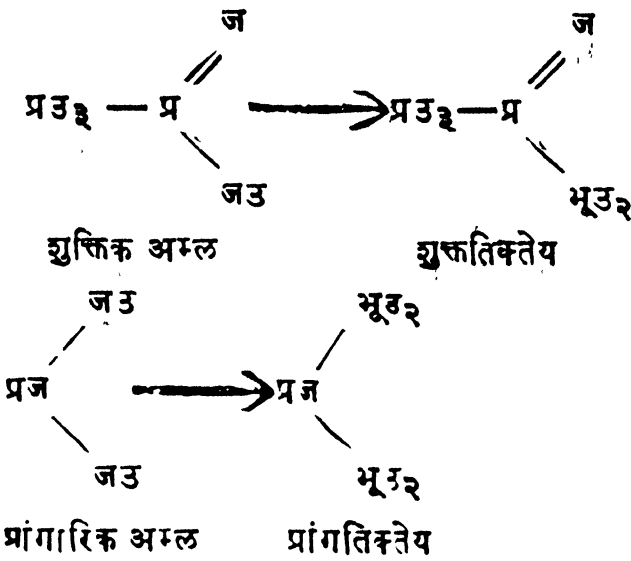
१. जैसे शुक्ल नीरेय पर तिक्ताति की क्रिया से शुक्-तिक्तेय प्राप्त होता है वैसे ही प्रांगंजारल नीरेय पर तिक्ताति की क्रिया से मिह प्राप्त होता है।
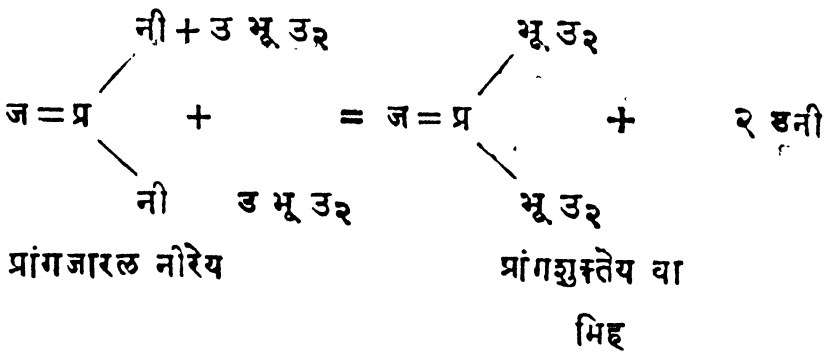
२. अधिक सुभीते से तिक्तातु श्यामीय (ammonium cyanate) के तपाने से मिह प्राप्त होता है। तिक्तातु श्यामीय दहातु श्यामीय और तिक्तातु शुल्वीय से प्राप्त होता है। यह रीति ऐतिहासिक महत्व की है क्योंकि इसी रीति से वोलर (Wohler) ने १८२८ ई० में अप्रांगारिक पदार्थों से पहले-पहल प्रयोगशाला में एक आदर्श प्रांगारिक संयोग मिह को तैयार कर सिद्ध किया कि प्रांगारिक संयोगों के प्रस्तुत करने में किसी जीव-बल की आवश्यकता नहीं पड़ती।

संपरीक्षा १४. मिह की प्राप्ति। एक लोहे के शराव (dish) में दहातु श्यामेय का २५ धान्य पिघलाकर उसमें थोड़ा थोड़ा करके ६० धान्य रक्त सीस (red lead) डालो। जब सारा रक्त सीस पड़ जाय तब सृष्ट को ठण्डा होने दो। ठण्डे पुञ्ज का क्षोद बनाओ और अद्वासित सीस को यथासम्भव निकालकर १०० घ॰ शि॰ मा॰ ठण्डे जल के साथ एक घण्टे तक रख दो। उसे अब हिलाकर छान लो। अब विलयन में दहातु श्यामीय विद्यमान है।

४ द प्र भू + सी$_३$ ज$_४$ = ४ द प्र भू ज + ३सी
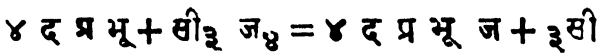
दहातु श्यामेय   रक्तसीस   दहातु श्यामीय

potassium cyanide (potassium cyanate)

अब विलयन में २५ धान्य तिक्तातु शुल्वीय का संकेन्द्रित विलयन डालकर सबको उद्वाष्पण कर सूखा लो। सान्द्र पुञ्ज को ३० से ४० घ॰ शि॰ मा॰ प्रोद्लीयित प्रसव (methylated spirit) डालकर जल-तापन पर निस्सारण करो। विलयन के ठण्डे होने पर मिह के स्फट निकल आवेंगे।

२ द प्र भू ज + (भू उ$_४$)$_२$ शु ज$_४$ = द$_२$ शु ज$_४$ + २ भू उ$_४$ प्र भू ज

दहातु श्यामीय   तिक्तातु श्यामीय

```
उ                                        भू उ२
  \                                     /
उ—भू—ज—प्र≡भू  ———→       ज = प्र
  / |                                   \
उ   उ                                    भू उ२
```
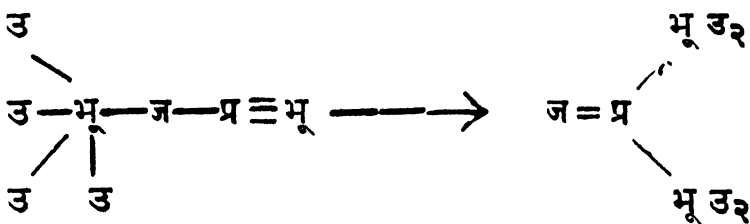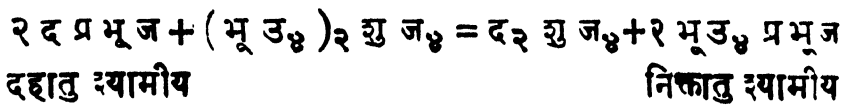
तिक्तातु श्यामीय   मिह

तिक्तातु श्यामीय का मिह में परिवर्तन एक सरल परिवर्तन है जिसमें केवल व्यूहाणु में परिवर्तन होता है। ऐसे परिवर्तन को व्यूहाणु-अन्तर (intramolecular) कहते हैं तिक्तातु श्यामीय के व्यूहाणु के

परमाणुओं का पूनर्विन्यास हो मिह के व्यूहाणु की नई संरचना में वे बँध जाते हैं।

१. मूत्र से भी मिह प्राप्त हो सकता है। इसके लिये मूत्र को संकेन्द्रित कर सुषव से निस्सारण करते हैं। मिह सुषव में प्रविलीन हो जाता है। सुषविक विलयन के धीरे धीरे उद्वाष्पण से मिह के स्फट प्राप्त होते हैं।

गुण। मिह रंगहीन स्फटात्मक सान्द्र है जो १३२° श० पर पिघलता है। यह जल और सुषव में शीघ्र विलेय है पर दग्धु में विलेय नहीं। मनुष्य के मूत्र में यह रहता है और प्रत्येक मनुष्य से प्रायः ३० धान्य प्रतिदिन निकलता है।

तपाने से मिह पहले पिघलता और तब तिक्ताति द्वि-मिहेय और अन्य सृष्टों में विबन्द्ध हो जाता हैं।

भू उ₂—प्र ज—भू उ₂ + उ भू उ—प्र ज—भू उ₂

=भू उ₂—प्र ज—भू उ—प्र ज—भू उ₂ + भू उ₃
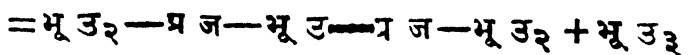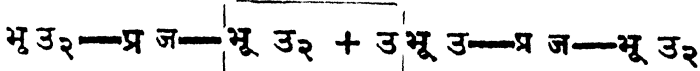
द्वि-मिहेय (Biuret)

द्वि-मिहेय में ताम्र शुल्बीय के क्षारिय विलयन डालने से रक्त-लोहित (pink) रंग प्राप्त होता है। इस प्रतिक्रिया को द्वि-मिहेय प्रतिक्रिया (biuret reaction) कहते है और मिह के उपालाम्भन में प्रयुक्त होता है।

संपरीक्षा ३५. । मिह के कुछ स्फटों को परीक्षा-नाल में रखकर धीरे धीरे तपाओ। देखोगे कि तिक्ताति निकलती है। अवशेष (द्वि-मिहेय) में कुछ पानी की बूँदे डालकर प्रविलीन कर लो। इस स्वच्छ विलयन में दह विक्षार की कुछ बूदें डालकर बूंदबूंद ताम्र शुल्बीय का विलयन डालो। पहले रक्त, फिर नील-लोहित और अन्त में रक्त लोहित (pinkish) रंग बनेगा।

जब मिह को जल के साथ संमुद्रित नाल में १८०° श० तक तपाते हैं तब वह पूर्णतः तिक्तातु प्रांगारीय में परिणत हो

यह प्रतिक्रिया मिह के निश्चयन में प्रयुक्त होती है। तिक्तातु प्रांगारीय से जो प्रांगार द्विजारेय निकलता है, उसीसे मिह की मात्रा का आगणन करते हैं।

मिह दुर्बल एकाम्लिक पीठ है और अम्लों से सुनिश्चित (well-defined) स्फटात्मक लवण बनता है। इसके तिग्मीय और भूयीय लवण स्फटात्मक होते और अम्लों में किञ्चित मात्र विलेय है। जल से ये लवण मिह और तत्संवादी अम्लों में जलांशित हो जाते हैं। मिह को भूयय अम्ल के साथ साधने से प्रांगार द्विजारेय और भूयाति वहिर्गत होती है।
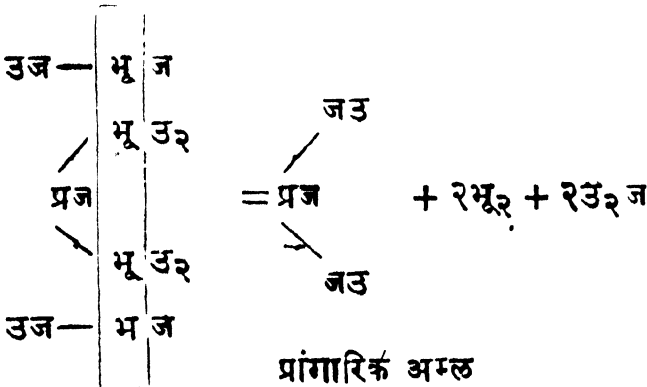
क्षारातु उप-दुरित के क्षारिय विलयन से भी मिह विबद्ध हो भूयाति निकलती है। इस प्रतिक्रिया में केवल ९१ प्रतिशत मिह विबद्ध होता है यह स्मरण रखने की बात है। इससे जो भूयाति निकलती है उसे भूय-मान में दहविक्षारके ऊपर इकट्ठा कर आवश्यक संशोधन कर मिह की सन्निकट (approximate) मात्रा का आगणन करते हैं।

भूउ२ / प्रज \ भूउ२ + ३ क्षजदु = ३क्षदु + २ उ२ज + प्रज२ + भू२
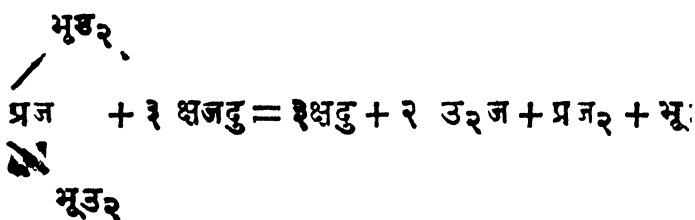
संस्थापना। प्रांगारल नीरेय और तिक्ताति से मिह का बनना स्पष्टतया बताता है कि यह प्रांगारिक अम्ल का तिक्तेय है। अतः इसका संस्थापना सूत्र होगा।

```
भूउ₂              भूउ₂
|                /
प्र=ज     वा     प्र=ज
|                \
भूउ₂      .      भूउ₂
```
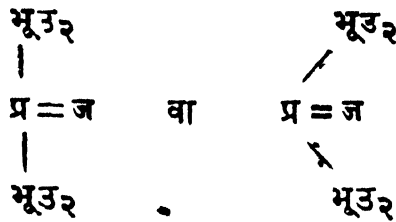
तिग्मिक अम्ल (Oxalic acid) उजजप्र-प्रजजउ। तिग्मिक अम्ल एक द्वि-पैठिक अम्ल है। यह अम्लीका (wood sorrel) और अन्य पौधोंमें आम्लिक क्षारातु तिग्मीय के रूप में पाया जाता है। स्फटात्मक चूर्णातु तिग्मीय कभी कभी पौधों के कोशाओं में पाया जाता है। यह मूत्र में भी होता है।

१—शील ने १७७६ ई० में शर्करा के भूयिक अम्ल द्वारा जारण से तिग्मिक अम्ल प्राप्त किया था। अल्प मात्रा में इस रीति से प्रयोगशाला में प्राप्त हो सकता है।

संपरीक्षा ३६। एक पलिघ में प्रबल भूयिक अम्ल का १०० घ० शि० मा० रखो। इक्षु शर्करा का २५ धान्य थोड़ा जल में प्रविलीन कर सावधानी से उसमें डालो। उसे उष्ण करो ताकि प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाय। प्रतिक्रिया प्रारम्भ होने पर तपाने की आवश्यकता नहीं। स्वयं प्रतिक्रिया प्रबल होती जाती है। जब प्रतिक्रिया न्यून हो जाय तब विलयन को एक तृतीयांश परिमाण में संकेन्द्रित कर ठण्डा होने को छोड़ दो। अब स्फट बनेंगे। स्फट को निकाल कर कांचऊर्णा (glass wool) पर छान लो। अल्प जल में प्रविलीन कर सूक्ष्म को पुनस्फटन करो।

२—बड़ी मात्रा में तिग्मिक अम्ल क्रकच धूलि (saw dust) के जारण से प्राप्त होता है। इसके लिए क्रकच धूलि को दह विक्षार और दह सर्जि के प्रबल विलयन से मिलाकर कड़ी लेपी बनाकर

प्रांगारणांक (charring point) से निम्नताप पर (१५० °-२०० ° श०) धीरे धीरे तपाते हैं। शुष्कभुरे पुंज को जल से प्रक्षालित करते है। इससे प्रतिक्रिया में बना क्षारातु और दहातु तिग्मीय प्रविलीन हो जाता है। इस विलयन में चूर्णक-दूध के डालने से चूर्णातु तिग्मीय निस्सादित हो जाता है। निस्साद को छानकर घो डालते है और तब शुल्बारिक अम्ल की आवश्यक मात्रा से विबद्ध करते है। अविलेय चूर्णातु शुल्बीय को छानकर निकाल डालते और स्वच्छ विलयन को संकेन्द्रित कर ठण्ढे होने के लिए छोड़ देते है। तिग्मिक अम्ल के स्फट जिसमे स्फटन-जल के दो व्यूहाणु रहते है निकल आते है।

१—अनेक रीतियों से तिग्मिक अम्ल का संश्लेषण हो सकता है। इनमें श्यामजन का जलांशन, दक्षुलेन्य मधुर का जारण और ३६०°श तक तप्त दहातु धातु पर प्रांगार द्वि-जारेय का प्रवहण प्रमुख हैं।

२प्रज$_२$+२द = दजजप्र—प्रजंजद

गुण। तग्मिक अम्ल के स्फट में स्फटन-जलके दो व्यूहाणु रहते हैं। स्फट-तिग्मिक अम्ल १०१-५°श० पर पिघलता है। इस ताप पर स्फटनजल निकलता और वह कुछ ऊद्धनित होजाता और कुछ प्रांगार-द्विजारेय और वम्रिक अम्ल में विबद्ध हो जाता है।

प्र$_२$ज$_४$उ$_२$ = प्रज$_२$ + उप्रजजउ

तिग्मिक अम्ल विषाक्त है। जल और सुषव में विलेय। संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल के साथ तपाने से जल निकल जाता और प्रांगार द्वि-जारेय और प्रांगार एक-जारेय बनता है।

प्र$_२$ज$_४$उ$_२$ = प्रज$_२$ + प्रज + उ$_२$ज

इस मिश्रित वातिको यदि ऐसी धावन कूपी में लेजायं जिसमें दह-विक्षार का विलयन रखा हुआ है तो प्रांगार द्विजारेय प्रचूषित होकर कूपी में ही रहजाता और प्रांगार एक-जारेय का अविरत प्रवाह प्राप्त होता है। इस रीतिसे प्रांगार एक-जारेय वाति प्रस्तुत की जाती है।

शुल्बारिक अम्ल की उपस्थिति में दहातु अतिलोहकीय के साथ उष्ण करने से यह शीघ्रता से जारित हो प्रांगार-द्वि जारेय और जल में परिणत हो जाता है। यह प्रतिक्रिया परिमा-मितीय विश्लेषण में प्रयुक्त होती है।

$५प्र_२ज_४उ_२ + २द लो ज_४ + ३उ_२ शु ज_४ = द_२शु ज_४ + २लो\text{-}शुज_४ + १०प्रज_२ + ८उ_२ज$
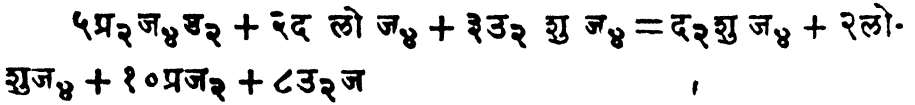
अजल तिग्मिक अम्ल प्रोदल और दक्षुल सुषदों के साथ क्रमशः प्रोदल और दक्षुल प्रलवण बनते हैं।

$$\begin{array}{l|l} प्रजज & उ \\ | & \\ प्रजज & उ \end{array} \;+\; \begin{array}{r|l} उज & प्र_२उ_५ \\ & \\ उज & प्र_२उ_५ \end{array} = \begin{array}{l} प्रजज\ प्र_२उ_५ \\ | \\ प्रजज\text{-}प्र_२उ_५ \end{array} + २उ_२ज$$
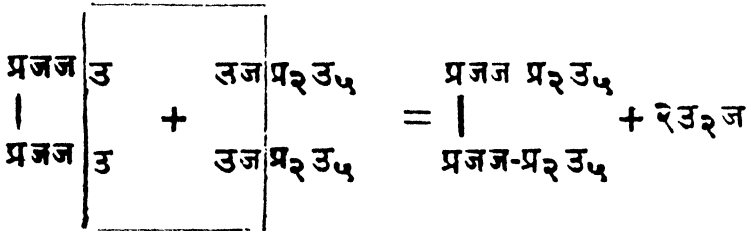
तिक्षातु तिग्मीय के तपाने से तिग्म-तिक्तेय (तिग्मिक अम्ल का तिवतेय) बनता है। इसमें जल के दो व्यूहाणु निकल जाते हैं।

$$\begin{array}{l} प्रजज\ भूउ_४ \\ | \\ प्रजज\ भूउ_४ \end{array} = \begin{array}{l} प्रजभूउ_२ \\ | \\ प्रजभूउ_२ \end{array} + २उ_२ज$$
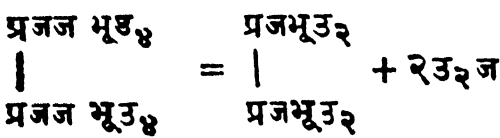
संस्थापना। श्यामजन और दक्षुलेन्य मधुव के संश्लेषण से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि तिग्मिक अम्ल में दो प्रांगजारल मूल विद्यमान हैं।

$$\begin{array}{l} प्रभू \\ | \\ प्रभू \end{array} + ४उ_२ज = \begin{array}{l} प्रजजउ \\ | \\ प्रजजउ \end{array} + २भूउ_३$$

$$\begin{array}{l} प्रउ_२जउ \\ | \\ प्रउ_२जउ \end{array} + २ज_२ = \begin{array}{l} प्रजजउ \\ | \\ प्रजजउ \end{array} + २उ_२ज$$
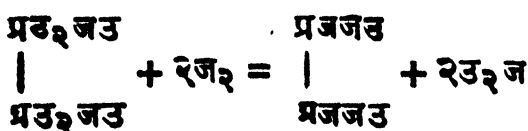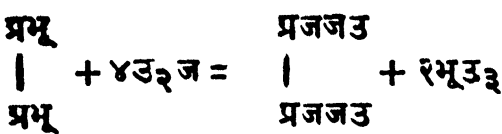
उपयोग। तिग्मिक अम्ल छींट छपाई और वस्त्र रंगाई में, स्याही और मोरचे के धब्बे छुड़ानेमें प्रयुक्त होता है। दहातु अयस्य तिग्मीय भाचित्रण में विकासक के रूप में व्यवहृत होता है। तिग्मिक अम्ल और इसके लवण विश्लेषण में प्रयुक्त होते हैं।

तृणिक अम्ल (Succinic acid) उजजप्र-प्रउ२-प्रउ२ प्रजजउ। यह अम्बर, उद्यास और कच्चे फलों में पाया जाता है। पहले पहल अम्बर के आसवन से यह प्राप्त हुआ था। यह न्यासविक (tartaric) अम्ल अथवा उत्कोलिक (malic) अम्ल से उदजंबुकि अम्ल के प्रह्रासन से प्राप्त हो सकता है। दक्षुलेन्य व शुक्त लेन्य से भी संश्लेषण से प्राप्त हो सकता है।
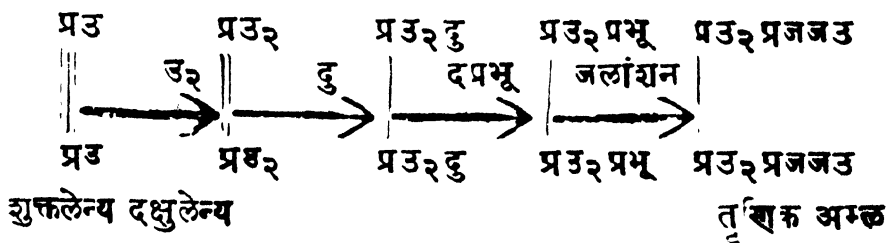
तृणिक अम्ल श्वेत स्फटात्मक सान्द्र है जो १८२° श० पर पिघलता है। यह जल में अनतिविलेय है। यह द्वि-पैठिक अम्ल है और धातुओं के साथ लवण बनता है जिन्हें तृणीय (succinate) कहते हैं और सुषवों के साथ प्रलवण बनता है।

तपाने से यह जल निकाल देता और शीघ्रता से तृणिक अजलेय में परिणत हो जाता है। यह प्रांगजारल अम्लों की सामान्य प्रतिक्रियाएँ देता है और उसी प्रकार तृणि-तिक्तेय (succinimide) और तृणिल (succinyl) नीरेय बनता है।

तृणिक अम्ल परिमामितीय विश्लेषण में, क्षारकों के प्रमापन (standardisation) में और कुछ रंजकों के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

न्यासविक अम्ल. (Tartaric acid) उजजप्र-प्रउजउ-प्रउजउ-प्रजजउ। अनेक उदजार द्वि-पैठिक अम्ल है

जिनमें न्यावसिक अम्ल सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्व का है। न्यावसिक अम्ल स्वतंत्र रूप में वा अम्ल दहातु लवण के रूप में उद्भिद् जगत में विस्तार से फैला हुआ है। अनेक झड़बेरियों और फलों में प्रधानतः ईमली और द्राक्षों में रहता है। ईमली में प्रधानतः स्वतंत्र अम्ल के रूप में और द्राक्ष में अमल-दहातुलवण के रूप में रहता है। १७६९ ई० में शील ने इसे पहले पहल पृथक् किया था।

अंगूर के किण्वन से जब मद्य बनता है तब मद्य में अविलेय होने के कारण, जब कुछ सुषव बन जाता है तब अम्ल दहातु न्यावसीय का पर्पटी (crust) के रूप में अवसादन (deposit) होता है। इसे आमन्यासव (argol) वा मद्य-मैल कहते हैं। इसके स्फटन के बाद जो सान्द्र प्राप्त होता है उसे न्यासव-शर (cream of tartar) कहते हैं। शुद्ध न्या-वसिक अम्ल को प्राप्ति के लिए न्यासव-शर को जल में घुलाकर विलयन को खटी (chalk) के साथ साधते हैं। इससे अविलेय चूर्णातु न्यावसीय निस्सादित हो जाता और ऋजु दहातु न्यावसीय विलयन में रह जाता है। जब स्वच्छ विलयन को जिसमें ऋजु दहातु न्यावसीय रहता है चूर्णातु नीरेय से साधते हैं तब और चूर्णातु न्यावसीय का निस्साद प्राप्त होता है।

$$२\ द\text{उप्र}_४\text{उ}_४\text{ज}_६ + \text{चूप्रज}_३ = \text{द}_२\text{प्र}_४\text{उ}_४\text{ज}_६ + \text{चूप्र}_४\text{उ}_४\text{ज}_६ + \text{प्रज}_२ + \text{उ}_२\text{ज}$$

दहातु उदजन न्यावसीय — दहातु न्यावसीय — चूर्णातु न्यावसीय

$$\text{द}_२\ \text{प्र}_४\ \text{उ}_४\ \text{ज}_६ + \text{चू नी}_२ = \text{चू प्र}_४\ \text{उ}_४\ \text{ज}_६ + २\ \text{दनी}$$
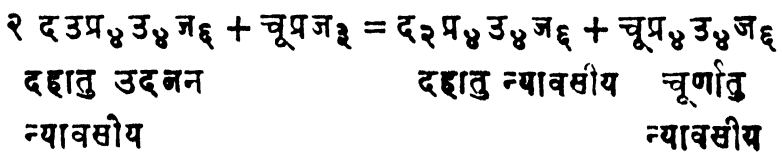
दहातु न्यावसीय — चूर्णातु न्यावसीय
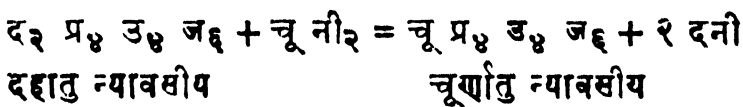
चूर्णातु न्यावसीय को फिर मन्द शुल्बारिक अम्ल की आवश्यक मात्रा से विमद्ध करते हैं जिससे अविलेय चूर्णातु शुल्बीय को छान कर निकाल लेते और पावित को जिसमें मुक्त न्यावसिक अम्ल रहता है

न्यून निपीड में संकेन्द्रित कर ठण्ढे होने को छोड़ देते हैं। उससे न्यावसिक अम्ल के स्फट निकल आते हैं।

ईमली से न्यावसिक अम्ल प्राप्त करने की रीति प्रायः इसी प्रकार की है। ईमली को जल से निस्सादित करते हैं। निपीड में यह निस्सादन अच्छा होता है। जलीय विलयन को फिर विरंजित कर खटी के साथ साधते हैं जिससे चूर्णातु न्यावसीय प्राप्त होता है। इस चूर्णातु न्यावसीय के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं जैसे अंगुर के रस के न्यावसीय के साथ करते हैं।

गुण। न्यावसिक अम्ल चार सभाजिक रूप में पाया जाता है। एक न्यावसिक अम्ल संक्षेत्र (prism) स्फट बनता है। यह १७०° श० पर पिघलता है। इसके जलीय विलयन में चाक्षुष सक्रियता (optical activity) होती है। और वह दक्षावर्तन होता है। सामान्य न्यावसिक अम्ल जो अंगुर में पाया जाता है यही न्यावसिक अम्ल है। एक दूसरा न्यावसिक अम्ल वामावर्तन होता है। यह भी १७०° श० पर पिघलता है। एक तीसरे न्यावसिक अम्ल को गुच्छिक (racemic) अम्ल कहते हैं। चाक्षुष (optical) गुण में यह निष्क्रिय होता है। विशेष रीतियों से दो चाक्षुष रूपों में इसका प्रवेचन हो जाता है। सामान्य क्षिप्र न्यावसिक अम्ल को जल के साथ संमुद्रित नाल में १७५° श० तक तपाने से यह गुच्छिक अम्ल प्राप्त होता है। एक चौथा न्यावसिक अम्ल होता है जिसे मध्य-न्यावसिक (meso-tartaric) अम्ल कहते हैं। यह भी काशिता में निष्क्रिय होता है। इसका क्षिप्ररूप में प्रवेचन नहीं हो सकता। यह समकोण (rectangular) पट्ट का स्फट बनता है जो १४०° श० पर पिघलता है। काशिक न्यावसिक अम्ल को जल के साथ १६०° श० तक तपाने से यह प्राप्त होता है।

प्रचण्ड ताप से न्यावसिक अम्ल का आंगारण हो जाता और जली हुई शर्करा की गंध का वाष्प निकलता है। इससे अग्नि-न्यावसिक अम्ल और पर्युविक (pyruvic) अम्ल बनते हैं।

न्यावसिक अम्ल शीघ्रता से जारित होता है। इस कारण यह एक प्रह्रासनकर्त्ता है। तिक्ताक्तिय (ammoniacal) रजत भूयीय विलयन को यह प्रह्रासित कर रजत धातु मुक्त करता है।

न्यावसिक अम्ल अम्ल और ऋजु लवण बनता है। कुछ लवण बड़े महत्व के हैं। वम-न्यासव (tartar-emetic) भैषज और तूल-रंगाई में स्थापक के रूप में प्रयुक्त होता है। यह अंजनल (antimonyl) दहातु न्यावसीय द (अंज) $प्र_४ उ_४ ज_६ २ उ_२ ज$, है। "रौशेल" लवण दहातु क्षारातु न्यावसीय द क्ष $प्र_४ उ_४ ज_६$ है जो शर्करा के आगणन में परिमामितीय विश्लेषण में प्रयुक्त होता है। न्यावसिक अम्ल स्वयं भैषज में, भर्जन क्षोद (baking powder) में और प्रबुद्‌बुद पेय (effervescent drink) में व्यवहृत होता है।

संस्थापना। न्यावसिक अम्ल द्वि-पैठिक अम्ल है और इसके व्यूहाणु में दो प्रांगजारण मूल होते हैं। इनके सिवा इसमें दो और उदजारल मूल होते हैं। इसकी संस्थापना सूत्र निम्नलिखित है जिससे प्रगट होता है कि यह द्वि-उदजार द्वि-पैठिक अम्ल है।

प्र ज ज उ
|
प्र उ ज उ
|
प्र उ ज उ
|
प्र ज ज उ

निम्बाविक (Citric) अम्ल $प्र उ_२ प्र ज ज उ$
|
प्र (ज उ) प्र ज ज उ
|
$प्र उ_२ प्र ज ज उ$

यह निम्बू, नारंगी आदि अनेक कच्चे फलों में पाया जाता है।

साधारणतया यह निम्बु के रस से प्राप्त होता है। प्रांगोदीय के एक विशेष प्रकार के फंजाई (fungi) जिसे केशाकवकर्ग कहते हैं द्वारा किण्वन से भी यह प्राप्त हो सकता है। निम्बु के रस में ६ से ९ प्रतिशत निम्बुविक अम्ल रहता है। इसे पहले उबालते हैं। प्रोभूजिन का आतंजन (coagulation) हो जाता और तब चूर्णातु प्रांगारीय के साथ तपाने से चूर्णातु निम्बवीय पृथक् हो जाता है। इसे निकाल कर मन्द शुल्वारिक अम्ल से विबद्ध करते हैं। अविलेय चूर्णातु शुल्वीय को छानकर निकाल लेते और विलयन को विरजन कर संकेन्द्रित करते हैं जिससे निम्बविक अम्ल के स्फट प्राप्त होते हैं।

निम्बविक अम्ल श्वेत स्फटात्मक सान्द्र है जिसमें स्फटन-जल का एक व्यूहाणु रहता है। इसके स्फट १००° श० पर पिघलते और १५१° श० पर अजल हो जाते हैं। यह जल में द्रुत विलेय है। यह त्रि पैठिक अम्ल है और जो लवण बनता है उसे निम्बवीय citrate कहते हैं। तपाने से जल शीघ्रता से निकल जाता और यह अननुविद्ध अम्ल में परिणत हो जाता है।

निम्बुविक अम्ल रंजक-संस्थापक और छींट की छपाई, तथा निम्बु-पानक (lemonade) बनाने में प्रयुक्त होता है। इसके लवण भैषज और नील-छाप के (blue print) पत्रों के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

प्रश्न

१—द्वि-पैठिक अम्ल क्या है? निम्नलिखित अम्लों का संस्थापना सूत्र लिखो।

(१) प्रांगारिक अम्ल (२) तिग्मिक अम्ल (३) न्यावसिक अम्ल

२—प्रांगारिक अम्ल के किसी दो व्युत्पन्नों की प्राप्ति और गुणों का वर्णन करो।

३—क्या होता है जब (१) सूर्य-प्रकाश की उपस्थिति में नीरजी प्रांगार एक-जारेय के संस्पर्श में आता है (२) प्रांगारल नीरेय (क) जल से (ख) तिक्ताति से साधित होता है (ग) तिक्तातु तिग्मीय तपाया जाता है?

४—मिह क्या है? प्रकृति में कहाँ पाया जाता है? मिह पर भूयस्य अम्ल की क्या क्रिया होती है? प्रांगारिक अम्ल से इसका क्या संबंध है?

५—प्रयोगशाला में मिह कैसे प्राप्त करोगे? इसके अधिक महत्व के गुणों का वर्णन करो। मूत्र में मिह का आगणन कैसे हो सकता है?

६—कितने प्रकार के न्यावसिक अम्ल है और उनमें क्या भेद है?

७—(क) न्यासव-शर और (ख) ईमली से न्यावसिक अम्ल कैसे प्राप्त होता है? इसके कुछ महत्व के गुणों का वर्णन करो।

८—प्रकृति में तिग्मिक अम्ल कैसे पाया जाता है? ककच धूलि से यह कैसे प्राप्त होता है?

(१) संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल, (२) अम्लीकृत दहातु, अतिलोहकीय और (३) दस्तुल सुषत्र की तिग्मिक अम्ल पर क्या क्रियाएँ होती है?

९—किन कारणों से तुम तिग्मिक अम्ल को यह संस्थावना रूप प्रदान करोगे।

प्रजजउ
|
प्रजजउ

१०—निम्बत्रिक अम्ल कैसे प्राप्त होता है? ताप का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसके उपयोग क्या हैं।

अध्याय १६

वरिमा-रसायन

प्रकाशका ध्रुवीयण और काशिता (Polarisation of light and optical activity)। 'ईथर' नामक पदार्थ के माध्यम में आवेप (vibration) से प्रकाश का उत्पन्न होना समझा जाता है। प्रकाश-गमन की दिशा के समकोण के तल पर ये आवेप होते हैं। पर यह आवेप किरण की चारों ओर सब सम्भव दिशाओं में होते है। यदि प्रकाश हिमवर्ष ध्वतिया (Icelandspar) के स्फट-जो एक विशेष प्रकार से कटा हुआ है जिसे इसके आविष्कर्ता 'निकोल' के नाम से निकोल संक्षेत्र कहते हैं, वहन करे तो इस संक्षेत्र से जो किरणें निकलती हैं उनका आवेप केवल एक दिशा के समानान्तर में होता है। दूसरे शब्दों में प्रकाश-किरणों का एक ही तल में प्रदोलन होता है। प्रकाश की ऐसी किरणों को जिनके कण एक ही तलपर प्रदोलित होते हैं **'ध्रुवीयित प्रकाश'** (polarised light) कहते हैं। इस विधा को प्रकाश का ध्रुवीयण (polarisation) कहते है। ध्रुवीयित प्रकाश का आशय ऐसे प्रकाश से है जिसका केवल एक तल पर प्रदोलन होता है। ध्रुवीयण का तल उस तलको कहते हैं जिस तलपर प्रकाश-किरण रहती है और जो प्रदोलन के तल के समकोण में होता है।

यदि ध्रुवीयित प्रकाश एक दूसरे तत्स्थान स्थापित निकोल संक्षेत्र के द्वारा प्रविष्ट करे अर्थात्, दोनों संक्षेत्रों के गमन-तल एक ही हो दूसरे संक्षेत्र से प्रकाश-किरण अपरिवर्तित वहिर्गत होती है। यदि दूसरे निकोल संक्षेत्र को ९०° कोण पर घूमादे तो प्रकाश का निकलना पूर्ण रूप से बन्द हो जाता है। ऐसे दो निकोल संक्षेत्रों को crossed कहते है। यदि दूसरे सक्षेत्र को ४५° घूमावें तो थोड़ा प्रकाश प्रविष्ट करेगा। यदि ४५° से अधिक घूमावे तो प्रकाश और भी न्यून हो

जायगा। यदि दो निकोल संक्षेत्र क्रौस्ड हैं तो पूर्ण अन्धकार रहेगा। अब यदि दूसरे संक्षेत्र को घूमावे तो थोड़ा थोड़ा प्रकाश प्रविष्ट करना आरम्भ होगा। पहले संक्षेत्र को ध्रुवीयक (polariser) और दूसरे संक्षेत्र को विश्लेषक (analyser) कहते हैं और जिस यन्त्र में ये दोनों निकोल संक्षेत्र होते हैं उसे ध्रुवीयेक्ष (polariscope) कहते हैं।

यदि दो निकोल संक्षेत्र क्रौस्ड हों तो दूसरे संक्षेत्र से प्रकाश नहीं निकलता। अब यदि इन दोनों संक्षेत्रों के बीच में शर्करा का विलयन रखें तो दूसरे संक्षेत्र से कुछ प्रकाश निकलता है। इसका तात्पर्य यह है कि ध्रुवीयित प्रकाश शर्कर विलयन के द्वारा बहिर्गत होने से अब वह उसी दिशा में प्रदोलित नहीं होता जिसमें ध्रुवीयक ने उसे छोड़ा था पर ध्रुवीयण के तल में कुछ परिवर्तन हो गया है। ऐसे पदार्थों को जिनमें प्रकाश के ध्रुवीयण के तल के घुमाने का गुण विद्यमान है काशित (optically active) कहते हैं और इस गुणको काशिता (optical activity) कहते हैं। ईक्षुशर्करा द्राक्षशर्करा सदृश कुछ पदार्थ प्रकाश के ध्रुवीयण के तल में दाएँ घुमाते और फल-शर्करा सदृश कुछ पदार्थ ध्रुवीयण के तल को बाएँ घुमाते हैं। पहिले प्रकार के पदार्थों को दक्षावर्त और दूसरे प्रकार के पदार्थों को वामावर्त कहते हैं। दक्षावर्तन को धन और वामावर्तन को ऋण चिह्न से और 'द' और 'व' अक्षरों से भी सूचित करते हैं। जिन पदार्थों में काशिता नहीं होती उन्हें प्रकाशतः निष्क्रिय कहते हैं।

किसी पदार्थ की काशिता का माप उसके आवर्तन (rotation) की मात्रा से होता है। आवर्तन की मात्रा अनेक बातों पर निर्भर करती है। इनमें (१) पदार्थ की प्रकृति, (२) विलयन का सकेन्द्रण, (३) ध्रुवीयित प्रकाश से पारगत विलयन की लम्बाई, (४) विलयन का ताप, (५) प्रकाश का तरंगायाम (६) माध्यम वा विलायक है। आवर्तन बल की तुलना के लिए किसी प्रमाप की आवश्यकता होती है। किसी पदार्थ का विशिष्ट आवर्तन, आवर्तन का वह कोन है जो एक प्रस्थ प्रविलीन एक घ० शि० मा० विलयन की एक दि० मा०

लम्बाई से उत्पन्न होता है। किसी पदार्थ का यदि 'अ' निरीक्षित (observed) आवर्तन है। यह क्षारातु प्रकाश (क) के द्वारा 'त' तापपर 'ल' दि० मा० की लम्बाई के स्तर से 'क्ष' प्रस्थ १०० घ० शि० मा० के विलयन में उत्पन्न हुआ है तो उस पदार्थ का विशिष्ट आवर्तन 'भ' होगा।

$$[\text{भ}]^{\text{त}}_{\text{क}} = \frac{\text{अ} \times १००}{\text{ल} \times \text{क्ष}}$$

विशिष्ट आवर्तन को पदार्थ के व्यूहाणुभार के गुणन से व्यूहाणु आवर्तन प्राप्त होता है।

दुग्धिक अम्ल और न्यासविक अम्ल की काशिता।

शील (Scheele) ने १७१० ई० में खट्टे दूध में दुग्धिक अम्ल का अविष्कार किया। यह अम्ल दुग्ध-शर्करा के किण्वन से बनता है। ईक्षुशर्करा वा मण्ड के दुग्धिक किण्वन से अधिक सुविधे से प्राप्त हो सकता है। प्रकाशतः यह दुग्धिक अम्ल निष्क्रिय होता है।

एक दूसरे दुग्धिक अम्ल जिसे परा-दुग्धिक अम्ल कहते हैं का वेचन बर्जलियस ने १८०७ ई० में पुट्ठे (muscles) के रस से किया था। यह लीबिग के मांस के सत से सरलता से प्राप्त हो सकता है। परादुग्धिक अम्ल के अनेक गुण किण्वन से प्राप्त दुग्धिक अम्ल के गुण के समान ही होते हैं। केवल एक महत्वपूर्ण बात में यह भिन्न होता है। किण्वन दुग्धिक अम्ल प्रकाशतः निष्क्रिय होता है। पर परादुग्धिक अम्ल प्रकाशतः क्रियाशील और दक्षावर्त होता है। इन दोनों दुग्धिक अम्ल की संस्थापना एक ही है।
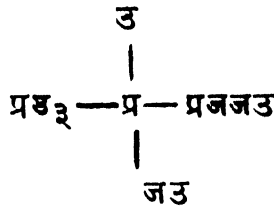
न्यासविक अम्ल। जैसा हम पीछले अध्याय में देख चुके हैं न्यासविक अम्ल के चार समाजिक होते हैं। इन चारों के संस्थापना सूत्र एक ही, उजजप्रप्रउ (जउ) प्रउ (जउ) प्रजजउ, हैं। इन अम्लों में दो प्रकाशतः क्रियाशील एक दक्षावर्त और एक वामावर्त है। और दो प्रकाशत: निष्क्रिय होते हैं। एक को गुच्छिक अम्ल और दूसरे को मध्यन्यासविक-अम्ल कहते हैं। प्रश्न यह है कि इन दुग्धिक और न्यासविक अम्लों की समाजता की व्याख्या कैसे की जा सकती है।

दक्षुल सुषव (प्र२ उ५ जउ) और द्विप्रोदल दक्षु (प्रउ३ ज-प्रउ३) के समाजता की व्याख्या इस प्रकार की जाती है कि इनके व्यूहाणुओं में भिन्न भिन्न प्रकार से परमाणुओं का ग्रथन विद्यमान है। यह व्याख्या दुग्धिक और न्यासविक अम्लों में लागू नही होती क्योंकि दोनों दुग्धिक और चारो न्यासविक अम्लों के संरचना सूत्र एक ही हैं।

पाश्चर (Pasteur) ने इस विषयपर पर्याप्त अन्वेषण किया और १८५६ ई० में उस सिद्धान्त की नींव डाली जिससे इस समाजता की व्याख्या हो सकती है। पहले-पहल पाश्चर ने ही कहा कि इस समाजता का कारण असंमिति (asymmety) है और एक क्षिप्र अम्ल के व्यूहाणु दूसरे क्षिप्र अम्ल के व्यूहाणु पर अध्यारोपित नही हो सकते। इस सिद्धान्त ने १८७४ ई० तक कोई निश्चित रूप नही धारण किया। १८७३ ई० में विस्ली सेनस (Wislicenus) ने ऐसा सुझाव रखा कि यदि हम मानले कि व्यूहाणुओं की संरचना एक सी होने पर भी उनके गुण भिन्न भिन्न हो सकते हैं तो इसकी व्याख्या केवल यह हो सकती है उनके परमाणुओं का विन्यास वरिमा में भिन्न भिन्न है।

डच रसायनज्ञ वान्टहौफ (Vant-hoff) और फ्रांसीसी रसायनज्ञ ले बेल (Le Bel) ने १८७४ ई० में एक साथ उस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया जो वीरमा-सभाजता के नाम से ज्ञात है। इस सिद्धान्त का आधार प्रांगार की चतुः संयुजता है और काशिता का सम्बन्ध व्यूहाणु संरचना से है। इस सिद्धान्त के अनुसार सब ही क्षिप्र प्रांगार संयोगों के व्यूहाणु में कम से कम एक प्रांगर परमाणु ऐसा होना चाहिए जो चार विभिन्न तत्त्वों वा मूलों से संयुक्त हो एक असंमितीय विराम विन्यास उत्पन्न करे। ले-बेल और वान्ट हौफ दोनों की धारणा थी कि इन चार तत्वों वा मूलों का तल प्रांगार परमाणु के तल से भिन्न है। और ये प्रांगार-परमाणु के चारों ओर त्रि-बिन वरिम में स्थित है। वान्ट-हौफ का मत था कि प्रांगार परमाणु के चारों बन्ध चतुरनीक के चारो कोणों की ओर झुके हुए है और इस चतुरनीक के केन्द्र में प्रांगार परमाणु स्थित है। ऐसा देखा गया था कि यदि प्रांगार परमाणु के चारो बन्ध से चार मूल संयुक्त हैं तो ऐसे संयोगों में साधारणतया काशिता होती है। इस प्रांगार परमाणु को असंमितीय प्रांगार परमाणु कहते हैं। वान्ट-हौफ और ले-बेल दोनों के मत से व्यूहाणु के असंमितीय प्रांगार परमाणु को उपाथिति से काशिता का सम्बन्ध है। हम देखते हैं कि दुग्धिक अम्ल में एक असंमितीय प्रांगार परमाणु विद्यमान है। जिसके चार बन्धों से भिन्न चार मूल प्रउ$_3$। उ। जउ और प्रजजउ संवद्ध है।
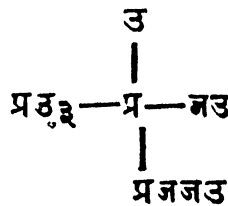
यदि दुग्धिक अम्ल के प्रांगार परमाणु को चतुरनीक के केन्द्र में रखकर चतुरनीक के चारो कोनों पर चार मूलों को रखें तो त्रि-विराम में इन भिन्न मूलों का विन्यास दो विभिन्न रीतियों से हो सकता है। इन दोनों विन्यासों का निरुपण इस प्रकार होता है।
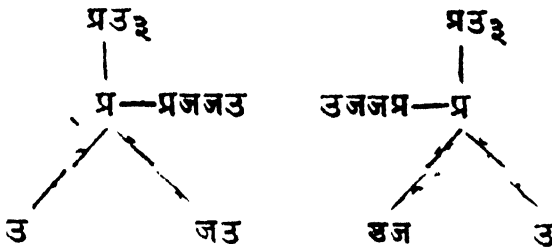
इससे ज्ञात होता है कि दुग्धिक अम्ल-जिसमें एक असंमितीय प्रांगार परमाणु विद्यमान है-दो रूपों में स्थित रह सकता है और इन दोनों के रूप चित्र में दिये रूप के सदृश हैं। वे आध्यारोप्य नहीं हैं। एक दूसरे का दर्पण प्रतिबिम्ब है। इन दोनों संयोगों के रसायनिक और भौतिक गुण प्राय: एक से है पर इन दोनों का व्यवहार ध्रुवीयित प्रकाश के प्रति भिन्न है। यदि एक विन्यास प्रकाश के ध्रुवीयण के तल को दाएँ घुमाता है तो दूसरा उतना ही बाएँ घुमाता है। परादुग्धिक अम्ल की काशिता को अब हम सरलता से समझ सकते है। यह काशिता व्यूहाणु में असंमितीय प्रांगार परमाणु के कारण है। यद्यपि प्रत्येक क्षिप्र पदार्थ में असमितीय प्रांगार परमाणु का होना अवश्यक है पर इसके प्रतिकूल केवल असंमितीय प्रांगार परमाणु के होने से उसमें काशिता का भी होना आवश्यक नही है। किण्वन दुग्धिक अम्ल में असंमितीय प्रांगार परमाणु होनेपर भी काशिता नहीं होती। किण्वन दुग्धिक अम्ल में काशिता क्यों नहीं होती? काशिता न होने का कारण यह है कि इस अम्ल में दो प्रकार के क्षिप्र पदार्थ—एक दक्षावर्त और दूसरे वामावर्त—हैं जो एक दूसरे के प्रभाव का क्लीबन कर देते है। यह इस बात से सिद्ध होता है कि इस अक्षिप्र किण्वन दुग्धिक अम्ल को दो क्षिप्र अम्लों में प्रवेचन कर सकते हैं। परादुग्धिक अम्ल दुग्धिक अम्ल का तीसरा सभाजक है। इस प्रकार तीन प्रकार के दुग्धिक अम्ल—दक्षावर्त दुग्धिक अम्ल, वामावर्त दुग्धिक-अम्ल और अक्षिप्र दुग्धिक-अम्ल का होना इस सिद्धान्त से प्रतिपादित हो जाता है। अक्षिप्र दुग्धिक अम्ल को दो क्षिप्र रूपों में परिणत कर सकने के कारण ऐसे संयोगों को

'गुच्छिक' संयोग कहते हैं। दो क्षिप्र दुग्धिक अम्लों के रूप ऊपर दिये हुए हैं।

न्यासविक अम्लों की सभाजता। ऊपर हम देख चूके हैं कि न्यासविक अम्ल के चार भेद हैं। इनमें दो क्षिप्र हैं दो अक्षिप्र। वारिमा-रसायनिक सिद्धान्त से इसकी कैसे व्याख्या की जा सकती है? इसके संस्थापना सूत्र के निरीक्षण से पता लगता है कि न्यासविक अम्ल के व्यूहाणु में दो असंमितीय प्रांगार परमाणु विद्यमान हैं जिनमें प्रत्येक असंमितीय प्रांगार परमाणु एक ही प्रकार के मूलों से घिरा हुआ है।
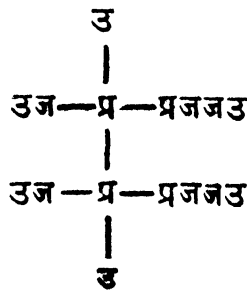
यदि मानलें कि तीन मूलों से वेष्टित (घिरा हुआ) प्रत्येक असंमितीय प्रांगार परमाणु ध्रुवीयण के तल में कुछ आवर्तन उत्पन्न करता है तो उससे निम्न तीन सम्भावनाएँ हो सकती हैं।

१—दोनों प्रांगार परमाणुओं में तीनों मूलों का विन्यास ऐसा है कि ये दोनों हीं ध्रुवीयण के तल को दाएँ घूमाते हैं तो उस दशा में वह संयोग दक्षावर्त होगा।

२—दोनों प्रांगार परमाणुओं में तीनों मूलो का विन्यास ऐसा है कि ये दोनों ही ध्रुवीयण के तल को बाएँ घूमाते हे तो उस दशा में में वह संयोग वामावर्त होगा।

३—एक असंमितीय प्रांगार परमाणु में मूलों का विन्यास ऐसा है कि वह ध्रुवीयण के तल को दाएँ घुमाता है और दूसरे प्रांगार परमाणु का ऐसा है कि वह ध्रुवीयण के तल को बाएँ घुमाता है तो

एक का प्रभाव दूसरे के प्रभाव को क्लीबन कर देगा और ऐसा संयोग अक्षिप्र होगा।

यह स्पष्ट है कि पहली दशा में जो संयोग होगा वह दक्षावर्त होगा दूसरी दशा में जो होगा वह वामावर्त होगा और तीसरी दशा में जो होगा वह अक्षिप्र होगा। एक चौथी दशा भी सम्भव है। दक्षावर्त और वामावर्त दोनों प्रकार के संयोगों को सम मात्रा में मिलाएँ तो एक ऐसा संयोग बनेगा जो अक्षिप्र होगा पर जिसका दो क्षिप्र भेदो में प्रवेचन हो सकता है। इस प्रकार के न्यासविक अम्ल को गुच्छिक .अम्ल कहते हैं। गुच्छिक अम्ल का दो क्षिप्र न्यासविक अम्लों में प्रवेचन हो सकता है। इस कारण इसे वाह्यसमतोलित (externally compensated) कहते है। ऊपर में तीसरे प्रकार का जो अक्षिप्र अम्ल बनता है उसे अभ्यन्तर समतोलित (internally compensated) कहते हैं। मध्य-न्यासविक अम्ल अभ्यन्तर सम-तोलित है क्योंकि इसका दो क्षिप्र रूपों में प्रवेचन नहीं हो सकता है। चारो न्याविक अम्ल के चित्र-सूत्र निम्नलिखित है।
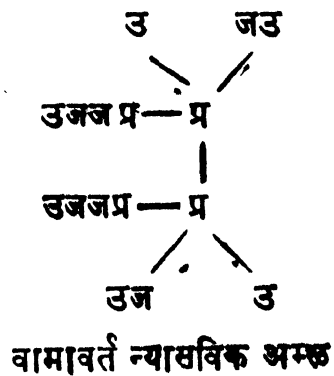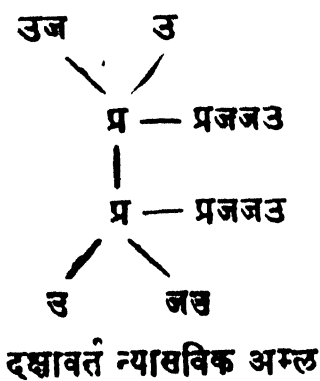
गुच्छिक अम्ल
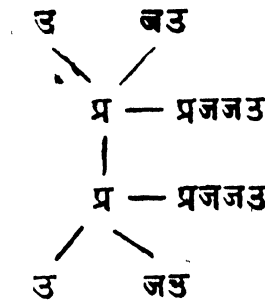
मध्य-न्यासविक अम्ल

इन सूत्रों की व्याख्या बड़ी सरलता से निदर्शन (models) द्वारा हो जाती है। वान्त-हौफ और ले-बेल के वरिमा सिद्धान्त से व वरिमा सभाजता से तीन प्रकार के दुग्धिक अम्ल और चार प्रकार के न्यासविक अम्ल की व्याख्या सन्तोषपूर्वक हो जाती है।

पाश्चर (Pasteur) ने हमें तीन महत्त्वपूर्ण रीतियाँ भी दी हैं जिनसे गुच्छिक संयोगों का क्षिप्र रूप में प्रवेचन हो सकता है। इन रीतियों के वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न

१—निम्न पारिभाषिक शब्दों से तुम क्या समझते हो ?

(१) प्रकाश का ध्रुवीयण

(२) काशिता

(३) असंमितीय प्रांगार परमाणु

२—सभाजिक दुग्धिक अम्लों के वरिमा-सभाजता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

३—दो सभाजिक अक्षिप्र न्यासविक अम्ल की सत्ता की क्या व्याख्या करते हो ?

४—दुग्धिक अम्ल और न्यासविक अम्लों की वरिमा-समाजता की व्याख्या करो।

५—किस बात में मध्य-न्यासविक अम्ल गुच्छिक अम्ल से भिन्न है ?

६—निम्न शब्दों की स्पष्ट व्याख्या करो। प्रत्येक का कम से कम एक उदाहरण दो।

(१) बाह्य-समतोलित संयोग

(२) अभ्यन्तर समतोलित संयोग

(३) दक्षावर्त संयोग

(४) वामावर्त संयोग

७—विभिन्न दुग्धक और न्यासविक अणुओं का चित्रसूत्र लिखो और उनकी व्याख्या करो।

८—काश्विता और प्रांगार संयोगों की संस्थापना में क्या सम्बन्ध है वर्णन करो।

अध्याय २०

प्रांगोदीय (Carbohydrates)

प्रांगोदीय ऐसे संयोग हैं जिनका महत्व आर्थिक दृष्टि से बहुत अधिक है। ये बहुत प्रचुरता से खाद्य के रूप में और कागज, वस्त्र, सुषव, स्फोट तूल (gun cotton), कोशाध्वाभ (celluloid) इत्यादि के निर्माण में प्रयुक्त होते हैं। ये उद्भिद् जगत में बहुत विस्तार से और प्राणी जगत में उससे कुछ कम विस्तार में पाये जाते हैं। इन संयोगों का नाम पहले-पहल प्रांगोदीय इसलिये पड़ा था कि इनमें उदजन और जारक उसी अनुभाग में विद्यमान हैं जिस अनुभाग में ये दोनों तत्व जल में विद्यमान हैं। इसलिए ये प्रांगार के उदीय (जलीय) व संक्षिप्त में प्रांगोदीय समझे जाते थे और इनका सामान्य सूत्र $\text{प्र}_{\text{क}}(\text{उ}_{२}\text{ज})_{\text{ख}}$ थे। पर अब ऐसे भी प्रांगोदीय ज्ञात हैं जिनमें उदजन और जारक के अनुभाग जल में इन तत्वों के अनुभाग से भिन्न हैं। कुछ प्रांगोदीय को छोड़कर शेष सब क्षिप्र होते हैं।

प्रांगोदीय का प्राकृतिक और प्राचीन वर्गीकरण था (१) मीठा, विलेय, और स्फट संयोग जिन्हें 'शर्करा' कहते थे और (२) स्वादहीन अविलेय और अस्फट संयोग जिन्हें 'अ-शर्करा' कहते थे। आजकल प्रांगोदीय को तीन वर्गों में विभक्त करते हैं। एक को **एक-शर्कराधु** (monosaccharoses) व **एक-शर्करेय** (monosaccharides) दूसरे को **द्वि-शर्कराधु** (disaccharoses) वा **द्वि-शर्करेय** (disaccharides) और तीसरे को **पुरु-शर्कराधु** व **पुरु-शर्करेय** (polysaccharoses or polysaccharides) कहते हैं। एक-शर्कराधु ऐसी शर्कराएँ हैं जिनमें २ से ११ परमाणु प्रांगार के होते हैं। इस वर्ग के अधिक

महत्व के वे हैं जिनमें ६ प्रांगार परमाणु होते हैं ऐसी शर्करा को षड्धु कहते हैं और इनके सामान्य सूत्र $प्र_६ उ_{१२} ज_६$ हैं। द्राक्ष-शर्करा वा द्राक्षधु और फलशर्करा व फलधु अधिक महत्व के षड्धु हैं। इनमें पहला एक पुरु-उदजार सुव्युद (poly-hydroxy-aldehyde) है और दूसरा एक पुरु-उदजार शौक्ता (poly-hydroxy ketone) है। सुव्युदिक शर्कराओं को सुविधु (aldoses) और शौक्तिक शर्कराओं को शौक्ताधु (ketoses) कहते हैं।

द्वि-शर्कराधु ऐसी शर्कराएँ हैं जिनमें प्रांगार के १२ परमाणु होते हैं। इनका सामान्य सूत्र $प्र_{१२} उ_{२२} ज_{११}$। इस वर्ग के अधिक महत्व के एकक ईक्षु-शर्करा वा ईक्षुधु, दुग्ध शर्करा वा दुग्धधु और यव शर्करा वा यवधु हैं। पुरु-शर्कराधु ऐसे संयोग है जिनका सूत्र है $(प्र_६ उ_{१०} ज_५)_स$। इस वर्ग के संयोग हैं मण्ड, काशाधु, दक्षी (dextrins) इत्यादि।

द्राक्ष-शर्करा, द्राक्षधु, मधुम, दक्षधु, $प्र_६ उ_{१२} ज_६$। मधुम प्रकृति में बहुत विस्तार से पाया जाता है। फल-शर्करा और ईक्षु-शर्करा के साथ साथ यह पुष्पों, पक्के फलों इत्यादि में विद्यमान है। पक्के द्राक्ष में होने के कारण इसका नाम द्राक्ष-शर्करा पड़ा है। मधुमेह के रोगियों के मूत्र में कभी कभी ८ से १० प्रतिशत तक यह पाया जाता है।

१—द्राक्ष-शर्करा ईक्षु शर्करा के जलांशन से प्राप्त हो सकता है। ईक्षु शर्करा को ९० प्रतिशत सुषव में प्रविलीन कर थोड़ा उदनीरिक अम्ल डालकर गरम करने से वह द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा में जलांशित हो जाता है। द्राक्ष शर्करा सुषव में कम विलेय होने के कारण अनार्द्र स्फट के रूप में निकल आता है।

$$\underset{\text{ईक्षु शर्करा}}{प्र_{१२} उ_{२२} ज_{११}} + \underset{\text{जल}}{उ_२ ज} = \underset{\text{द्राक्षधु}}{प्र_६ उ_{१२} ज_६} + \underset{\text{फलधु}}{प्र_६ उ_{१२} ज_६}$$
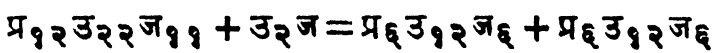
२—साधारणतया मन्द गुल्बारिक अम्ल के द्वारा मण्ड के जलांशन से द्राक्षधु प्राप्त होता है। खड़िया के डालने से गुल्बारिक अम्ल

निस्सादित हो जाता, फिर विलयन को अस्थ्यांगार पर छानकर विरंजत करते है। और तब शून्य भाजन में संकेन्द्रित कर स्फट बनने के लिए छोड़ देते है। इस प्रकार द्राक्षधु के स्फट प्राप्त होते हैं।

गुण। द्राक्षधु के जलीय विलयन से जो स्फट बनता है उस में जल के एक व्यूहाणु होते है। ऐसे स्फट ८६°श० पर पिघलते हैं। अनार्द्र द्राक्षधु १४६°श० पर पिघलता है। साधारण ताप पर यह अपनी परिमा के जल में विलेय है पर सुषव में प्रायः अविलेय होता है। यह काशित होता है। इसका विलयन दक्षावर्त है। इसी से इसका नाम एक समय दक्षधु पड़ा था।

द्राक्षधु एक सुष्युद संयोग है। इस से इस में सुष्युद के गुण विद्यमान हैं। सुष्युद के सदृश यह रजत भूयीय के तिक्तातु विलयन को ध्वात्विक रजत में प्रह्रासित कर सुन्दर रजत-दर्पण बनाता है। ताम्र शुल्बीय के क्षारिय विलयन को प्रह्रासित कर रक्त ताम्य जारेय का निस्साद देता है। दहविक्षार के साथ तपाने से विलयन बभ्रु हो जाता है।

संपरीक्षा ३७। एक स्वच्छ परीक्षण-नाल में रजत भूयीय के विलयन में मन्द तिक्ताति डालो। पहले निस्साद बनेगा फिर वह प्रविलीन जायगा। इस विलयन में द्राक्षधु के विलयन की कुछ बूँदे डालकर उष्ण जल के परीक्षण-नाल में रख दो। परीक्षण-नाल के पार्श्व में रजत का सुन्दर दर्पण बनेगा।

संपरीक्षा ३८। फेलिंग (Fehling) विलयन के ५ घ॰ शि॰ मा॰ में द्राक्षधु विलयन की कुछ बूँदे डालो और उससे उबालो। पहले पीत और पीछे रक्त निस्साद प्राप्त होगा।

संपरीक्षा ३९। द्राक्षधु के विलयन में थोड़ा दहविक्षार का विलयन डालकर धीरे धीरे तपाओ। विलयन का रंग पहले पीला और पीछे लाल हो जायगा।

अन्य सुष्युदों के सदृश, द्राक्षधु-उदश्यामिक अम्ल के साथ द्राक्षधु श्यामोदि और जारल तिक्की (hydroxylamine) के साथ द्राक्ष-जाकि

और शुक्तिक अम्ल की उपस्थिति में दर्शल उदाजीवी के साथ दर्शल उदाजीवा बनता है।

जारण से द्राक्षधु पहले मधुमिक (gluconic) और फिर शर्करिक अम्लों में परिणत हो जाता है। प्रबल भूयिक अम्ल से यह जारित हो तिग्मिक अम्ल बनता है।
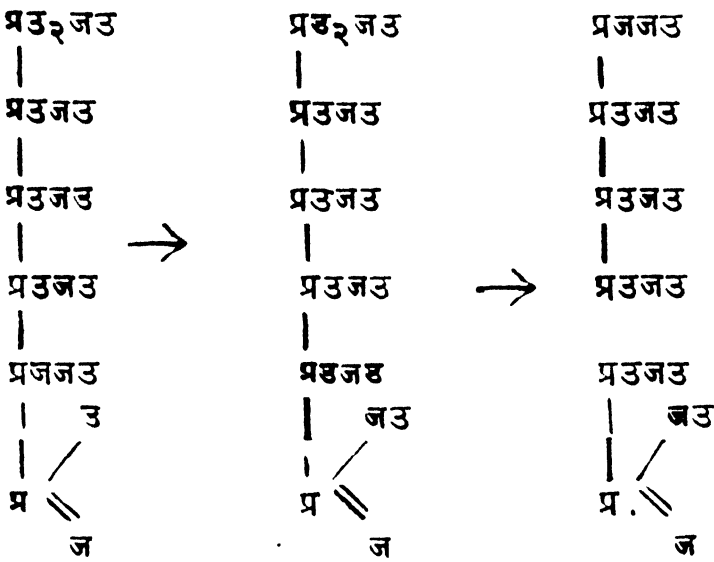
द्राक्षधु मधुमिक अम्ल (gluconic acid) शार्करिक अम्ल

जब द्राक्षधु को चूर्णक वा शोणातु जारेय के साथ साधते हैं तब उसमें सुषव डालने पर चूर्णातु वा शोणातु के मधुमीय (glucosate) का निस्साद प्राप्त होता है। ये संयोग प्रांगार द्वि-जारेय से विबद्ध होकर द्राक्षधु और धातु के प्रांगारेय बनते हैं। चूर्णातु मधुमीय का सूत्र है प्र$_{६}$उ$_{१२}$ज$_{६}$चूज ।

द्राक्षधु का किण्व से सरलता से किण्वन होता है और उससे प्रधानतः सुषव और प्रांगार द्वि-जारेय बनते हैं।

संस्थापना। यह सरलता से प्रमाणित हो सकता है कि द्राक्षधु पंच-जारल सुव्युद है। अतः इसका सूत्र होगा।

उ
प्रउ$_२$जउ–प्रउजउ–प्रउजउ–प्रउजउ–प्रउजउ—प्र ⟨
ज
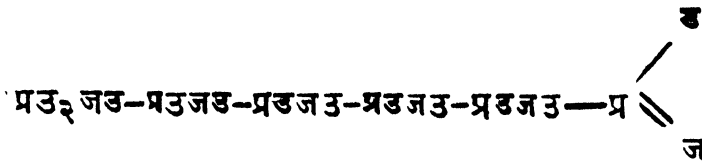
उपयोग। द्राक्षधु एक बहुमूल्य खाद्य पदार्थ है। मिष्ठान्न बनाने, फल संरक्षण, और मुरब्बे इत्यादि के निर्माण में यह उपयुक्त होता है। यविरा (beer) के बनाने में यव्य के स्थान में उपयोग में आता है। सुषविक पेय के निर्माण में भी यह प्रयुक्त होता है।

फल शर्करा, फलधु, वामधु, प्र$_६$उ$_{१२}$ज$_६$। अनेक फलों और पुष्पों में द्राक्षशर्करा के साथ साथ फल-शर्करा रहती है। ईक्षु शर्करा का जब मन्द शुल्वारिक अम्ल से जलांशन होता है तब द्राक्ष-शर्करा और फल शर्करा की सममात्रा प्राप्त होती है। सृष्ट से शुल्वारिक अम्ल को हर्यातु प्रांगारीय के द्वारा निस्सादित कर विलयन को छान लेते हैं। तब उसे संकेन्द्रित कर चूर्णाक-दुग्ध के साथ साधित करते है जिससे चूर्णातु फलीय (fructosate) और चूर्णातु मधुमीय (glucosate) बनते हैं। चूर्णातु मधुमीय विलेय होने के कारण विलयन में रह जाता और चूर्णातु फलीय (fructosate) निस्सादित हो जाता है। निस्साद को छान और धोकर प्रांगार द्वि-जारेय के द्वारा विबद्ध करते है जिससे चूर्णातु प्रांगारीय निस्सादित हो जाता और फलधु विलयन में रहजाता है। विलयन को प्रह्वाषित निपीड में संकेन्द्रित कर शीतल करने से फलधु के स्फट प्राप्त होते हैं।

गुण। फलधु संक्षेत्र के आकार का स्फट बनता है। यह ९५° श० पर पिघलता है। द्राक्षधु की अपेक्षा यह जल और सुषव में अधिक विलेय है। यह प्रकाशतः क्षिप्र होता है। इसके विलयन से ध्रुवीयण का तल बाएँ घूमता है। अतः यह वामावर्त है। इसी कारण इसका नाम एक समय वामधु पड़ा था।

फलधु पंच-जारल शौक्ल है। इसका संस्थापना सूत्र प्रउ$_२$जउ–प्रउजउ–प्रउजउ–प्रउजउ–प्रज–प्रउ$_२$जउ है। शौक्ल होने पर भी यह

तिक्काति रजत भूयीय और क्षारिय ताम्र शुल्वीयके बिलयनोंको प्रह्वासित करता है। इसकी यह विशेषता इस कारण है कि इसमें शीघ्रता से जारित होनेवाला मूल —प्रज-प्रउ२जउ– विद्यमान है।

द्राक्षधु के सदृश फलधु भी उदश्यामिक अम्ल, उदजारल-तिक्की और दर्शल उदाजीवो के साथ संयुक्त होता है। दर्शल उदाजीवी से जो ध्वजोवा (osazone) प्राप्त होता है वह वही है जो द्राक्षधु से प्राप्त होता है। फलधु के जारण से वम्रिक अम्ल और त्रिउदजारल घृतिक (butyric) अम्ल बनते हैं। किण्व से फलधु का भी किण्वन होता है और इससे सुषव और प्रांगार द्विजारेय बनते हैं पर यहाँ क्रिया द्राक्षधु की अपेक्षा मन्द होती है।

उपयोग। मधुमेह के रोगियोंको ईक्षु और द्राक्षशर्कराओं के स्थान में फल-शर्करा खिलाया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि फल-शर्करा पच जाता है जहाँ ईक्षु और द्राक्ष-शर्करा अपरिवर्तित निकल जाते हैं।

ईक्षु-शर्करा, खंडधु, ईक्षुधु प्र१२उ२२ज११। अन्य सब शर्कराओं से ईक्षुशर्करा अधिक महत्व का है। पौधों के विभिन्न भागों और अनेक फलों में यह पाया जाया है। बड़ी मात्रा में यह ईख और चुकन्दर से प्राप्त होता है। और अनेक पौधों, मक्का, ताड़, (maple) इत्यादि में यह अल्प मात्रा में पाया जाता है।

चुकन्दर से शर्करा। चुकन्दर की जड़ में प्रायः १३ से १४ प्रतिशत शर्करा रहती है। उन्नत जोताई और बोआई से इसकी मात्रा १६ से १७ प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। जड़ को इकट्ठा कर, धोते और बहुत पतले टुकड़ों में काटकर उष्ण जल के कुंड में जल के साथ भिगोते हैं। इससे ईक्षु शकरा और अन्य स्फट पदार्थ प्रसृति (diffusion) विधा से कोशा-भित्ति से निकल आते हैं। इस प्रकार से प्राप्त शर्करा-बिलयन के साथ शर्करा की प्राप्ति के लिए वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसे ईक्षु रस के साथ करते हैं।

ईक्षु से शर्करा। ऊख में १६ से १८ प्रतिशत तक शर्करा रहती है। निम्न कोटि के ऊख में कम शर्करा होती है। ऊख को काटकर उष्ण वेल्लन में अत्यधिक निपीड में दबाते हैं। इससे रस निकल आता है। ऐसे रस में शक्कर और जल के अतिरिक्त अल्प मात्रा में अप्रांगार लवण, श्वित्याभ (albuminoid) पदार्थ इत्यादि रहते हैं। इस रस को चूर्णक के दूध के साथ उबालते हैं जिससे प्रांगारिक अम्लों का क्लीवन और श्वित्याभ पदार्थों का आतंचन हो जाता है। चूर्णातु के लवण और आतंचित पदार्थ तलपर तैरते और कलछों से छानकर निकाल लिए जाते हैं। विलयन को अब प्रांगार द्विजारेय के साथ साधते हैं। इससे चूर्णक निस्सादित हो जाता और चूर्णक का ईक्षुध्वीय (saccharosate) विबद्ध हो जाता है। अब विलयन को अस्थ्यांगार के साथ उबाल कर विरंजन कर लेते हैं। कभी कभी शुल्बारि द्विजारेय से भी रस का विरंजन करते हैं (शुल्बितकरण विधा में)। अब रस को शून्यक भाजन (pan) में इतना संकेन्द्रित करते कि ठण्ढा होने पर उससे स्फट निकल आवे। अब ठण्ढा करने से स्फट का निक्षेप प्राप्त हो जाता है। जो अस्फट तरल रह जाता है उसे राब कहते हैं। राब से स्फट को मथित्र द्वारा अलग करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त शक्कर भूरे रंग का होता है और इससे भूरा वा कच्चा शर्करा कहते हैं। इस भूरे शर्करा का जल में घुला कर और आंगार पाव द्वारा शोधन करते हैं। इसे फिर शून्यक भाजन में संकेन्द्रित कर स्फट बनने के लिए छोड़ देते हैं। इस प्रकार श्वेत स्फटात्मक शर्करा प्राप्त होती है।

गुण। खंडधु जल से कठोर चतुःपार्श्व स्फट बनता है जो १६०°-१६१° श० पर पिघलता है। सामान्य ताप पर यह जल के तिहाई अंश में घुल जाता है। सुषव में यह अत्यल्प विलेय होता है।

यह स्वाद में मीठा और जीवाणु-नाशक गुणवाला होता है। सड़नेवाले पदार्थों को सड़ने से बचाता और इस कारण फल के संरक्षण में व्यवहृत होता है।

जब ईक्षु-शर्करा को अल्प जल के साथ तपाते और पिघला कर ठण्ढे होने के लिए छोड़ देते हैं तब उससे कांच सा पिंड प्राप्त होता है जिसे यव-शर्करा कहते हैं। जब इसे २००°-२१० श० तक तपाते हैं तब इससे जल निकल जाता और वह भूरा हो जाता है। इस भूरे पिंड को रंज-शार्कर (caramel) कहते हैं। यह मदिरा, साबुन इत्यादि के रंगने में बहुत अधिकता से प्रयुक्त होता है। और अधिक तपाने से इससे अग्निज्वाल्यवाति निकलती है और शर्करा-अगार पीछे रह जाता है।

मन्द शुल्बारिक अम्ल और अपवर्तंद (invertase) नामक विकर (enzyme) से खंडधु, द्राक्षधु और फलधु में जलांशित हो जाता है।

प$_{१२}$उ$_{२२}$ज$_{११}$ + उ$_{२}$ज = प$_{६}$उ$_{१२}$ज$_{६}$ + प$_{६}$उ$_{१२}$ज$_{६}$
खंडधु द्राक्षधु फलधु
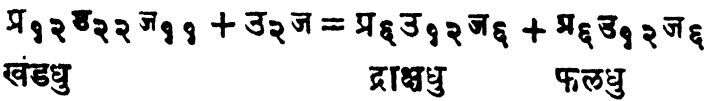
खंडधु प्रकाशतः क्षिप्र होता है। यह दक्षावर्त है और इसका आपेक्षिक परिभ्राम + ६६·५° है। जब यह जलांशित होता तब द्राक्षधु और फलधु की सम-मात्रा में परिणत हो जाता है। द्राक्षधु का आपेक्षिक परिभ्राम + ५२·५° है और फलधु का, − ७२°। इससे जलांशन के सृष्ट के परिभ्राम की प्रकृति बदल जाती है। सृष्ट वामावर्त हो जाता है। इसी कारण मधुम और फलधु के मिश्र को अपवृत्त शर्करा और इस विधा को अपवर्तन कहते हैं।

संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल से खंडधु झुलस जाता है और झाग देता है और उसमे शुल्बारि द्विजारेय और प्रांगार द्विजारेय निकलते हैं। संकेन्द्रित भूयक अम्ल से जारित हो तिग्मिक अम्ल प्राप्त होता है। खंडधु फेलिंग के विलयन को प्रह्रासित नहीं करता और न किण्व से किण्वन करता पर जब अम्ल से वा अपवर्तंद नामक विकर से जलांशित हो जाता तब फेलिंग विलयन को प्रह्रासित करता और किण्वन भी करता है। किसी नमूने में खंडधु की मात्रा अपवर्तन के बाद फेलिंग-विलयन से वा प्रकाश के ध्रुवीयण के तल के परिभ्राम के माप से

मापी जाती है। यह परिभ्राम शर्करामान (यह एक प्रकरण का ध्रुवीबमान है) के द्वारा मापा जाता है।

संस्थापना। खंडधु का व्यूहाणु सूत्र प$_{१२}$ उ$_{२२}$ ज$_{११}$ है। इसका संस्थापना सूत्र जटिल है। इसमें कोई सुव्युदिक वा यौक्तिक मूल नहीं होता। यह अ-प्रह्लासक शर्करा है।

दुग्ध शर्करा, दुग्धधु, प$_{१२}$ उ$_{२२}$ ज$_{११}$। ४ से ८ प्रति शत तक यह दूध में रहता है और उसी से प्राप्त होता है। दुग्ध-धु को प्राप्त करने के लिए दूध से पहले स्नेह और प्रभूजिन को निकाल लेते हैं। स्नेह को मथित्र द्वारा निकाल लेते। प्रभूजिन को वृक्कि वा मन्द शुक्तिक अम्ल द्वारा आतंचन कर छानकर निकाल लेते हैं। मट्ठे में अब दुग्धधु रह जाता है। इसे शून्यक भाजन में संकेन्द्रित कर स्फट बनने के लिए ठण्ढा होने को छोड़ देते हैं। उससे दुग्धधु निकल आता है। इस आम सृष्ट को अस्थ्यांगार के साथ उबाल कर विरंजितकर स्फट बनाते हैं। इससे कठोर तिर्यग्वर्ग स्फट प्राप्त होते हैं। दधिक (cheese) के निर्माण में दुग्ध-धु एक उप सृष्ट है।

दुग्ध-शर्करा के स्फट को तपाने से १४०° श० पर यह अजल हो जाता और २०५° श० पर विबन्धन के साथ पिघलता है। यह जल में विलेय है और स्वाद में मीठा होता है। ईक्षु-शर्करा से कम मीठा होता है।

जलांशन से यह मधुम और क्षीरधु (galactose) में परिणत हो जाता है।

$$\text{प}_{१२}\ \text{उ}_{२२}\ \text{ज}_{११} + \text{उ}_{२}\ \text{ज} = \underset{\text{मधुम}}{\text{प}_{६}\ \text{उ}_{१२}\ \text{ज}_{६}} + \text{प}_{६}\ \text{उ}_{१२}\ \text{ज}_{६}$$

दुग्धधु फेलिंग विलयन को प्रह्लासित करता है। अतः यह प्रह्लासक शर्करा है। दर्शल उदागीवी के साथ यह दुग्धध्वजीवा (lactosazone) बनता है। किण्व से इसका किण्वन नहीं होता पर दुग्धिक अम्ल कीटाणुओं से सरलता से इसका किण्वन होकर दुग्धिक अम्ल प्राप्त होता है। दही का खट्टापन दुग्धिक अम्ल के

कारण ही है। वुग्धिक अम्ल भैषज और रजत-दर्पण के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

मण्ड, (प्र$_{६}$ उ$_{१०}$ ज$_{५}$)$_{स}$। उद्भिद जगत में मण्ड बहुत प्रचुरता से पाया जाता है। पौधों के विभिन्न भागों जैसे जड़, कन्द इत्यादि में रहता है। छोटे पौधों के लिए संञ्चित खाद्य का काम करता है। यह प्रधानतः आलू (जिसमें १५ से २० प्रतिशत मण्ड रहता है) चावल (७५ से ८० प्रतिशत मण्ड) मक्का (प्रायः ६५ प्रतिशत मण्ड) और गेहूँ (६० से ६५ प्रतिशत मण्ड) से प्राप्त होता है।

मण्ड का निर्माण। मण्ड वाले पदार्थों को जल से मृदु बनाकर उन्हें पीसते और तब जल-प्रवाह से धोकर सूक्ष्म चलनी में ले जाते हैं। मण्ड के सूक्ष्म दाने जल के साथ चलनी के छेद से निकल जाते पर ग्लुटेन (gluten), कोशाधु और अन्य पदार्थों के मज्जक (pulp) छेद से नहीं निकलते। दुग्ध सा तरल को रख छोड़ने पर लेपी के रूप में मण्ड बैठ जाता। इसे निकथठन से बार बार धोकर फिर धीरे धीरे सूखाते हैं।

गुण। विभिन्न पदार्थों से प्राप्त मण्ड अणवीक्ष में भिन्न भिन्न आकार का देखा जाता है। गेहूँ और आलू से प्राप्त मण्ड के रूप बड़े होने पर निम्न प्रकार के देख पड़ते हैं (चित्र ३०)।

आलू का मण्ड (चित्र ३०) गेहूँ का मण्ड

मण्ड श्वेत चूर्ण होता है जो शीतल जल में अविलेय है। पर जल की अल्पमात्रा के साथ तपाने से इसकी कणिका (granule)

फूलकर फट जाती है। इस प्रकार जो समावयव (homogeneous) सूक्ष्म का पिंण्ड प्राप्त होता है उसे मण्ड-लेपी कहते हैं। यह वस्त्रों को कड़ा करने और गोंद के रूप में व्यवहृत होता है। मण्ड के विलेय भाग को कणिकाधु (granulose) कहते हैं। श्यानेक्षीय (cryoscopic) रीति से इसका जो व्यूहाणुभार प्राप्त होता है उससे इसका व्यूहाणुसूत्र $प्र_{१२००}$ $उ_{२०००}$ $ज_{१०००}$ आता है।

जंबुकी के साधन से मण्ड सुन्दर नील वर्ण देता है जो उष्ण करने से लुप्त हो जाता पर ठण्ढे होने पर फिर निकल आता है। मन्द अम्लों से उबालने से मण्ड पहले दक्षीमें फिर मधुम में परिणत हो जाता है। विभेद विकर के सहयोग से मण्ड से दक्षी और यवधु प्राप्त होते हैं। दक्षी जटिल संयोग हैं जिनका मात्रिक सूत्र वही है जो मण्ड का, $प्र_{६}$ $उ_{१०}$ $ज_{५}$ पर ये मण्ड से कम जटिल होते हैं।

$$प्र_{६}\ उ_{१०}\ ज_{५} + स\ उ_{२}\ ज = स\ (\ प्र_{६}\ उ_{१२}\ ज_{६}\ )$$

मण्ड मधुम

हमारे खाद्य का मण्ड प्रमुख अंग है। मण्ड के पाचन में मण्ड का जलांशन वैसा ही होता है जैसा ऊपर दिया हुआ है। पाचन विधा में मण्ड पहले शर्कराओं में परिणत होता है और तब पचता है। मण्ड का मण्ड के रूप में ही हमारे शरीर में पाचन नहीं होता।

मण्ड स्वादहीन अस्फटात्मक और जल में अत्यल्प विलेय पदार्थ है। इसके प्रतिकूल शर्कराएँ मीठी, स्फटात्मक और जल में विलेय होती हैं। मण्ड जंबुकी में नीलवर्ण देता है पर शर्कराओं और जंबुकी के बीच ऐसी कोई क्रिया नहीं होती।

दक्षी (dextrins) $(\ प्र_{६}\ उ_{१०}\ ज_{५}\ )_{स}$। मण्ड के जलांशन से पदार्थों का मिश्र प्राप्त होता है। जिसे दक्षी कहते हैं। मण्ड के २१०° श० तक तपाने वा मन्द अम्ल के साथ तपाने वा केवल विभेद की क्रिया से दक्षी प्राप्त होता है।

दक्षी आपीत अस्फटात्मक क्षोद संयोग है। जल में घुलकर यह स्वच्छ निर्यासलेपी (mucilage) बनता है। यह सम्भवतः अनेक संयोगों का मिश्र है जिनके मात्रिक सूत्र $प्र_६ उ_{१०} ज_५$ है। अधिक मात्रा में यह गोंद लेपी, सजकद्रव्य (sizing agent) के रूप में ब्रिटिश गोंद व मण्ड गोंद के नाम से प्रयुक्त होता है। छींट की छपाई में रंग-वाहक के रूप में भी प्रयुक्त होता है।

कोशाधु, $(प्र_६ उ_{१०} ज_५)_{स}$ । उद्भिद जगत में प्रकृति में कोशाधु बहुत विस्तार से फैला हुआ है। पौधों के कोश-दीवाल का सारभूत संघटक है और उद्भिद तन्तुओं का ढाँचा इसी का बना होता है। सबसे शुद्ध रूप में प्रकृति में यह कर्पास में होता है। कर्पास, सनई, पटुआ, जूट से यह प्राप्त हो सकता है। इन पदार्थों को मन्द दह विक्षार से पहले साधकर फिर उदनीरिक अम्ल और अन्त में ठदतरस्विक अम्ल से साधने से प्रायः शुद्ध कोशाधु प्राप्त होता है। सर्वश्रेष्ठ स्वीडन-पत्र (Swedish paper) कर्पास से उपर्युक्त विधि से प्राप्त होता है। इसमें कोशाधु शुद्धतम रूप में रहता है।

कोशाधु के गुण। भिन्न भिन्न उद्गमों से प्राप्त कोशाधु देखने में भिन्न भिन्न लगते हैं और उनके गुण भी भिन्न भिन्न होते हैं। यह जल में अविलेय होता है पर ताम्र शुल्बीय के तिक्ताति विलयन में घुल जाता है। इस विलयन से अम्लों के द्वारा कोशाधु अपरिवर्तित निस्सादित हो जाता है।

कोशाधु अन्य प्रांगोदीय की तुलना में निष्क्रिय होता है। नीरजी वा दुराम्री से किंचित ही कोई क्रिया होती है।

शाका-हारी पशु कोशाधु को पचा लेते हैं। संकेन्द्रि शुल्बारिक अम्ल से जल निकल जाता और इससे वह झुलस जाता है। मन्द उदनीरिक अम्ल से यह पहले दक्षी में, फिर मधुभ में जलांशित हो जाता है। कुछ संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल से सामान्य कागज चीमड़ा और पारभासक हो जाता है। ऐसे कागज को चर्म (parchment)

पत्र कहते हैं। कोशाधु को यदि दाह क्षारक के प्रबल विलयन में डुबाया जाय तो वह मोटा हो जाता, उसकी दीवालें श्लिष्ट भूत (jelatinised) हो जाती है और उसमें एक विशेष कौशेय द्युति आजाती है। तूल के इस प्रकार के साधन की विधा को मरसरी-करण (mercerising) कहते है। मरसरीकृत तूल दह क्षारक के प्रबल विलयन में डूबाने से प्राप्त होता है।

कोशाधु का संकेन्द्रित शुल्वारिक अम्ल और भूयिक अम्ल के मिश्र के साथ साधने से कोशाधु त्रिभूयीय जिसे साधारणतः स्फोट तूल कहते हैं, प्राप्त होता है। जब स्फोट तूल को दबाकर गोली कोश (cartridges) बनाया जाता और उसका अधि स्फोटन (detonation) होता है तब वह शक्ति-शाली उत्स्फोट बनता है। कोशाधु के निम्न भूयीय श्लेषेव (collodion) और कोशाध्वाभ (celluloid) बनते है। कोशाधु के निम्न भूयीय को सुषव और दक्षु में प्रविलीन करने से श्लेपेव (collodion) प्राप्त होता है। कृत्रिम कौशेय के उत्पादन में यह प्रयुक्त होता है।

अल्प भूयीयित भूय-कोशाधु को कपूर के साथ सुषव में प्रविलीन कर अभिघट्य (plastic) बनता है जिसे किसी आकार में भी बना सकते हैं। ऐसे पदार्थ कोशाध्वाभ के बने कहे जाते हैं। इसका प्रधान दोष उनकी अभिज्वलता है।

कोशाधु के गुण। तूल और जूट के वस्त्र बनते है। काठ, जूट और तूल के कोशाधु से कागज बनते हैं। स्फोट-तूल जो कोशाधु से प्राप्त होता है एक बहुत अधिक उपयोग होनेवाला उत्स्फोट है। श्लेषेव और कोशाध्वाभ के निर्माण में भी कोशाधु प्रयुक्त होता है। कृत्रिम कौशेय, कृत्रिम चर्म, प्रलाक्ष (paint) के निर्माण में भी कोशाधु प्रयुक्त होता है।

प्रश्न

१—प्रांगोदीय क्या हैं और प्रकृति में कैसे पाये जाते हैं। उनके सामान्य संरचना के सम्बन्ध में क्या जानते हो।

२—भांगोदीय का वर्गीकरण कैसे होता है ? उनके विभिन्न वर्गों को उदाहरण के साथ बताओ, उनका लक्षण लिखो।

३—मधुम का संरचना सूत्र क्या है। ईक्षु-शर्करा से मधुम कैसे प्राप्त होता है। कुछ महत्व के गुणों और उपयोगों का उल्लेख करो।

४—मधुम पर निम्न प्रतिकारकों की क्या क्रियाएँ होती है।

(१) रजत भूयीय के तिक्ताति विलयन का

(२) ताम्र शुल्बीय के क्षारिय विलयन का

(३) दह विक्षार विलयन का

(४) दर्शल उदजीवी का

५—फल-शर्करा प्रकृति में कहां पाया जाता है। ईक्षु-शर्करा से इसे कैसे प्राप्त करोगे ? इसके अधिक महत्व के गुणों और उपयोगो का वर्णन करो।

६—(१) चुकन्दर (२) ऊख से ईक्षु शर्करा कैसे प्राप्त होती है ? किन बातों में यह द्राक्ष शर्करा से भिन्न होती है।

७—ईक्षु-शर्करा के अपवर्तन का क्या आशय है ? मन्द और संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल का ईक्षु-शर्करा पर जो क्रियाएँ होती है उनका वर्णन करो।

८—ईक्षु-शर्करा से सुषव कैसे प्राप्त होता है ? विलयन में ईक्षु-शर्करा का आगणन कैसे होता है ?

९—मयड क्या है ? यह किससे और कैसे प्राप्त होता है ?

१०—निम्न पदार्थों के मयड पर क्या क्रियाएँ होती हैं।

(१) अंबुकी विलयन का

(२) उबलते जलका

(३) उबलते मन्द शुल्बारिक अम्ल का

११—कोशाधु क्या है और किस काम में आता है ? इससे जो पदार्थ प्राप्त होते हैं उनमें अधिक महत्व के कुछ का वर्णन करो।

१२—किन गुणों और प्रतिक्रियाओं से तुम ईक्षु-शर्करा मधुम, फलाद् और मयड को पहचानोगे ?

अध्याय २१

सौरभिक संयोग

(Aromatic Compounds)

प्रांगारिक रसायन के इतिहास के आदिकाल में कुछ ऐसे पदार्थ थे जैसे धूपियास (balsam), उद्यास, तारपीन, दालचीनी, तींता बादाम, लवंग, निम्बु के तैल इत्यादि जिन्हें स्नैहिक वर्ग के संयोगों में नहीं रख सकते थे। इन पदार्थों में सौरभ या सुगंध थी। इसलिए इन्हें सौरभिक कहने लगे। आजकल सौरभिक संयोगों में बहुत अधिक संख्या में ऐसे संयोग हैं जिनमें कोई सौरभ नहीं होता पर इन सब संयोगों को स्नैहिक संयोगों से विभेद करने के लिए सौरभिक कहते हैं। जिस प्रकार स्नैहिक संयोगों में उदांगार, सुषव, सुव्युद, शोष्म, अम्ल इत्याद होते हैं उसी प्रकार सौरभिक संयोगों में भी ऐसे ही संयाग होते हैं। स्नैहिक और सौरभिक संयोगों में कोई मौलिक भेद नही है। पर कुछ ऐसे विशेष लक्षण है जिनमें सौरभिक संयोग स्नैहिक संयोगों से विभिन्न होते हैं। इस कारण इन दोनों समूहों के संयोगों में भेद रखना उचित समझा जाता है। भेद रखने के अनेक कारणों में निम्न लिखित महत्व के हैं।

१—सौरभिक संयोगों में प्रांगार परमाणु के वलय या चक्र होते हैं अर्थात् इनमें प्रांगार के परमाणु संवृत्त शृंखला में स्थित होते है। इसके विपरीत स्नैहिक संयोगों में प्रांगार परमाणु विवृत्त शृङ्खला में स्थित होते हैं।

२—सौरभिक संयोगों की कुछ प्रतिक्रियाएँ अनूठी होती हैं और ऐसी प्रतिक्रियाएँ स्नैहिक संयोगों में नहीं पाई जातीं। उदाहरण स्वरूप मृदुवसा पर संकेन्द्रित शुल्बारिक और भूयिक अम्लों की कोई क्रियाएं

नहीं होती पर ये .अम्ल सौरभिक उदांगारों को शीघ्रता से आक्रान्त करते हैं।

३—अधिक जटिल सौरभिक संयोगों में ७, ८, ९ या ९ से अधिक प्रांगार परमाणु होते हैं। ये जब विबद्ध किये किये जाते हैं तब उनसे ऐसे संयोग प्राप्त होते हैं जिनमें प्रांगार के परमाणुओं की संख्या कम होती है। पर जब इन संयोगों से ऐसे संयोग प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है जिनमें प्रांगार के परमाणुओं की संख्या ६ से कम हो तो ऐसे प्रयत्न में उनके व्यूहाणु पूर्ण रूप से विछिन्न हो जाते और संयोगों के सौरभिक गुण लुप्त हो जाते हैं। विरालेन्य (toluene) का सूत्र $प्र_७ उ_८$ है। इसके जारण से धूपिक अम्ल प्राप्त होता है जिसमें प्रांगार के ७ परमाणु विद्यमान है। धूपिक अम्ल से धूपेन्य प्राप्त हो सकता है जिसमें प्रांगार के ६ परमाणु हैं। यदि धूपेन्य को जारण से विबद्ध करने की चेष्टा की जाती है तो उससे प्रांगार द्वि-जारेय प्राप्त होता है जिसमें प्रांगार का केवल एक परमाणु विद्यमान है, इससे मध्य के संयोग नहीं प्राप्त होते। ऐसा मालूम होता है कि सब सौरभिक संयोगों में प्रांगार के ६ परमाणु होते है और ये किसी विशेष रीति से परस्पर संबद्ध है। वास्तव में सौरभिक संयोग धूपेन्य नामक सरलतम उदांगार से निकले हैं। इस उदांगार का सूत्र $प्र_६ उ_६$ है।

धूपेन्य (Benzene) की संरचना। सौरभिक वर्ग का धूपेन्य सरलतम उदांगार है। इसलिए प्रारम्भ में ही इसकी संरचना का अध्ययन कर लेना उचित है। धूपेन्य की सरचना का अध्ययन निश्चित रूप से केक्यूले ने किया था। उन्होंने ही इसकी आधुनिक संरचना दी। इससे सौरभिक संयोगों के अध्ययन में बहुत प्रोत्साहन मिला।

अन्त्य विश्लेषण (ultimate analysis) और व्यूहाणु-भार के निश्चयन से इसका व्यूहाणु सूत्र $प्र_६ उ_६$ प्राप्त हुआ। ऐसे संयोगों में अनतुबिद्ध संयोगों का गुण होना चाहिए पर इसमें अनतुबिद्ध संयोगों के कुछ गुण तो है पर कुछ गुणों का बिलकुल अभाव है। उद-दुरिक

अम्ल और दहातु अति-लोहकीय से इसपर कोई क्रिया नहीं। अननु-विद्ध उदांगार पर निरजी और दुराग्री की तत्काल क्रिया होती है। पर धूपेन्य पर इनकी तत्काल कोई क्रिया नहीं होती। धूपेन्य विशेष परिस्थितियों में नीरजी, दुराग्री वा उदजन के साथ संकलन संयोग बनता है पर इन संयोगों के बनने में केवल ६ परमाणु लगते हैं जहाँ प्र$_{६}$ उ$_{६}$ सूत्र के स्नैहिक संयोगों में ८ परमाणु लगना चाहिए। इन कारणों से केक्यूले ने धूपेन्य को चक्रिक संरचना प्रदान की जिसमें प्रांगार के ६ परमाणु मिलकर एक वलय का आकार धारण करते हैं। यह आकार षटकोण (hexagon) का है। संमितीय षटकोण निम्न रूप धारण करता है।
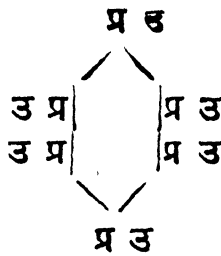
इस चक्रिक संरचना से इस संयोग के स्थायी होने की व्याख्या सरलता से हो जाती है। इससे इसकी भी व्याख्या हो जाती है इसे पूर्ण अनुवेधन के लिए आठ के स्थान में ६ ही उदजन परमाणु की क्यों आवश्यकता होती हैं, क्योंकि प्रांगार के दो बन्ध चक्र बनने में लग जाते हैं। चूँकि इस सूत्र में सब उदजन परमाणु एक सा स्थित है इस कारण यह सूत्र समितीय है और किसी भी उदजन के प्रतिस्थापन से केवल एक ही एक-आदिष्ट व्युत्पन्न (mono substituted derivative) प्राप्त होते हैं। प्र$_{६}$ उ$_{५}$ द एक-आदिष्ट संयोग हैं। यह अनेक रीतियों से कुछ ऋजु और कुछ गौण से प्राप्त हो सकता है। पर केवल एक ही एक-दुरा-धूपेन्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार केवल एक ही एक-नीर-धूपेन्य, एक-भूय-धूपेन्य प्राप्त होते है। धूपेन्य के ६ उदजन परमाणुओं में किसी एक के लवणजन या भूय मूल के

प्रतिस्थापन से प्रत्येक दशा में एक ही सृष्ट प्राप्त होता है। यह बात उपर्युक्त सूत्र से सरलता से स्पष्ट हो जाती है।

अब हम द्वि-व्युत्पन्नों की परीक्षा करें। ६ अंगार परमाणुओं को हम निम्न रीति से १ से ६ संख्या दे सकते हैं।

यदि धूपेन्य का कोई भी उदजन परमाणु—जैसे १ स्थान का उदजन परमाणु—किसी एक-संयुज तत्व वा मूलसे प्रतिस्थापित हो तो उसके बाद दूसरा मूल २, ३, ४, ५, ६ स्थानों में किसी एक का स्थान ग्रहण करेगा। सूक्ष्म परीक्षण से ज्ञात होता है १, २ और १, ६ स्थानें एक से हैं। वैसे ही १, ३ और १, ५ स्थानें एक से हैं। वास्तव में द्वि-व्युत्पन्न केवल तीन प्रकार के हो सकते हैं। यह बात निम्न सूत्रों से बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।
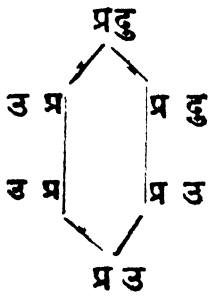
१:२ वा ऊर्ध्व-(ऊ·) द्वि-व्युत्पन्न
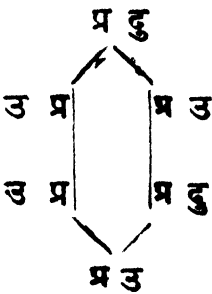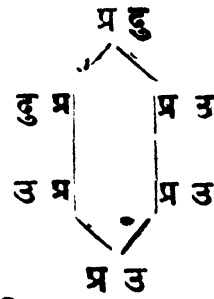
१:३ वा सम-(स-) द्वि-व्युत्पन्न
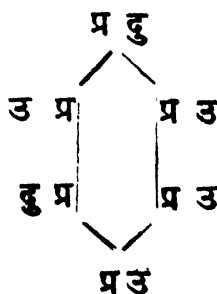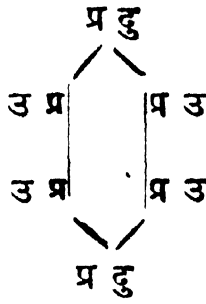
१:४ वा परा-(प-) द्वि-व्युत्पन्न

यह स्पष्ट है कि धूपेन्य के चक्रिक सूत्र से इसका तीन द्वि-व्युत्पन्न होना चाहिये। वास्तव में धूपेन्य के केवल तीन द्विनीर-द्विदुरा- द्विजम्बु-द्वि- भूय - धूपेन्य होते हैं, अधिक नहीं। इस प्रकार के समाजकों को स्थानसमाजक (position isomers) कहते हैं। स्थान समाजक के होने का कारण यह है कि धूपेन्य के चक्र में कोई भी मूल भिन्न-भिन्न स्थान को ग्रहण कर सकता है।

जिन संयोगों में १, २ वा १, ६ स्थानों में आदिष्ट विद्यमान हों उन्हें ऊर्ध्व-व्युत्पन्न, जिनमें १, ३ वा १, ५ स्थानों में आदिष्ट विद्यमान हों उन्हें सम-व्युत्पन्न और जिनमें १, ४ स्थानों में आदिष्ट विद्यमान हो उन्हें परा-व्युत्पन्न कहते हैं। इन व्युत्पन्नों के लिए क्रमशः ऊ-, स- और प- शब्द भी प्रयुक्त करते हैं।

धूपेन्य का उपर्युक्त सूत्र केक्यूले का दिया हुआ है। इस सूत्र में प्रांगार परमाणु के केवल तीन बन्ध प्रयुक्त हैं। दो बन्धों से पार्श्व के प्रांगार के दो परमाणु बँधे हुए हैं और तीसरे बन्ध से उदजन बँधा हुआ है। केक्यूले के प्रांगार के चतुःसंयुत सिद्धान्त के अनुसार प्रांगार के चार बन्ध होते हैं। प्रांगार के परमाणु का चौथा बन्ध क्या हुआ? केक्यूले का कहना था कि प्रांगार के परमाणु बारी बारी से एक और दो बन्धों से बँधे हुए हैं। इससे प्रांगार परमाणुओं के चारों बन्धों का समाधान हो जाता है। इससे केक्यूले के धूपेन्य की संरचना का रूप निम्न हो जाता है।
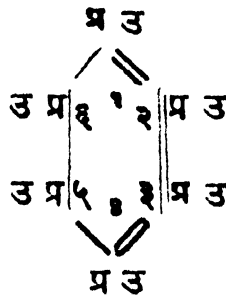
केक्यूले का धूपेन्य का सूत्र

इस सूत्र से लाभ यह है कि कुछ बातों में धूपेन्य अननुविद्ध संयोगों सा व्यवहार करता है इसका समाधान इस सूत्र से सरलता से हो जाता है। तीन द्वि-ग्रथ (double bond) होने के कारण धूपेन्य उदजन या दुराम्री के केवल ६ परमाणुओं से मिलकर अनुविद्ध संयोग बनता है। पर बारी बारी से प्रांगार परमाणुओं का एक वा द्वि-ग्रथ प्रदान करने से १, २ और १, ६ एक सा नहीं होते। १ और २ के बीच द्वि-ग्रथ विद्यमान हैं .पर १ और ६ के बीच ऐसा नहीं हैं। इस सूत्र मे तब तीन के स्थान में चार द्वि-व्युत्पन्न होने चाहिए। पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। इस आपत्ति को दूर करने के लिए केक्यूले ने प्रवैगिक (dynamic) सूत्र प्रदान किया। इस सूत्र में प्रांगार परमाणुओं के द्वि ग्रथ गतिशील होते हैं और प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। एक क्षण द्वि-ग्रथ १ और २ के बीच उपस्थित है और दूसरे क्षण १ और ६ के बीच दूसरे शब्दों में १,२ और १, ६ एक से हैं क्योंकि एक दूसरे में बदलते रहते हैं।
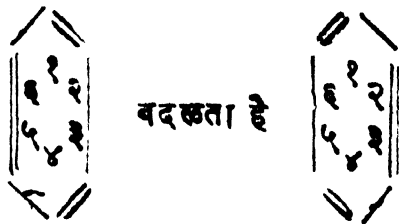
इस परिवर्तन के कारण ही धूपेन्य के ६ प्रांगार और ६ उदजन परमाणु संमितीय है। केक्यूले का यह सूत्र प्रायः सर्वमान्य है। और

लोगों ने धूपेन्य को अन्य सूत्र प्रदान किये हैं। इनमें आर्मजस्ट्रौंग और बाएर (Armstrong and Baeyer) का केन्द्रिक सूत्र महत्व का है। इस सूत्र में प्रांगार प्रमाणुओं के चतुर्थ बन्ध केन्द्र की ओर मुड़े हुए हैं।
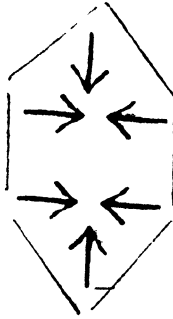
केन्द्रिक सूत्र

सौरभिक संयोगों के उद्गम। सौरभिक संयोगों का प्रमुख उद्गम अंगराल है। जब कोयले का नाशक आसवन होता है तब उससे आंगार-वाति के अतिरिक्त न्यंगार और वाति-प्रांगार भी आसवन बकभांड में बच जाते हैं और कुछ उत्पत सान्द्र और तरल प्राप्त होते हैं जो आप्लुत हो विशाल कूपों में संघनित हो इकट्ठे होते हैं। यह समूह दो स्तरों में बट जाता है। ऊपरी स्तर जलीय विलयन का होता है। इसे तिक्तातु तरल (ammoniacal liquor) कहते हैं। इसमें तिक्ताति और तिक्तातु लवण होते हैं। निचला स्तर काले गाढ़े तरल का होता है जिसमें विशेष प्रकार की गंध, पर अरुचि कर नहीं, होती है। इसे अंगराल कहते हैं। अंगराल में अनेक सौरभिक संयोगों के मिश्र होते हैं। इसका निबन्ध स्थायी नहीं होता। यह निबन्ध अंगार की प्रकृति और अंगार के नाशक आसवन के ताप पर निर्भर करता है। जब अंगराल का अयस बकभांड में प्रभागशः आसवन होता है तब उससे विभिन्न ताप पर अनेक प्रभाग प्राप्त होते हैं। जिस बकभांड में आसवन होता है उसकी धारिता २० से ३० टन तक होती है।

अंगराल का पहला प्रभाग १७०° श० तक प्राप्त होता है। अंगराल का यह ५ प्रतिशत होता है। इसे लघु तैल वा आम उत्तैल कहते हैं। इसमें धूपेन्य और इसके सधर्म, विरालेन्य और काष्ठेम्य होते हैं। इसमें अल्पमात्रा में विनीली (aniline) भी रहती है। इस प्रभाग को लघु तैल इसलिये कहते हैं यह जल से हल्का होता और जल के ऊपर तैरता है। यह प्रभाग धूपेन्य और विरालेन्य का प्रमुख उद्गम है। दूसरा प्रभाग (प्राय: १० प्रतिशत) १७०° और २३०° श० के बीच आसुत होता है। इस प्रभाग को 'मध्य तैल' कहते हैं। इसमें दर्शव (प्रांगविक अम्ल) और उत्तैलेन्य (naphthalene) होते हैं। तीसरा प्रभाग (प्राय: १५ प्रतिशत) २३०° और २७०° श० के बीच आसुत होता है। इसे गुरु तैल वा क्रव्यप तैल (creosote oil) कहते हैं। मध्य और गुरु तैल दोनों जल में डूब जाते हैं। २७०° श० से ऊपर जो प्रभाग प्राप्त होता है उसे हरि तैल वा विक्षामेयय तैल (anthracene oil) कहते हैं। यह तैल विक्षामेयय का प्रमुख उद्गम है। वकभांड़ में (प्रायः ६० प्रतिशत) जो काल अवशेष बच जाता है उसे निराल (pitch) कहते हैं।

अंगराल में वाणिजिक सृष्ट की प्रतिशतता निम्नलिखित है।

धूपेन्य और इसका सधर्म	१·४ प्रतिशत
प्रांगारिक अम्ल (दर्शव)	०·२ ,,
उत्तैलेन्य	४·० ,,
क्रव्यप तैल	२४·० ,,
विक्षामेयय	०·२ ,,
निराल	५५·० ,,
जल	१५·० ,,
जोड़	९९·८ प्रतिशत

हम देखते हैं कि प्रांगार-वाति और न्यंगार के निर्माण में अंगराल

एक उपसृष्ट है। यह उपसृष्ट धूपेन्य और इसके सधर्मी, दर्ग्रंव, विनीली, उत्तैलेन्य, और विश्रामेन्य प्राप्त करने का एक बहु-मूल्य उद्गम है।

प्रश्न

१—सौरभिक संयोग नाम क्यों पड़ा है? क्या सभी सौरभिक संयोगों में सुगंध होती है?

२—किन महत्वपूर्ण लक्षणों में सौरभिक संयोग स्नैतिक संयोगों से भिन्न होते हैं।

३—धूपेन्य की संरचना पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

४—किन कारणों से धूपेन्य को चक्रिक संरचना प्रदान की गई है? धूपेन्य वलय में प्रांगार के चतुर्थ बन्ध की क्या दशा है?

५—धूपेन्य के द्वि-व्युत्पन्नों की साभजता के सम्बन्ध में क्या जानते हो।

६—सौरभिक संयोगोके महत्वपूर्ण उद्गम क्या हैं? किन बातों में धूपेन्य तत्संवादी अननुविद्ध स्नैतिक उदांगार से भिन्न होता है?

७—लघु 'मध्य' और गुरु तैल क्या हैं और कैसे प्राप्त होते हैं?

अध्याय २२

सौरभिक उदांगार

(Aromatic hydrocarbons)

अङ्गाराल के प्रभागशः आसवन से जो लघु तेल प्राप्त होता है उसे पुनः आसवन करते हैं। जो प्रभाग ८०° और १५०° श० ताप के बीच असुत होता है उसीसे धूपेन्य, विरालेन्य और काष्ठेन्य प्राप्त करते हैं। इस प्रभाग का पहले शोधन करते हैं। इसे शुल्बारिक अम्ल के साथ तीव्रता से हिलाते हैं। इसी से विनीली सदृश पैठिक पदार्थ जो विद्यमान हैं वे विलेय शुल्बीय बनकर जलीय विलयन में निकल जाते हैं। अम्ल के जलीय विलयन को अब निकाल लेते हैं। तैल को फिर दाह विक्षार के विलयन के साथ साधते हैं। इससे चिपका हुआ शुल्बारिक अम्ल और प्रांगारिक अम्ल (यदि विद्यमान हो) निकल जाते हैं। तैल को अब जल से पूर्ण रूप से धोकर सुखाते और फिर एक लम्बा प्रभागशः आसवन बंश के साथ आसोत्र (still) में प्रभागशः आसवन करते हैं। इस प्रकार जो आसुत प्राप्त होता है उसे व्यवसाय में ९० प्रतिशत या ५० प्रतिशत धूपेन्य कहते हैं। ९० प्रतिशत धूपेन्य वह प्रभाग है जिसके १०० घ० शि० मा० के आसवन से १००° श० ताप पहुँचते पहुँचते केवल ९० घ० शि० मा० आसुत होता है। इसी प्रकार ५० प्रतिशत धूपेन्य वह प्रभाग है जिसके १०० घ० शि० मा० के आसवन से १००° श० ताप पहुँचते पहुँचते केवल ५० घ० शि० मा० आसुत होता है। इन सब प्रभागों में धूपेन्य, विरालेन्य और काष्ठेन्य रहते हैं। ९० वा ५० प्रतिशत धूपेन्य के सावधान आसवन से शुद्ध धूपेन्य, शुद्ध विरालेन्य और काष्ठेन्य प्राप्त होते हैं।

धूपेन्य (benzene) $प्र_{६}उ_{६}$ । १८२५ ई० में फैरेडे ने सम्पीडित अङ्गार-वाति के रम्भों में धूपेन्य का आविष्कार किया था। धूपेन्य शब्द धूपिक अम्ल से निकलता है। धूपिक अम्ल धूप से निकलता है। धूप में (लोहबान) यह अम्ल रहता है। इस अम्ल से १८३४ ई० में हौफमैन ने अङ्गराल में इसकी उपस्थिति का पता लगाया था। १८६५ ई० में केक्यूले ने इसकी संरचना निश्चित रूप से स्थापित की।

१—धूपिक अम्ल वा चूर्णातु धूपेय को विक्षार-चूर्णांक (sodalime) के साथ तपाने से शुद्ध धूपेन्य प्राप्त होता है।

$$प्र_{६}\ उ_{५}\boxed{प्र\ ज\ ज\ क्ष\ +क्ष\ ज}\ उ = प्र_{६}\ उ_{६} + क्ष_{२}\ प्र\ उ_{३}$$
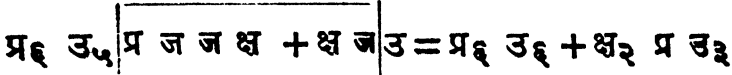
२—वर्थेलो ने शुक्लेन्य का रक्त-उष्ण नाल में प्रवहण कर धूपेन्य का संश्लेषण किया था।

$$३\ प्र_{२}\ उ_{२} = प्र_{६}\ उ_{६}$$
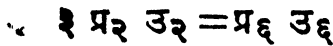
शुक्लेन्य से धूपेन्य के संश्लेषण की यह रीति स्नैहिक संयोग का सौरभिक संयोग में परिवर्तन का एक अच्छा उदाहरण है। इस प्रतिक्रिया का निरूपण इस प्रकार हो सकता है।
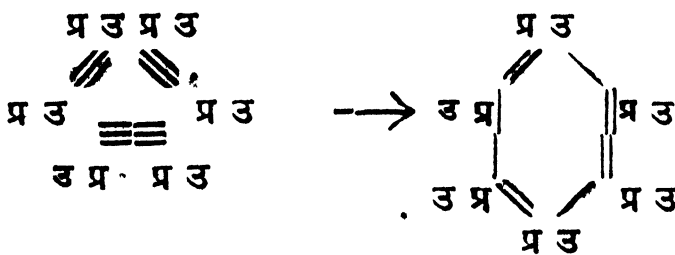
३—धूपेन्य का प्रमुख उद्गम अंगराल का लघु तैल प्रभाग है। वाणिज्य में इसी तैल के प्रभागशः आसवन से धूपेन्य प्राप्त होता है इसके आसवन में कार्यक्षम (efficient) प्रभाग वंश उपयुक्त करना चाहिये।

गुण। धूपेन्य एक रंगहीन चञ्चल तरल है जिसमें एक विशिष्ट सौरभ होता है। २०° श० पर इसका आपेक्षिक भार ०.८७४ है।

यह ५·४° श० पर पिघलता और ८०.५° श० पर उबलता है। यह अति अभिज्वाल्य है और शीघ्र जलने लगता है। यह चकासिनी पर सधूम ज्वाला से जलता है। यह जल में अविलेय है और उस पर तैरता है।

जारणकर्त्ताओं और प्रहासनकर्त्ताओं से साधारणतया धूपेन्य आक्रान्त नहीं होता। श्लेषाभीय महातु की उपस्थिति में उदजन साधारण तापपर धूपेन्य को प्रहासित कर षणउद-धूपेन्य $प्र_{६} उ_{१२}$ में परिणत करता है। यह क्रिया सूक्ष्म रूपक की उपस्थिति में १६०° श० पर होती है। सूर्य-प्रकाश की उपस्थिति में नीरजी और दुराग्नी से धूपेन्य षणनीरेय और षणदुरेय बनता है। ये दोनों संकलन संयोग हैं। अपेक्षतः ये अस्थायी होते हैं। लवणजन वोढ़ा (लौह, स्फट्यातु, जबुकी इत्यादि) की उपस्थिति में धूपेन्य वलय में आदेश होता है और उससे एक-, द्वि, इत्यादि व्युत्पन्न प्राप्त होते हैं। यह प्रतिक्रिया प्रायः उसी प्रकार की होती है जैसी लवणजन की प्रोदीन्य पर होती है। एक-संयुत मूल $प्र_{६}उ_{५}$- को दर्शल कहते हैं। इस प्रकार नीर-धूपेन्य का दूसरा नाम दर्शल नीरेय भी है।

$$प्र_{६}उ_{६} + नी_{२} = \underset{\text{नीर-धूपेन्य}}{प्र_{६}उ_{५}नी} + उ\ नी$$
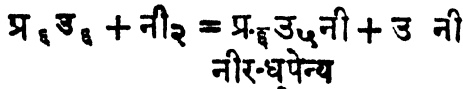
यह स्मरण रखने की बात है कि इन परिस्थितियों में धूपेन्य पर जम्बुकी कोई क्रिया नहीं होती।

मन्द भूयिक और शुल्बारिक अम्लों की धूपेन्य पर कोई क्रिया नहीं होती। प्रबल भूयिक अम्ल से धूपेन्य भूय-धूपेन्यों (nitrobenzene) में परिणत हो जाता है। इस क्रिया में संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल से सहायता मिलती है। इस विधा को भूयीयन (nitration) कहते हैं। धूपेन्य का भूयीयन होता है।

$$\underset{\text{धूपेन्य}}{प्र_{६}उ_{५}\boxed{उ + उ\ ज}} \underset{\text{भूयिक अम्ल}}{भू\ ज_{२}} = \underset{\text{भूय-धूपेन्य}}{प्र_{६}उ_{५}भू\ ज_{२}} + उ_{२}ज$$

प्र$_{6}$ उ$_{5}$ भू ज$_{2}$ + उ भू ज$_{3}$ = प्र$_{6}$ उ$_{4}$ (भू ज$_{2}$)$_{2}$ + उ$_{2}$ ज

भूय-धूपेन्य   द्विभूय-धूपेन्य
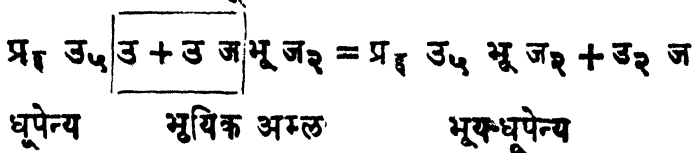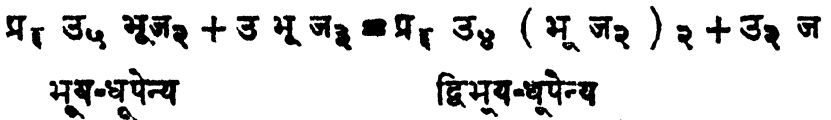
तीव्र शुल्बारिक अम्ल में उष्ण करने पर धूपेन्य प्रविलीन होकर धूपेन्य शुल्बायिक अम्ल (benzene sulphonic acid) में परिणत हो जाता है। इस विधा को शुल्बायन (sulphonation) कहते हैं। धूपेन्य का शुल्बायन होता है।

प्र$_{6}$ उ$_{5}$ उ + उ ज शु ज$_{3}$ उ = प्र$_{6}$ उ$_{5}$ शु ज$_{3}$ उ + उ$_{2}$ ज

धूपेन्य   शुल्बारिक-अम्ल   धूपेन्य शुल्बारिक अम्ल
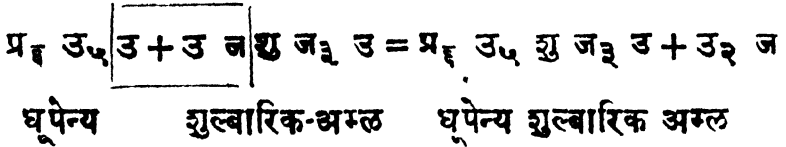
धूपेन्य और अन्य सौरभिक उदांगारों पर भूयिक और शुल्बारिक अम्लों की क्रिया सौरभिक संयोगों की विशेषता है। इन अम्लों की स्नैहिक उदांगारों पर कोई क्रिया नहीं होती। प्रोदीन्य और दक्षिराय पर भूयिक और शुल्बारिक अम्लों की साधारणतः कोई क्रिया नहीं होती।

उपयोग। अनेक प्रांगारिक पदार्थों के लिए धूपेन्य बहुत अच्छा विलायक है। इस कारण यह तैल, स्नेह इत्यादि के निस्सारण में और जलीय विलयन से प्रांगारिक तरलों के पृथक् करने में प्रयुक्त होता है। ऊनी और रेशम के वस्त्रों के स्वच्छ करने में अजलीय शोषक के रूप में भी प्रयुक्त होता है। धूपेन्य से अनेक उदांगार, सुव्युद, अम्ल, लवणजन व्युत्पन्न इत्यादि बनते हैं। धूपेन्य से भूय-धूपेन्य, नम्रविक अम्ल, कढ़विक अम्ल, दर्श-शुक्ति भी तैयार होता है।

विरालेन्य, प्रोदल धूपेन्य, दर्शल प्रोदीन्य (Toluene) प्र$_{6}$उ$_{5}$प्रउ$_{3}$। विरालेन्य शब्द विरालि-धूपियास से निकला है। क्योंकि इसी से पहले-पहल यह प्राप्त हुआ था। आजकल विरालेन्य का प्रमुख उद्गम अंगराल है। अंगराल से विरालेन्य प्राप्त करने की रीति का ऊपर में वर्णन हो चुका है। निम्न दो संश्लिष्ट रीतियों से भी प्रयोगशाला में यह तैयार हो सकता है।

(१) फिटिंग (Fittig) प्रतिक्रिया। दुरा-धूपेन्य को प्रोद्‌ल जंबेय के साथ क्षारातु की उपस्थितिमें तपाने से विरालेन्य प्राप्त होता है।

$$प्र_{६}उ_{५}|दु + २ क्ष + जं|प्रउ_{३} = प्र_{६}उ_{५}प्रउ_{३} + क्ष दु + क्ष जं$$
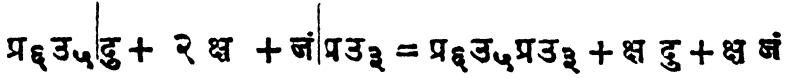
यह रीति सर्वव्यापी (universal) है और धूपेन्य के किसी भी सधर्मी के प्रस्तुत करने में प्रयुक्त हो सकती है। इस विधा में प्रोद्‌ल जंबेय के स्थान में यदि दक्षुल जंबेय प्रयुक्त होतो इससे दक्षुल धूपेन्य नामक संयोग—$प्र_{६}उ_{५}प्र_{२}उ_{५}$ प्राप्त होता है। यह रीति ठीक वुर्ज रीतिसी है जिससे स्नैहिक उदांगार प्राप्त होते हैं।

(२) फ्रीडेल-क्राफ्ट (Friedel-Craft) प्रतिक्रिया। इस प्रतिक्रिया में धूपेन्य को प्रोद्‌ल नीरेय के साथ प्रजलीय स्फट्यातु नीरेय के साथ तपाने से विरालेन्य प्राप्त होता है। यहां उद-नीरिक अम्ल निकलता और विरालेन्य बनता है। स्फट्यातु नीरेय ज्योंका त्यों रह जाता है। यह केवल आवेजक का कार्य करता है।

इस प्रतिक्रिया का उपयोग बहुत विस्तृत है। पर इससे केवल सौरभिक संयोग हीं प्राप्त होते है। धूपेन्य के स्थान में दाक्षिण्य का प्रयोग होतो कोई क्रिया नहीं होती है।

विरालेन्य की संरचना। फिटिग की प्रतिक्रिया से विरालेन्य का संश्लेषण इस संयोग की संरचना को स्पष्टतया प्रमाणित करता है।
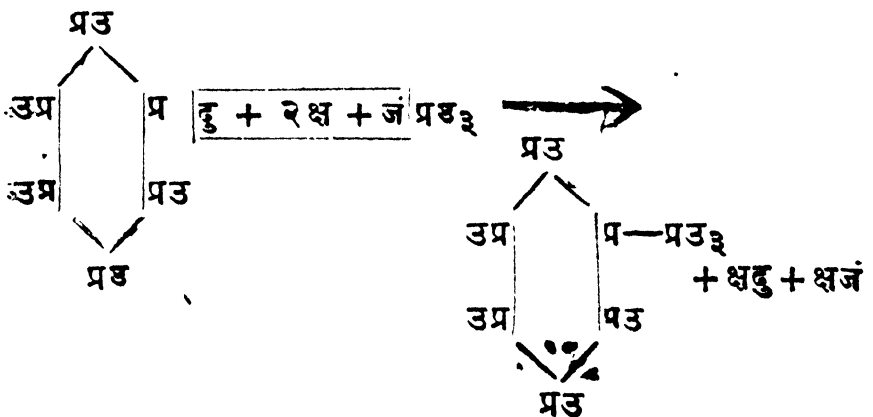
इससे प्रगट होता है कि धूपेन्य के एक उदंजन के स्थान में प्रोदल मूल के प्रविष्ट होने से विरालेन्य प्राप्त होता है। इस कारण विरालेन्य में एक दर्शल मूल और एक प्रोदल मूल होते हैं। दर्शल मूल, प्र$_{६}$उ$_{५}$ को कभी कभी सौरभिक व धूपेन्याभ अंश वा धूपेन्य केन्द्रक वा केवल केन्द्रक कहते हैं। प्रोदल मूल को विवृत्त शृङ्खल वा मृद्वसाभ कहते हैं। विरालेन्य में एक केन्द्रक और एक विवृत शृङ्खल होते है।

गुण। भौतिक और रसायनिक गुणों में विरालेन्य धूपेन्य सा होता है। यह रंगहीन चञ्चल तरल है जो ११०° श० पर उबलता है। इसमें विशिष्ट सौरभ होता है। यह जल से लघु और जल में अविलेय होता है। धूपेन्यसा यह भी चकाशिनी और सधूम ज्वाला से जलता है।

केन्द्रक और विवृत्त शृङ्खल के कारण विरालेन्य के रसायनिक गुण दो प्रकार के होते है। केन्द्रक बिलकुल धूपेन्य सा गुण रखता और विवृत शृङ्खल स्नैहिक उदांगार सा गुण रखता है। वोढ़ा की उपस्थिति, निम्न ताप पर और प्रकाश के अभाव में नीरजी की क्रिया केन्द्रक पर होती है और उससे, केन्द्रक-आदिष्ट संयोग बनते हैं। उबलते ताप पर वोढ़ा की अनुपस्थिती में सूर्य प्रकाश में विवृत शृङ्खल के आदिष्ट संयोग बनते है। उपर्युक्त दोनों दशाओं में विभिन्न सूत्र प्राप्त होते हैं।
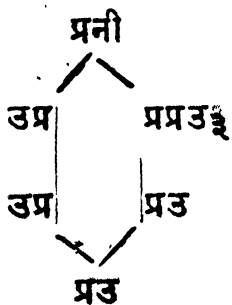
पहलीदशा में (नीर-विरालेन्य) | दूसरीदशा में (धूपल नीरेय)
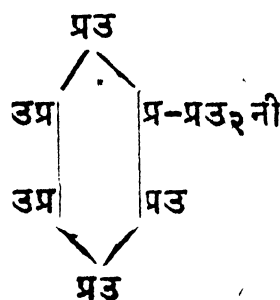
जब बिरालेन्य का जारण होता है तब केन्द्रक अविकृत रह जाता पर विवृत शृङ्खल जारित हो प्रांगजारल में परिणत हो धूपिक अम्ल बनता है।

बिरालेन्य धूपिक अम्ल
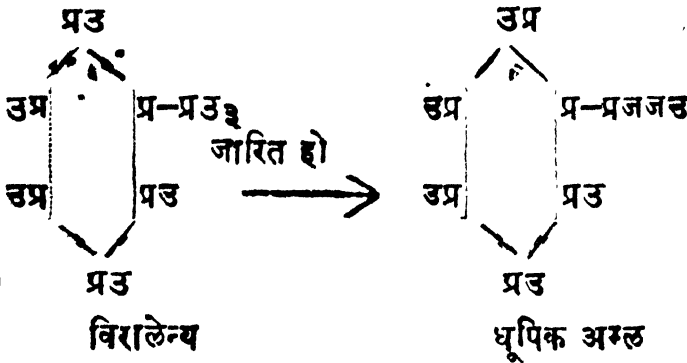
बिरालेन्य पर भूयिक और शुल्बारिक अम्लों की क्रियाओं से केन्द्रक के उदजन भूय और शुल्बाविक मूलों से प्रतिस्थापित होकर भूय·बिरालेन्य और बिरालेन्य शुल्बाविक अम्ल वैसे ही बनते हैं जैसे धूपेन्य में बनते हैं।

काष्ठेन्य, $प्र_8उ_{10}$। धूपेन्य में यदि दो उदजन के स्थान में दो प्रोदल मूल विद्यमान हों तो ऐसे संयोगों को काष्ठेन्य कहते हैं। काष्ठेन्य तीन सभाजिक रूपों में होता है।

ऊर्ध्व·काष्ठेन्य सम·काष्ठेन्य परा·काष्ठेन्य
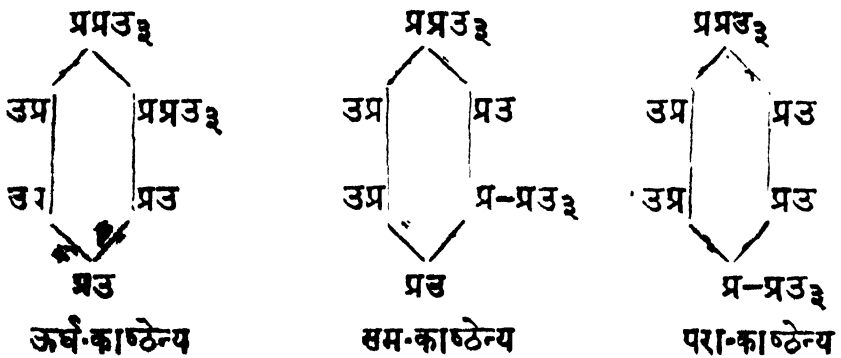
ये तीनों काष्ठेन्य अंगराल में होते है। सम·काष्ठेन्य की मात्रा अन्य दो से अधिक होती है। प्रभागशः आस्रवन से इन तीनों को पृथक् करना कठिन है। क्योंकि इनके बुदबुदांक एक दूसरे के बहुत

सन्निकट है। इनको पृथक करने में विशेष रीतियों का प्रयोग करना पड़ता है।

ऊर्ध्व-काष्ठेन्य	बुदबुदांक	१५२° श०
सम-काष्ठेन्य	,,	१३७° श०
परा-काष्ठेन्य	,,	१३७° श०

सौरभिक और स्नैहिक उदांगारों की तुलना।

१—स्नैहिक उदांगारों में प्रांगार परमाणु विवृत शृङ्खल में होते है पर सौरभिक उदांगारों में प्रांगार परमाणु संवृत शृङ्खल वा वलय संरचना में होते हैं।

२—स्नैहिक उदांगारों के प्रथम कुछ एकक रंगहीन वाति होते है। तब कुछ एकक रंगहीन तरल और शेष रंगहीन अथवा श्वेत सान्द्र होते हैं। सौरभिक उदांगार प्रायः सब ही रंगहीन तरल वा सान्द्र होते है।

३—स्नैहिक उदांगारों में प्रांगार की प्रतिशतता सौरभिक उदांगारों के प्रांगार की प्रतिशतता से कम होती है। इसीसे सौरभिक संयोग अधिक चकाचिनी ज्वाला के साथ तथा अधिक धूम के साथ जलते हैं।

४—स्नैहिक उदांगार फ्रीडल-क्राफ्ट प्रतिक्रिया नहीं देते। फ्रीडल-क्राफ्ट की प्रतिक्रिया सौरभिक उदांगारों की विशेषता है।

५—स्नैहिक वर्ग के अनुविद्ध उदांगार की भूयिक और शुल्बारिक अम्लों पर कोई क्रिया नहीं होती पर सौरभिक उदांगारों पर इनकी क्रिया होती है और भूयिक अम्ल से इनका भूयीयन और कुछ दशाओं में जारण भी और शुल्बारिक अम्ल से शुल्बायन होता है।

६—सामान्य जारण कर्त्ताओं से स्नैहिक वर्ग के अनुविद्ध उदांगार जारित नहीं होते पर इसी वर्ग के अननुविद्ध उदांगार शीघ्रता से जारित हो जाते हैं। सामान्य जारणकर्त्ताओं का धूपेन्बपर कोई क्रिया नहीं होती पर सौरभिक वर्ग के उन उदांगारों पर जिनमें शाखि

शृङ्खल होते हैं जैसे विरालेन्य और काष्ठेन्य इनकी क्रिया होती है और ये शीघ्रता से जारित हो जाते है।

प्रश्न

१—लघु तेल से धूपेन्य कैसे प्राप्त होता है? धूपेन्य के प्रयोग क्या हैं? ५० प्रतिशत धूपेन्य का क्या आशय है?

२—रसशाला में किन दो रीतियों से धूपेन्य प्राप्त हो सकता है? धूपेन्य के कुछ महत्वपूर्ण गुणों का वर्णन करो।

३—धूपेन्य और दाक्षिण्य के गुणों की तुलना करो।

४—धूपेन्य पर निम्न पदार्थों की क्या क्रियाएँ होती हैं उनकी समीकार के साथ व्याख्या करो।

(१) नीरजी

(२) संकेन्द्रित भूयिक अम्ल

(३) संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल

५—उन दो रीतियों का वर्णन करो जिनसे विरालेन्य प्राप्त हो सकता है। तुम कैसे प्रमाणित करोगे कि विरालेन्य प्रोदल धूपेन्य है?

६—निम्न प्रतिक्रियाओं की व्याख्या करो।

(१) फिटिग प्रतिक्रिया

(२) फ्रीडल-क्राफ्ट प्रतिक्रिया

(३) वुर्ट्ज़ प्रतिक्रिया

७—विरालेन्य के सम्बन्ध में (१) धूपेन्य केन्द्रक, (२) शाखि शृङ्खल की व्याख्या करो। केन्द्रक और शाखि शृङ्खल में नीरजी का प्रवेश कैसे होता है?

८—तीन प्रकार के काष्ठेन्य का विन्यास सूत्र क्या है। वे कहाँ से प्राप्त होते है?

९—धूपेन्य का प्रमुख उद्गम क्या है और उससे यह कैसे प्राप्त होता है? किन बातों में यह स्नैहिक उदांगारों से भिन्न है। इससे कितने एक-और द्वि-व्युत्पन्न प्राप्त होते हैं और क्यों?

———

अध्याय २३

धूपेन्य के कुछ व्युत्पन्न

(Benzene derivatives)

नीर-धूपेन्य (chlorobenzene), दर्शल नीरेय (Phenyl chloride) प्र६उ५नी। हम देख चुके हैं कि कुछ लवणजन बोढ़ा की उपस्थिति में धूपेन्य पर नीरजी की क्रिया से नीर-धूपेन्य बनता है।

१—धूपेन्य में स्फट्यातु-पारद मिथुन (aluminium-mercury couple) की उपस्थिति में शुष्क नीरजी के प्रवाह से उदनीरिक अम्ल निकलता और नीर-धूपेन्य बनता है। जब धूपेन्य में नीरजी का आवश्यक भार बढ़ जाता है तब प्रतिक्रियाको बन्द कर देते हैं। सृष्ट को अब दह विक्षार के मन्द विलयन के साथ हिलाते हैं। इससे उदनीरिक अम्ल दूर हो जाता है। इसे अब चूर्णातु नीरेय के साथ रखकर अजलीय बनाकर फिर आसुत करते हैं। १३०°-१३५° श० के बीच नीर-धूपेन्य का आसवन हो जाता है।

२— दर्शव पर भास्वर नीरेय की क्रिया से भी नीर धूपेन्य प्राप्त हो सकता है।

प्र६उ५जउ + भनी५ = प्र६उ५नी + भज नी३ + उनी

३—विनीली उदनीरेय (aniline hydrochloride) पर सैंडमेयर की क्रिया से नीर-धूपेन्य प्राप्त होता है।

नीर-धूपेन्य रङ्गहीन तरल है जिसमें विशिष्ट सुगन्ध होती है। यह १३२° श० पर उबलता है। यह जलसे भारी और उसमें अविलेय होता है। बिना किसी विकार के इसका आसवन हो जाता है।

अन्य केन्द्रकीय लवणजन संयोगों की भाँति नीर-धूपेन्य स्थायी होता है। लवणजन परमाणु इसके व्यूहाणु में अधिक दृढ़ता से

सम्बद्ध है। स्नैहिक लवणजन संयोगों में लवणजन परमाणु सरलता से उदजारल, तिक्ती, श्यामजन (cyanogen) और भूय मूलों से क्रमशः दहसर्जि, तिक्काति, दहातु श्यामेय और रजत भूयेय (nitrite) से प्रतिस्थापित हो जाते हैं। पर इन प्रतिकारकों की नीर-धूपेन्य पर कोई क्रिया नहीं होती।

यदि नीर-धूपेन्य का और नीरजन करें तो दूसरा नीरजी परमाणु ऊर्ध्व और पुरा स्थान में प्रविष्ट करता है। इससे ऊ-द्वि-नीर और पु-द्वि-नीर धूपेन्य का मिश्र प्राप्त होता है। नीर-धूपेन्य का भूयीयन और शुल्बायन भी धूपेन्य की भाँति ही तीव्र भूयिक और शुल्बारिक अम्लों से हो जाता है।

दुरा-धूपेन्य १५६° श० पर और जम्बु-धूपेन्य १८८° श० पर उबलता है। इनके गुण नीर-धूपेन्य सा ही हैं।

भूय-धूपेन्य, प्र$_{६}$उ$_{५}$भूज$_{२}$। संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल की उपस्थिति में तीव्र भूयिक अम्ल की धूपेन्य पर की क्रिया से यह संयोग प्राप्त होता है। इस क्रिया में बने जलको शुल्बारिक अम्ल निकाल लेता है। इससे भूयीयन की क्रिया द्रुत होती है। स्नैहिक भूय-संयोग इस रीति से उदांगार पर भूयिक अम्ल की क्रिया से नहीं प्राप्त हो सकते हैं।

$$\text{प्र}_{६}\text{उ}_{५}\boxed{\text{उ} + \text{उ ज}}\,\text{भूज}_{२} = \text{प्र}_{६}\text{उ}_{५}\text{भूज}_{२} + \text{उ}_{२}\text{ज}$$
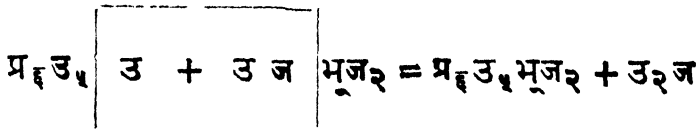
संपरीक्षा ४०। २५० घ० शि० मा० धारिता के पलिघ में संकेन्द्रित भूयिक अम्ल का (घनत्व १·४२) ५० धान्य और संकेन्द्रित शुल्बारिक अम्ल का ७५ धान्य मिला दो। और मिश्रको कमरे के ताप तक ठण्ढा होने दो। अब इस मिश्र में थोड़ा थोड़ा करके ५० घ० शि० मा० धूपेन्य डालो और प्रत्येक बार डालने पर उसे हिलाओ। इससे वह अधिक उष्ण न हो सकेगा। (५०°–६०° श०)। यदि अधिक उष्ण हो जाय तो उसे ठण्ढे जलके प्रवाह में

आधिक्य में डाल दो। द्वि-भूय-धूपेन्य निकल आवेगा। इसे छानकर सुषव से स्फट बनाओ।

स-द्विभूय-धूपेन्य रंगहीन सुच्याकार स्फट बनता है। यह ९०° श० पर पिघलता है। यह जल में अविलेय पर सुषव और दक्षु में विलेय है। उत्स्फोटक पदार्थों और रंजको के निर्माण में यह प्रयुक्त होता है।

भूय-धूपेन्य रसायनतः अक्रिय होता है। विभिन्न प्रह्लासन-कर्ताओं से विभिन्न सृष्ट प्राप्त होते हैं।

अम्लकर प्रह्लासनकर्ताओं—जैसे कुप्यातु, वा त्रपु वा अयस चूर्ण (filings) और उदनीरिक अम्ल वा शुक्तिक अम्ल व त्रप्य नीरेय और उदनीरिक अम्ल से विनीली (aniline) प्राप्त होता है।

प्र$_६$ उ$_५$ भू ज$_२$ + ६ उ = प्र$_६$ उ$_५$ भू उ$_२$ + २ उ$_२$ ज
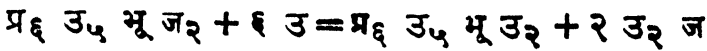
क्लीव प्रह्लासनकर्ताओं—जैसे कुप्यातु-ताम्र मिथुन अथवा पारद स्फट्यातु मिथुन और जल से भूय्य-धूपेन्य (nitrosobenzene) और दर्शल उदजारल तिक्की (phenyl hydroxylamine) प्राप्त होते हैं।

$$\text{प्र}_६ \text{ उ}_५ \text{ भू ज}_२ \xrightarrow{\text{२ उ}} \text{प्र}_६ \text{ उ}_५ \text{ भू ज} \xrightarrow{\text{२ उ}} \text{प्र}_६ \text{ उ}_५ \text{ भू उ ज उ}$$

भूय्य-धूपेन्य   दर्शल उदजारल तिक्की
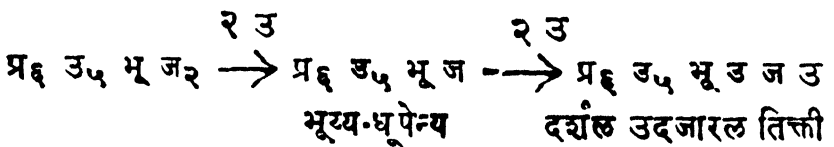
क्षारिय प्रह्लासन-कर्ताओं—जैसे कुप्यातु धूली (dust) और दह विक्षार अथवा त्रप्य नीरेय और दह विक्षार से—अजजार धूपेन्य (azoxybenzne), अज-धूपेन्य (azobenzene) और उदाज-धूपेन्य (hydrazo benzene) प्राप्त होते हैं।

$$\text{२ प्र}_{६}\text{ उ}_{५}\text{ भू ज}_{२} \longrightarrow \text{प्र}_{६}\text{ उ}_{५}\text{ भू}\overset{\text{४ उ}}{—}\text{भू प्र}_{६}\text{ उ}_{५} \longrightarrow \text{प्र}_{६}\text{ उ}_{५}\text{ भू}=\text{भू प्र}_{६}\text{ उ}_{५}$$

भूय धूपेन्य · अज-धूपेन्य

ज

अजजार-धूपेन्य

$$\longrightarrow \text{प्र}_{६}\text{ उ}_{५}\text{ भू उ}—\text{भू उ प्र}_{६}\text{ उ}_{५}$$
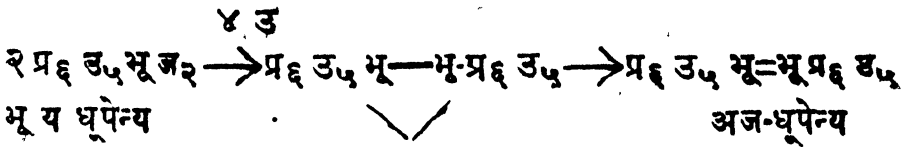
उदाज-धूपेन्य
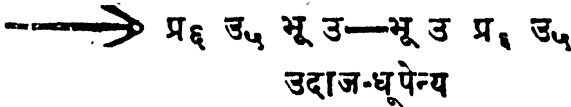
उपयोग। भूय-धूपेन्य सस्ता सुगंध और विनीली की प्राप्ति में उपयुक्त होता है।

विनीली (aniline) वा तिक्ती-धूपेन्य (aminobenzene) $\text{प्र}_{६}\text{ उ}_{५}\text{ भू उ}_{२}$। जिस प्रकार प्रोदीन्य का तिक्ताति व्युत्पन्न प्रोदल-तिक्ती है उसी प्रकार धूपेन्य का तिक्ताति व्युत्पन्न विनीली है।

$$\text{प्र उ}_{४} \longrightarrow \text{प्र उ}_{३}\text{ भू उ}_{२} \qquad \text{प्र}_{६}\text{ उ}_{६} \longrightarrow \text{प्र}_{६}\text{ उ}_{५}\text{ भू उ}_{२}$$
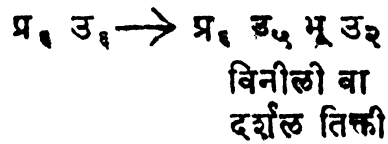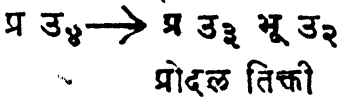
प्रोदल तिक्ती — विनीली वा दर्शल तिक्ती (phenylamine)

धूपेन्य के लवणजन-आदिष्ट सृष्ट पर तिक्ताति की क्रिया से विनीली नहीं प्राप्त होता है जैसा स्नैहिक संयोगों में होता है। पर भूय-धूपेन्य के जायमान उदजन (त्रपु और उदनीरिक अम्ल अथवा कुप्यातु और शुक्तिक अम्ल) के प्रह्रासन से यह प्राप्त होता है। यह क्रिया उसी प्रकार की है जैसी भूय-प्रोदीन्य से प्रोदल तिक्ती की प्राप्ति में होती है।

$$\text{प्र}_{६}\text{ उ}_{५}\text{ भू ज}_{२} + \text{६ उ} = \text{प्र}_{६}\text{ उ}_{५}\text{ भू उ}_{२} + \text{२ उ}_{२}\text{ ज}$$

$$\text{प्र उ}_{३}\text{ भू ज}_{२} + \text{६ उ} = \text{प्र उ}_{३}\text{ भू उ}_{२} + \text{२ उ}_{२}\text{ ज}$$
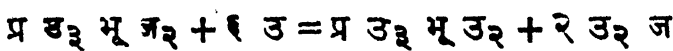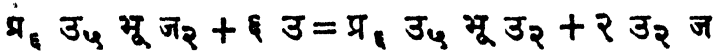
धूपेन्य से विनीली प्राप्त करने की रीति यह है कि धूपेन्य को पहले भूयिक अम्ल की क्रिया से भूय-धूपेन्य में परिणत करते और फिर भूय-धूपेन्य को त्रपु और उदनीरक अम्ल से विनीली में प्रह्रासित करते हैं। अल्प मात्रा में अंगराल से विनीली प्राप्त होता है।

संपरीक्षा ४२। एक पलिघ में ९५ घान्य भूय-धूपेन्य और ५० घान्य कणात्मक (granulated) त्रपु रखो। पलिघ में पश्चवाही संघनक लगा हो। इसमें थोड़ा थोड़ा करके तीव्र उदनीरिक अम्ल डालो और बीच बीच में हिलाते जाव। यदि प्रतिक्रिया तीव्र हो जाय तो पलिघ को ठण्ढे जल से शीतल कर लो। जब प्रतिक्रिया मन्द हो जाय तो पलिघ को आध घण्टे तक जल-तापन पर तपाओ। उसमें धीरे धीरे दह विक्षार का प्रबल विलयन (१०० घ· शि· या में ७५ घान्य) डालो। अब विनीली गाढ़ा कपिल तैल के रूप में अलग हो जाता है। वाष्प के आसवन से विनीली को पृथक् करो। निम्न समीकारो से यह प्रतिक्रिया प्रदर्शित होती है।

२ प्र$_{६}$ उ$_{५}$ भू ज$_{२}$ + ३ त्र + १४ उ नी

= २ प्र$_{६}$ उ$_{५}$ भू उ$_{२}$ उ नी + ३ त्र नी$_{४}$ + ४ उ$_{२}$ ज

प्र$_{६}$ उ$_{५}$ भू उ$_{२}$ उ नी + क्ष ज उ = प्र$_{६}$ उ$_{५}$ भू उ$_{२}$ + क्ष नी + उ$_{२}$ ज
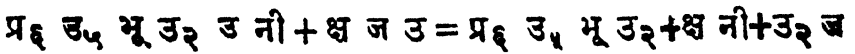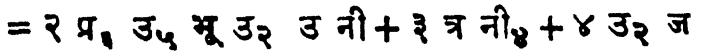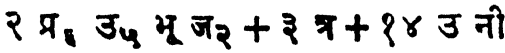
गुण। शुद्ध विनीली रंगहीन तैलसा तरल है जिसकी गंध-अरुचिकर नहीं होती। इसका अपेक्षिक भार १६° श० पर १·०२४ होता है। यह १८१° श० पर उबलता है। प्रकाश और वायु में खुला रखने से काला हो जाता है। यह अति विषाक्त है। जल में अल्प विलेय पर सुषव और दक्षु में शीघ्र विलेय है। इसके जलीय विलयन से शेवल पर कदाचित ही कोई क्रिया होती। यह क्षारिय होता है।

अनेक बातों में विनील स्नैहिक तिक्ती से समानता रखता है। अम्लों से यह सु-व्यवस्थित लवण बनता है। उदनीरिक अम्ल से विनील उदनीरेय, शुल्बारिक अम्ल से विनीली शुल्बेय बनता है। महातु नीरेय के साथ यह प्रायः अविलेय द्विलवण (प्र$_{६}$ उ$_{५}$ भू उ$_{२}$ उ नी)$_{२}$ मनी$_{४}$ बनता है।

विनीली को जब शुक्तिक अम्ल के साथ तपाते हैं तब शुक्तनीलेय (acetanilide) प्राप्त होता है।

$प्र_६ क_५ भू उ_२ + उ ज प्र ज प्र उ_३$

$= प्र_६ क_५ भू उ प्र ज प्र उ_३ + उ_२ ज$

शुक्तनीलेय

शुक्तनीलेय सिर-व्यथा और ज्वरनाश के लिये भैषज्य में प्रयुक्त होता है।

विनीली को निरवम्रल और सुषविक विक्षार के साथ उबालने से दर्शल स-श्यामेय प्राप्त होता है।

$प्र_६ उ_५ भू उ_२ + प्र उ नी_३ + ३ द ज उ$

$= प्र_६ उ_५ भू प्र + ३ द नी + ३ उ_२ ज$

दर्शल स-श्यामेय

यह प्रतिक्रिया दर्शुल तिक्ती से भी होती है।

यदि विनीली को उदनीरिक अम्ल में प्रविलीनकर १०° श० से नीचे शीतल कर भूयय अम्ल के साथ साधन करें तो विलयन में द्वयज धूपेन्य प्राप्त होता है।

$$प्र_६उ_५भू \left| \begin{matrix} उ_२ \\ भू \; ज \end{matrix} + \begin{matrix} उ \\ जउ \end{matrix} \right| नी = प्र_६उ_५भूभूनी + २उ_२ज$$

इस प्रतिक्रिया को द्वयज–प्रतिक्रिया कहते हैं और इस विधा को द्वयजीवातीयन (diazotisation)।

यह द्वयज-मूल—भूभूनी—अति क्रियाशील है और सरलता से उ, नी, हु, जं, जउ, प्रभू इत्यादि से प्रतिस्थापित हो अनेक संयोग प्रदान करता है। यह प्रतिक्रिया संश्लिष्ट विनीली रंजकों के निर्माण में प्रयुक्त होती है। स्नैहिक तिक्ती इस प्रकार की क्रियाएँ नहीं देती और उससे इस प्रकार के संयोग नहीं बनते।

जब विनीली शुल्वेय को प्रबल शुल्वारिक अम्ल की उपस्थिति में तपाते हैं तो इससे यह सरलता से विनीली प-शुल्बायिक अम्ल अथवा शुल्बनीलिक अम्ल (sulphanilic acid) में परिणत हो

जाता है। यह भैषज और प्रोदल नारंग के निर्माण में उपयुक्त होता है।

उपयोग। विनीली वाणिज्य के महत्व का संयोग है। अनेक औषधों और अनेक विनीली रंजकों के निर्माण में यह उपयुक्त होता है।

धूपेन्य शुल्बायिक अम्ल, (Benzene sulphonic acid) $प_६उ_५शुज_३उ$। जब धूपेन्य को विकज्ञावापन पर इसकी तौल में तीन गुने तीव्र शुल्बारिक अम्ल के साथ तबतक उबालते हैं जबतक धूपेन्य का स्तर लुप्त न हो जाय तब इससे धूपेन्य शुल्बायिक अम्ल बनता है। अन्तर्वस्तु को शीतल कर अपचयन करते और तब इर्यातु प्रांगारीय से क्लीवन करते हैं। इससे अविकृत शुल्बारिक अम्ल इर्यातु शुल्बीय के रूप में निस्सादित हो जाता है। इसे छानकर निकाल लेते हैं और स्रावित को जिसमें धूपेन्य शुल्बायिक अम्ल का इर्यातु लवण रहता है शुल्बारिक अम्ल की क्रिया से विबन्धन करते हैं। इससे इर्यातु शुल्बीय निस्सादित हो जाता और छानकर निकाल लिया जाता है। स्रावित को अब संकेन्द्रित कर ठण्डे होने को छोड़ देते हैं। इससे धूपेन्य शुल्बायिक अम्ल के स्फट निकल आते हैं।

$$प_६उ_५ \boxed{उ + उज} शुज_२उ = प_६उ_५शुज_३उ + उ_२ज$$
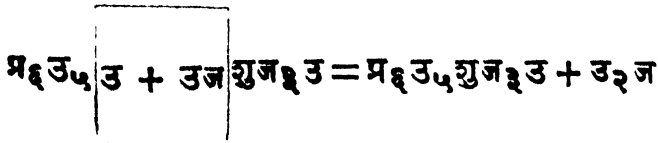
यदि धूपेन्य द्विशुल्बायिक अम्ल प्राप्त करना हो तो धूपेन्य शुल्बा-यिक अम्लों को प्रबल शुल्बारिक अम्लों के साथ और तापते हैं।

गुण। धूपेन्य शुल्बायिक अम्ल जल में विलेय और उन्दचूष है। यह प्रबल अम्लकर है और नील शेवलको रक्त देता है। यह सु-व्यवस्थित स्फटात्मक-लवण बनता है जिन्हें शुल्बायीय (sulphonate) कहते हैं। ये लवण अधिकांश जल में विलेय होतें हैं। जब इस अम्ल को दह सर्जि के साथ द्रवित करते हैं तब उससे दहातु दर्शीय बनता है जिसपर अम्ल की क्रिया से दर्शव मुक्त हो प्राप्त होता है।

प्र$_६$उ$_५$ शुज$_३$उ + २द जउ = प्र$_६$उ$_५$जद + दउशुज$_३$ + उ$_२$ज
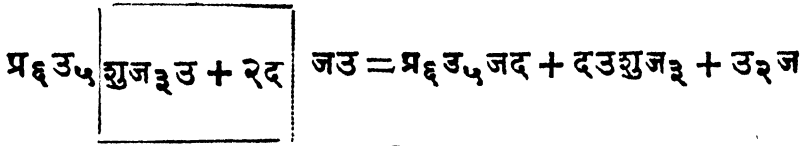
इस रीति से वास्तव में धूपेन्य से दर्शव का निर्माण होता है।

जब धूपेन्य शुल्बायिक अम्ल का दहातु श्यामेय से आसवन करते हैं तो उसे धूप-भूयिल (benzo-nitrite) प्राप्त होता है।

प्र$_६$उ$_५$शुज$_३$उ + दप्रभू = प्र$_६$उ$_५$प्रभू + दउशुज$_३$

धूप-भूयिल
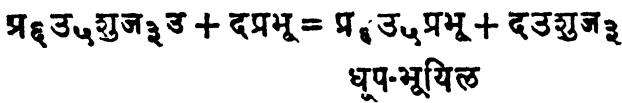
जब इसको निपीड में जल वाष्प के साथ तपाते हैं तो उससे धूपेन्य प्राप्त होता है।

प्र$_६$उ$_५$शुज$_३$उ + उ$_२$ज = प्र$_६$उ$_६$ + उ$_२$शुज$_४$
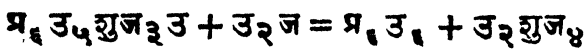
जब इसे भास्वर पञ्चनीरेय के साथ साधते हैं तो उससे धूपेन्य शुल्बानील नीरेय, (benzene sulphonyl chlonride) प्राप्त होता है।

प्र$_६$उ$_५$शुज$_३$उ + भनी$_५$ = प्र$_६$उ$_५$शुज$_२$नी + भजनी$_३$ = उनी
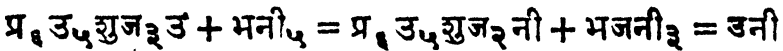
दर्शव (Phenol) वा **प्रांगविक अम्ल** (Carbolic acid) प्र$_६$उ$_५$जउ। दर्शव का दूसरा सामान्य नाम प्रांगविक अम्ल है। इसका आविष्कार १८३४ ई० में अंगराल में हुआ था। इसके प्राप्त करने का यही प्रमुख उद्गम है। अंगराल के प्रभागशः आसवन में जो 'मध्य तैल' प्राप्त होता है उसका यह प्रमुख संघटक है। इसे प्राप्त करने के लिए मध्य तैल को दह विक्षार की आवश्यक मात्रा के साथ हिलाते हैं। इससे दर्शव प्रविलीन हो जाता है। अविलेय भाग से इस विलयन को पृथक कर शुल्बारिक अम्ल से साधते हैं। शुल्बारिक अम्ल क्षारातु के साथ लवण बनता और दर्शव मुक्त हो जाता है। इसे फिर सावधानी से अलग कर इसका आसवन करते हैं।

दर्शव धूपेन्य से भी प्राप्त हो सकता है। धूपेन्य को पहले धूपेन्य शुल्बायिक अम्ल में परिणत करते और फिर उसे क्षारक के साथ

पिघलाते हैं। एक दूसरी रीति से भी धूपेन्य से यह प्राप्त हो सकता है। धूपेन्य को पहले भूय-धूपेन्य में और फिर विनीली में परिणत करते और फिर उसे द्वयज-प्रतिक्रियासे दर्शव में परिणत करते हैं।

प्र$_{6}$उ$_{6}$ —उभूज$_{3}$→ प्र$_{6}$उ$_{5}$भूज$_{2}$ —६उ→ प्र$_{6}$उ$_{5}$भूउ$_{2}$ —उभूज$_{2}$+उनी→

प्र$_{6}$उ भूभू नी —द्वयज-प्रतिक्रिया उ$_{2}$ज→ प्र$_{6}$उ$_{5}$जउ

प्र$_{6}$उ$_{6}$ —उ$_{2}$शुज$_{4}$→ प्र$_{6}$उ$_{5}$शुज$_{3}$उ —दजउ→ प्र$_{6}$उ$_{5}$जउ
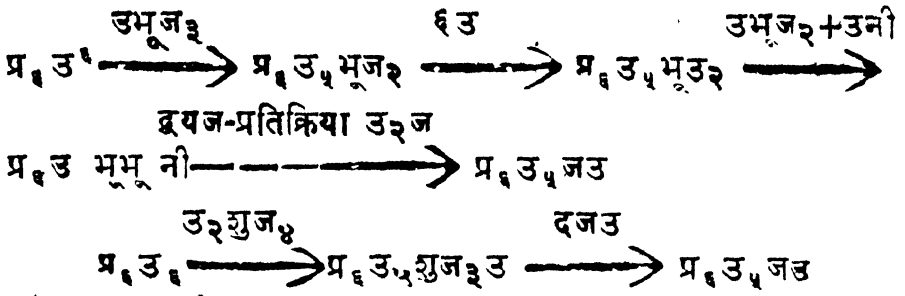
गुण। दर्शव रंगहीन स्फटात्मक सान्द्र है जो ४२° श० पर पिघलता और १८१° श० पर उबलता है। प्रकाश और वायु में खुला रखने से यह नील-लोहित (pink) हो जाता है। यह बहुत संक्षारक (corrosive) होता है और इससे चमड़े पर फोड़ा पड़ता है। शरीर के अन्दर यह प्रबल विषाक्त होता है। इसमें प्रबल विशिष्ट गंध होती है। यह शल्य में प्रतिपूय और रोगाणुनाशक के लिए उपयुक्त होता है। दर्शव का मन्द विलय व्रणों के धोने में प्रयुक्त होता है। दर्शव जल में अल्पविलेय है। इसका विलयन दुर्बल आम्लिक होता है। दह र्जि और दह विक्षार के साथ वह लवण बनता जो जल में विलेय होता है।

नीरजी, भूयिक अम्ल और शुल्बारिक अम्ल से यह सरलता से क्रमशः नीर-दर्शव, भूय-दर्शव और दर्शव शुल्बायिक अम्लों में परिणत हो जाता है। कुप्यातु भूलि के साथ तपाने से यह धूपेन्य बनता है।

प्र$_{6}$उ$_{5}$जउ + कु = प्र$_{6}$उ$_{6}$ + कुज
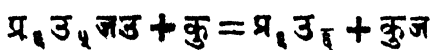
अयसिक नीरेय से यह नीललोहित रंग देता है। क्षारातु दर्शीय को प्रोदल जंबेय (प्रउ$_{3}$ज) के साथ उबालनेसे शतपुष्पवा (anisole) प्राप्त होता है।

प्र$_{6}$उ$_{5}$जक्ष + प्रउ$_{3}$ज = प्र$_{6}$उ$_{5}$जप्रउ$_{3}$ + क्षजं
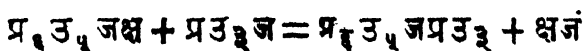
शतपुष्पवा

उपयोग। दर्शव अनेक रोगानुनाशक द्रव्यों के निर्माण में प्रचुरता से उपयुक्त होता है। अनेक औषधों के निर्माण—जैसे नम्रलिक अम्ल, कट्विक अम्ल, दर्श-शुक्ति, शुनाम्रि (aspirin), नम्रव (salol) इत्यादि में प्रयुक्त होता है। कट्विक अम्ल वस्तुतः भूय-दर्शव है जो रंजक और उत्स्फोटन के रूप में काम आता है। संश्लिष्ट अभिघस्त्र जैसे दर्शयास इत्यादि के निर्माण में भी आजकल दर्शव काम आता है।

दर्शव और सुषव में विभेद। दर्शव और इसके सधर्मा धूपेन्य के उदजारल व्युत्पन्न हैं जिनमें केन्द्रक के एक अथवा अधिक उदजन के स्थान में एक अथवा अधिक उदजारल मूल विद्यमान है। यदि केन्द्रक के केवल एक उदजन के स्थान में एक उदजारल मूल हो तो ऐसे संयोग को एक-जारल दर्शव कहते हैं। भांगविक अम्ल एक-जारल दर्शव है। यदि दो उदजन परमाणुओं के स्थान दो उदजारल मूल हो तो उसे द्वि-जारल दर्शव कहते हैं। खदिरव (catechol), शेयासव (resorcinol) द्वि-जारल दर्शव है। यदि धूपेन्य के सधर्मा के शाखि-शृंखल का उदजन उदजारल से प्रति-स्थापित हो तो ऐसे संयोगों को सौरभिक सुषव कहते हैं। धूपल (benzyl) सुषव, प्र$_६$ उ$_५$ प्र उ$_२$ ज उ ऐसा सुषव है। सौरभिक सुषव स्नैहिक सुषव से होते हैं। उनके तैयार करने की रीतियाँ और उनके गुण एक से हैं। दर्शव सुषव से बहुत विभिन्न होते हैं।

प्रश्न

१—धूपेन्य से नीर-धूपेन्य कैसे तैयार करोगे? इसके विशिष्ट गुण क्या हैं? नीर धूपेन्य पर नीरजी की अतिरिक्त क्रिया से क्या होता है?

२—नीर-धूपेन्य के गुणों का दक्षुल नीरेय के गुणों से तुलना करो और विभिन्नता दिखलाओ।

३—धूपेन्य से भूय-धूपेन्य कैसे तैयार होता है। उसके महत्व के गुण और उपयोग क्या हैं। भूय-धूपेन्य पर धूमायमान भूयक अम्ल की क्या क्रिया होती है?

४—विनीली क्या है और भूय-धूपेन्य से कैसे प्राप्त होता है। विनीली पर भूय्य अम्ल की क्रिया की व्याख्या करो।

५—द्वयजकरण क्या है और कैसे सम्पादित होता है?

६—विनोली और दक्षुल-तिक्ती पर भूय्य-अम्ल क्रिया की लना करो।

७—दर्शव के उद्गम क्या है? दो रीतियों का वर्णन करो जिनसे धूपेन्य दर्शव में परिणत हो सकता है।

८—अगंराक्ष से दर्शव कैसे प्राप्त होता है। दर्शव के कुछ महत्व के गुणों और उपयोगों का वर्णन करो।

अध्याय २४

विरालेन्य के कुछ व्युत्पन्न

धूपल नीरेय, प्र$_{६}$उ$_{५}$प्रउ$_{२}$नी, और नीर-विरालेन्य, प्र$_{६}$उ$_{४}$नीप्रउ$_{३}$

विरालेन्य के निम्न चार एक-नीर-व्युत्पन्न सम्भव हैं।
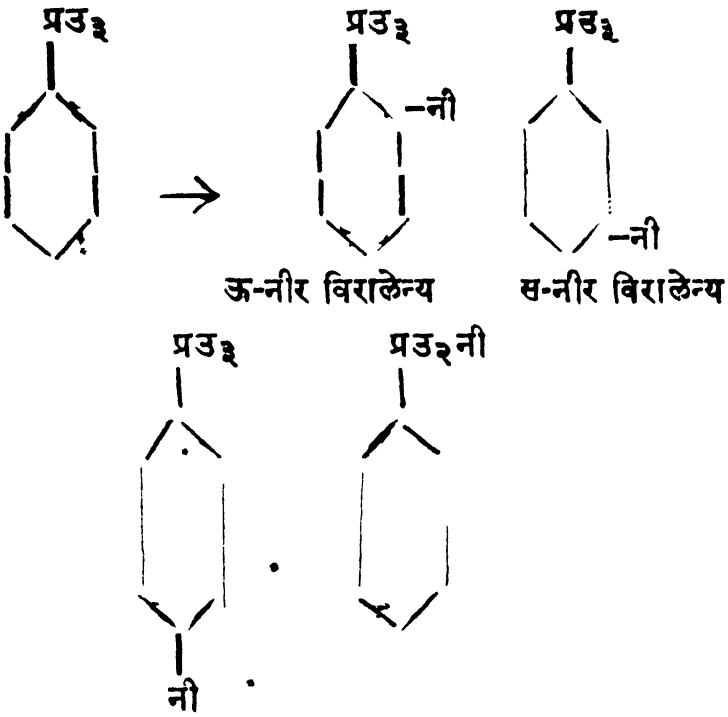
इनमें पहले तीन संयोगों को नीर-विरालेन्य कहते हैं और चौथे को धूपल नीरेय। पहले तीन संयोगों में धूपेन्य-केन्द्रक में नीरजी विद्यमान है और चौथे में शाखि-शृङ्खल में नीरजी है।

साधारण ताप पर लवणजन वोढा की उपस्थिति में जब विरालेन्य का नीरजीयन होता है तब धूपेन्य केन्द्रक में आदेश होता है और उससे नीर-विरालेन्य प्राप्त होते हैं। यदि उबलते विरालेन्य में किसी

लवणजन-वोढ़ा की अनुपस्थिति में शुष्क नीरजी का प्रवाह हो तो शाखि शृंखल में आदेश होता है और उससे धूपल नीरेय (benzyl-chloride) $प्र_६उ_५प्रउ_२नी$, धूपस नीरेय (benzal chloride) $प्र_६उ_५प्रउनी_२$ और धूप त्रिनीरेय (benzo-trichloride) प्राप्त होता है। किसी निश्चित संयोग का बनना नीरजी की मात्रा पर निर्भर करता है।

नीर-विरालेन्य के गुण नीर-धूपेन्य के गुण सदृश होते हैं। शाखि-शृङ्खला-आदिष्ट संयोग स्नैहिक लवणेय से होते हैं। धूपल नीरेय वे सब क्रियाएँ देते हैं जो प्रोदल नीरेय या दव्रुल नीरेय सदृश क्षारल लवणेय देते हैं। इसकी नीरजी दव्रुल नीरेय के सदृश सरलता से, तिक्ती, उदजारल, श्यामेय और भूय मूलों से प्रतिस्थापित हो जाता है।

धूपल नीरेय रंगहीन तरल है जो १७६°श० पर उबलता है। इसमें तिक्ती गंध होती है! इसका वाष्प आंखों को आक्रान्त करता है।

धूपल सुषव, (benzyl alcohol) $प्र_६उ_५प्रउ_२जउ$। जब धूपल नीरेय को क्षारकोंकी उपस्थिति में जल से तब तक उबालते हैं जब तक उसकी तिक्ती गंध दूर न हो जाय तब धूपल नीरेय के स्थान में धूपल सुषव रह जाता है। यहां जलांशन की क्रिया होती है।

$$प्र_६उ_५प्रउ_२\boxed{नी + उ}जउ \rightleftarrows प्र_६उ_५प्रउ_२जउ + उनी$$
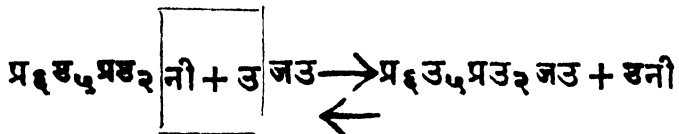
यहाँ जो उदनीरिक अम्ल बनता है वह क्षारक से निकल जाता है। इस प्रकार यह विधा अविरत (continuous) हो जाती है। इस क्रिया में जो धूपल सुषव बनता है उस का दक्षुद्वारा निस्सारण कर लेते हैं। दक्षु के विलयन के वाष्पीभवन और अवशेष के आसवन से शुद्ध धूपल सुषव प्राप्त होता है।

धूपल सुषव रंगहीन तरल है जिसमें सौरभ होता है। यह २०६°-श० पर उबलता है। यह जल में अल्प विलेय होता है। रासायनिक गुणों में यह स्नैहिक सुषव सा व्यवहार करता है। प्रांगारिक और

अप्रांगारिक अम्लों से यह मलवण बनता है। धूपल सुषव वास्तव में सुषव है और दर्शव से बहुत भिन्न है। दर्शव में केन्द्रक में उदजारल मूल होता है। यह कुछ आम्लिक होता और इसमें सुषव के गुणों का अभाव होता है।

धूप-सुन्युद, (benzaldehyde) प$_६$उ$_५$प्रउज। धूपल सुषव को जब भूयिक अम्ल से जारित करते हैं तब धूप-सुन्युद प्राप्त होता है।

प$_६$उ$_५$प्रउ$_२$जउ + ज = प$_६$उ$_५$प्रउज + उ$_२$ज
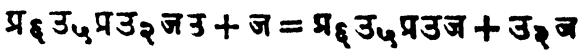
चूर्णातु धूपीय को चूर्णातु वम्रीय के साथ आसवन करने से भी धूप-सुन्युद प्राप्त होता है।

(प$_६$उ$_५$प्रजज)चू + (उप्रजज)$_२$चू = २ प$_६$उ$_५$प्रउज + २चूप्रज$_३$
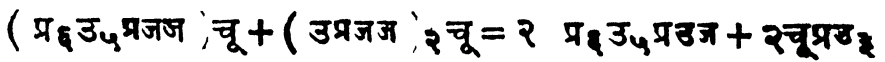
बड़ी मात्रा में धूपसु नीरेय को चूर्णक के दूध के साथ निपीड में तपाने से यह तैयार होता है।

प$_६$उ$_५$प्रउनी$_२$ + चूज = प$_६$उ$_५$प्रउज + चूनी$_२$
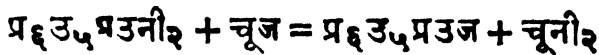
धूप-सुन्युद पहले-पहल आवातामि (amygdalin) नामक मधुमेव (glucoside) के उद्यांशन से प्राप्त हुआ था। यह आवातामि कड़ुआ बादाम में रहता है। इसीसे इस संयोग को कभी कभी 'कड़ुआ बादाम का तेल' भी कहते हैं।

गुण। धूप-सुन्युद रंगहीन तरल है जिसमें कड़ुआ बादाम सी गंध होती है और १७९°श० पर उबलता है। यह सरलता से वायु के जारक से धूपिक अम्ल में जारित हो जाता है। स्नैहिक सुन्युदों के सदृश यह तिक्ताति रजत भूयीय के विलयन और ताम्र शुल्बीय के क्षारिक विलयन को प्रह्वासित करता है, यद्यपि यह क्रिया यहाँ बहुत कुछ मन्द होती है। यह शोफ की प्रतिक्रिया भी देता है। प्रह्वासित हो यह धूपल सुषव (benzyl alcohol) बनता है। उदश्यामिक अम्ल के साथ संयुक्त हो यह एक श्यामोदि (cyanhydrin) बनता है, उदजारल तिक्ती के साथ एक जावि (oxime) बनता है और दर्शल उदाजीवी के

साथ एक उदाजीवा बनता है। क्षाराद्व द्वि-शुल्वित के साथ एक स्फटात्मक संयोग बनता है। तिक्ताति के साथ यह सुव्युद-तिक्ताति नहीं बनता।

क्षारक और तिक्ताति के प्रति इसका व्यवहार स्नैहिक सुव्युदों से भिन्न होता है। जब इसे दह सर्जि के साथ हिलाते हैं तब यह धूपल सुषव और धूपिक अम्ल में परिणत हो जाता है। सुव्युद का एक व्यूहाणु जारित हो धूपिक अम्ल बनता और दूसरा व्यूहाणु प्रहासित हो धूपल सुषव बनता है।

२ प्र$_६$उ$_५$प्रउज + क्षजउ = प्र$_६$उ$_५$ प्रउ$_२$जउ + प्र$_६$उ$_५$प्रजजक्ष

उपयोग। धूप-सुव्युद सुगन्धित द्रव्यों और रंजकों के निर्माण में प्रयुक्त होता है।

धूपिक अम्ल (Benzoic acid) प्र$_६$उ$_५$प्रजजउ। धूप नामके एक प्राकृतिक उद्यास से यह पहले-पहल प्राप्त हुआ था इसी से इसका नाम धूपिक अम्ल पड़ा। इस उद्यास में यह धूपल सुषव के प्रलवण के रूप में रहता है। यह अम्ल धूपल सुषव वा धूप-सुव्युद के जारण वा दर्शल श्यामेय (धूप-भूयिल) के जलांशन से प्राप्त हो सकता है। ये सब ही रीतियाँ स्नैहिक अम्लों की प्राप्ति में उपयुक्त होती हैं।

प्र$_६$उ$_५$प्रउ$_२$जउ + ज$_२$ = प्र$_६$उ$_५$प्रजजउ + उ$_२$ज

प्र$_६$उ$_५$प्रउज + ज = प्र$_६$उ$_५$प्रजजउ

प्र$_६$उ$_५$प्रभू + २उ$_२$ज = प्र$_६$उ$_५$प्रजजउ + भूउ$_३$
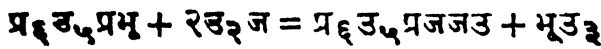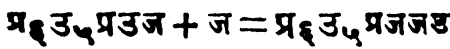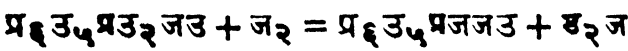
अधिक सुविधे से धूपिक अम्ल सौरभिक उदांगारों के जारण से प्राप्त होता है। ऐसे उदांगार जिनमें शाखि शृंखल हो और वह शाखि-शृंखल आदिष्ट वा अनादिष्ट हो। यदि शाखि-शृंखल आदिष्ट हो जैसे—प्रउ$_२$नी तो वे अनादिष्ट शाखि-शृंखल की अपेक्षा अधिक सरलता से जारित हो जाते हैं। इस प्रकार विरालेन्य का धूपल नीरेय वा धूपद्व त्रिनीरेय वा धूप-नीरेय जारित हो धूपिक अम्ल बनते

है। बड़ी मात्रा में धूप-त्रिनीरेय को चूर्णक-दूधके साथ तपानेसे धूपिक अम्ल तैयार होता है। यहाँ धूप-त्रिनीरेय का जलांशन होकर धूपिक अम्ल बनता है जो चूर्णक के साथ संयुक्त हो चूर्णातु धूपीय बनता है।
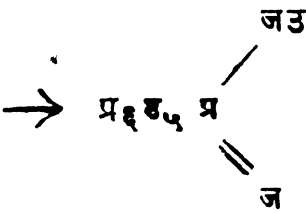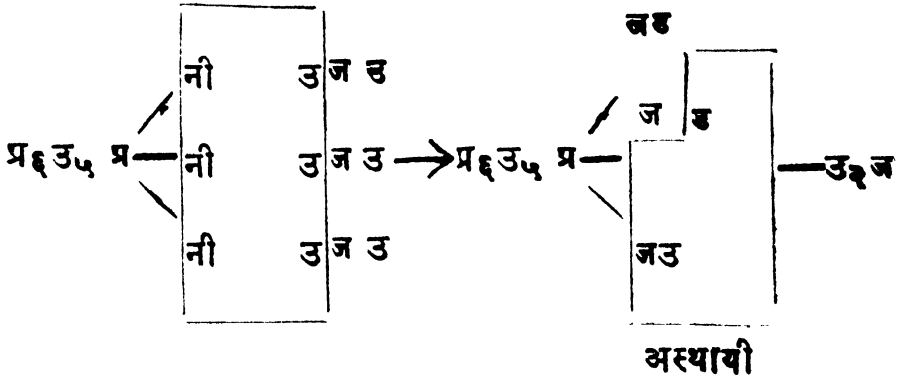
इस प्रकार से बने चूर्णातु धूपीय के उदनीरिक अम्ल से विबन्धन करने से धूपिक अम्ल ठण्ढे जल में कठिनता से विलेय होने के कारण निस्सादित हो जाता है। छानकर उष्ण जल से इसके स्फट बनाते हैं।

गुण। धूपिक अम्ल रङ्गहीन स्फटात्मक सान्द्र है जो १२१·४° श० पर पिघलता और २५०° श० पर उबलता है। यह उद्वनशिल होता है और वाष्पमें उत्पत है। ठण्ढे जलमें यह अल्प विलेय और उष्ण जल में पर्याप्त विलेय है और सुषव और दक्षु में सरल विलेय है।

धूपिक अम्ल सु-व्यवस्थित लवण और प्रलवण बनता है। इसके प्रलवण प्रायः उन्हीं रीतियों से प्राप्त होते हैं जिनसे शुक्तिक अम्ल के प्रलवण प्राप्त होते हैं।

जब क्षारातु धूपीय को विक्षार-चूर्णांक के साथ तपाते हैं तब प्रांगजारल मूल के स्थापन में उदजन प्रतिस्थापित हो धूपेन्य प्राप्त होता है।

प्र$_{६}$उ$_{५}$ | प्रजजक्ष + क्षज | उ = प्र$_{६}$उ$_{६}$ + क्ष$_{२}$प्रज$_{३}$
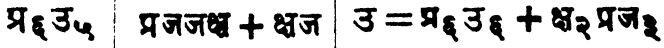
यह रीति व्यापक है और स्नैहिक और सौरभिक सभी संयोगों में उदजन द्वारा प्रांगजारल ऐसे प्रतिस्थापित हो जाता है।

जब धूपिक अम्ल को भास्वर पञ्चनीरेय के साथ साधते हैं तब उससे धूपल नीरेय प्राप्त होता है। यह प्रभागशः आसवन से अन्य सृष्टों से सरलता से पृथक् हो जाता है।

प्र$_{६}$उ$_{५}$प्रजजउ + भनी$_{५}$ = प्र$_{६}$उ$_{५}$प्रजनी + भजनी$_{३}$ + उनी
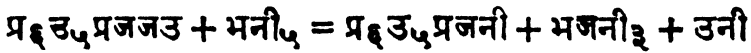
धूपल नीरेय एक आम्लिक नीरेय है। यह तैल सा रंगहीन तरल है जिसमें जलन पैदा करनेवाली गन्ध होती है। जल, तिक्ताति और सुषव के प्रति यह शुक्लल नीरेय सा व्यवहार करता है। उदजारल और तिक्ती संयोगों के उपालम्भन और पृथक्करण में यह उपयुक्त होता है।

जब धूपल नीरेय को शुष्क क्षारातु धूपीय के साथ तपाते हैं तब उससे धूपिक अजलेय प्राप्त होता है। यह रीति वही है जो शुक्तिक अजलेय की प्राप्ति में प्रयुक्त होती है।

प्र$_{६}$उ$_{५}$प्रज | नी + क्ष | जजप्र$_{६}$उ$_{५}$ = प्र$_{६}$उ$_{५}$प्रजजप्रजप्र$_{६}$उ$_{५}$ = क्षनी
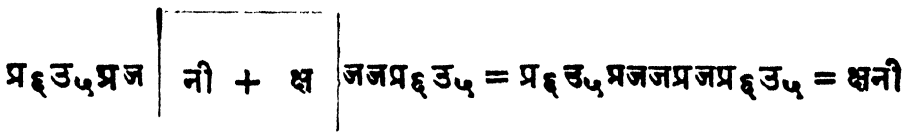
धूपल नीरेय   क्षारातु धूपीय   धूपल अजलेय

धूपल अजलेय स्फटात्मक सान्द्र है जो ४२° श० पर पिघलता है। इसके गुण ठीक शुक्तिक अजलेय से होते हैं।

जब धूपूल नीरेयको तिक्तालि के साथ साधते हैं और सृष्ट को ठण्ढे जल से धोते हैं तो जो पिण्ड बच जाता है उसमें धूप-तिक्तेय (benzamide) रहता है। उष्ण जल के स्फटन से शुद्ध धूप-तिक्तेय प्राप्त होता है।

प$_६$उ$_५$प्रज | नी + उ | भूउ$_२$ = प्र$_६$उ$_५$प्रजभूउ$_२$ + उनी।
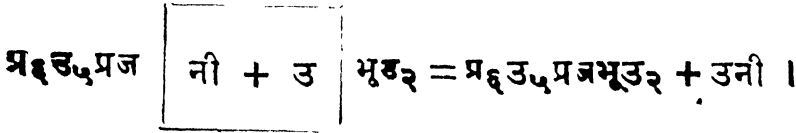
धूप-तिक्तेय रंगहीन स्फटात्मक सान्द्र है जो १२८° श० पर पिघलता है। इसका व्यवहार ठीक शुक्त-तिक्तेय सा होता है।

धूपिक अम्ल को लवणजन, भूयिक अम्ल और शुल्बारिक अम्ल के साथ साधने से धूपेन्य सा केन्द्रक में आदेश होता है। इस प्रकार धूपिक अम्ल के लवणजन, भूय और शुल्बायिक व्युत्पन्न प्राप्त होते हैं।

शुक्त-दर्शी, दर्शल-प्रोदल शौक्ता प्र$_६$उ$_५$प्रजप्र$_२$उ$_५$। यह मिश्र सौरभिक शौक्ता है जिसमें एक मूल सौरभिक और एक स्नैहिक वा क्षारल है।

यह चूर्णातु शुक्तीय और चूर्णातु धूपीय के आसवन से प्राप्त होता है। साधारणतया यह फ्रीडलक्राफ्ट की प्रतिक्रिया से धूपेन्य और शुक्तल नीरेय से अजल स्फट्यातु नीरेय की उपस्थिति में प्राप्त होता है।

प्र$_६$उ$_६$ + नी प्रजप्रउ$_३$ = प्र$_६$उ$_५$प्रजप्रउ$_३$ + उनी
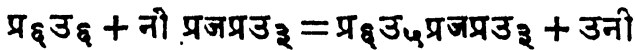
यह श्वेत स्फटात्मक सान्द्र है जो २०° श० पर पिघलता और २०२° श० पर उबलता है। इसमें एक विशिष्ट गन्ध होती है। यह जल में विलेय है और शुक्ता की अनेक प्रतिक्रियाएँ देता है। केवल क्षारातु शुल्बित संयोग यह नहीं बनता।

नींद लाने के लिए हिपनोन (hypnone) के नाम से यह भैषज्ज में प्रयुक्त होता है।

धूपदर्शी, द्वि-दर्शल शौक्ता, $प्र_६ उ_५$ $प्रजप्र_६ उ_५$ । यह शुद्ध सौरभिक शौक्ता है जिसमें दोनों मूल सौरभिक है ।

चूर्णातु धूपीय के आसवन से यह प्राप्त हो सकता है पर साधारणतया फ्रीडल-क्राफ्ट की प्रतिक्रिया से धूपेन्य और धूपूल नीरेय से अनल स्फत्यातु नीरेय की उपस्थिति में प्राप्त होता है ।

$$प्र_६ उ_६ + नीप्रजप्र_६ उ_५ = प्र_६ उ_५ प्रजप्र_६ उ_५ + उनी$$

यह स्फटात्मक सान्द्र है जो ४८° श० पर पिघलता है । यह अनेक प्रतिक्रियाएँ देता है ।

नम्रलिक अम्ल (Salicylic acid), ऊ-उदजारधूपिक अम्ल, (Hydroxy-benzoic acid) $प्र_६ उ_४$ (जउ) प्रजजउ । हेमन्तहरि (wintergreen) के तेल में प्रोदल प्रलवण के रूप में यह रहता है । इससे दहसर्जि के द्वारा जलांशन से प्राप्त हो सकता है ।

व्यापार के लिए कोलबे प्रतिक्रिया से यह प्राप्त होता है । यहाँ शुष्क क्षारातु दर्शीय के प्रांगार द्विजारेयको निपीड में नीपीड-तापक में १२०°—११०° श० तक तपाने से बनता है । सृष्ट में क्षारातु नम्रलीय रहता है । इसे मन्द शुल्बारिक अम्ल मे आम्लिक बनाने से अल्प-विलेय नम्रलिक अम्ल निस्सादित हो जाता और उष्ण जल से पुनः स्फटन किया जाता है ।

नम्रलिक अम्ल स्फटात्मक सान्द्र है जो १४५° श० पर पिघलता है । ठण्ढे जल में यह अल्प विलेय है पर उष्णजल में पर्याप्त विलेय और सुषव और दक्षु में सरल विलेय । यह दर्शव और सौरभिक अम्ल दोनों की प्रतिक्रिया देता है ।

अयसिक नीरेय से यह नील-लोहित वर्ण देता है । इसके लवण को नम्रलीय कहते हैं ।

औषधों में प्रबल प्रतिपूय और रोगाणुनाशक के रूप में प्रयुक्त होता है, कभी कभी खाद्य-संरक्षण में भी उपयुक्त होता है । इसका क्षारातु लवण वात ज्वर में काम आता है । इसका शुक्तल व्युत्पन्न, शुनम्रि (aspirin), ज्वर नाशक के लिए और सिर व्यथा और

दूसरे प्रकार के दर्द में प्रयुक्त होता है। दर्शल नम्रलीय यानम्रव (salol) अभ्यन्तररोगाणु नाशक और दन्तमञ्जन में और प्रोदल नम्रलीय तथा हेमन्तहरिका तैल औषध में प्रयुक्त होता है।

प्रश्न

१—प्र$_7$ उ$_7$ नी सूत्र से कितने संयोग बन सकते हैं और उनकी सत्ता की व्याख्या कैसे करेंगे ?

२—विरालेन्य पर नीरजी की क्रिया से विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न आदिष्ट सृष्ट बनते हैं। इसकी व्याख्या करो।

३—धूपल नीरेय के गुणों की नीर-विरालेन्य के गुणों से तुलना करो।

४—धूपल नीरेय से धूपल सुषव कैसे बनता है ? धूपल सुषव के गुणों का वर्णन करो। दर्शव से किन बातों में यह भिन्न है ?

५—धूप-सुन्युद और धूपिक अम्ल के प्राप्त करने की विधियों और गुणों का संक्षिप्त वर्णन करो।

६—(१) धूपल सुषव, (२) धूप-त्रिनीरेय और दर्शल श्यामेय से धूपिक अम्ल कैसे प्राप्त करोगे ?

७—बड़ी मात्रा में धूपिक अम्ल कैसे प्राप्त होता है ? चूर्णातु धूपीय को दहविक्षार के साथ तपाने से क्या होता है ?

८—धूपिक अम्ल के अधिक महत्व के व्युत्पन्न क्या हैं और कैसे प्राप्त होते हैं ?

९—सौरभिक नीरजी व्युत्पन्न में यदि नीरजी शाखिशृङ्खल में हो या केन्द्रक में हो तो उनके गुणों का वर्णन करो ?

१०—धूपेन्य से (१) धूपिक अम्ल, (२) नीर-धूपेन्य, और (३) धूपल नीरेय कैसे प्राप्त करोगे ?

अध्याय २५

महत्व के दूसरे चक्रिक संयोग

उत्तैलेन्य, (Naphthalene) $प्र_{१०}$ $उ_{८}$ । धूपेन्य और विरालेन्य सदृश सौरभिक उदांगारों में प्रांगार परमाणुओं के केवल एक वलय होता है। एक दूसरे वर्ग के उदांगार हैं जिन्हें उत्तैलेन्य कहते हैं। इस माला के प्रथम एकक को उत्तैलेन्य कहते हैं। इसकी संरचना निम्नलिखित है।
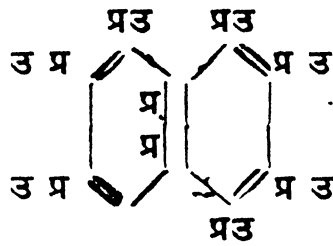
उत्तैलेन्य में दो धूपेन्य वलय या केन्द्रक संघनित होते हैं। दोनों वलयों के विभिन्न प्रांगार परमाणुओंकी संख्या १, २, ३, ४, ५, ६, ७ और ८ वा प्रतीक $अ_{१}$ $ब_{१}$ $ब_{२}$ $अ_{२}$ $अ_{३}$ $ब_{३}$ $ब_{४}$ $अ_{४}$ दी गई है
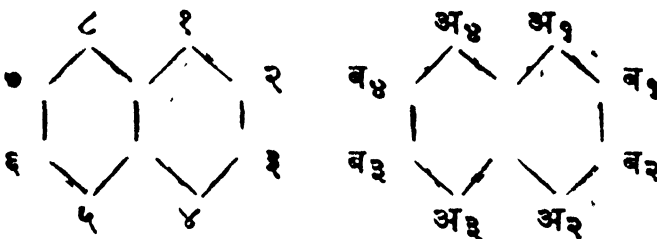
१:८ स्थान को Peri कहते हैं।

उत्तैलेन्य की संरचना से स्पष्ट है कि इसके दो श्रेणियों के एक-व्युत्पन्न होते हैं। एक को 'अ' और दूसरे को 'ब' व्युत्पन्न कहते हैं।

व्यापार का उत्तैलेन्य अंगाराल के मध्य तैल आसुत से प्राप्त

होता है। इस प्रभाग को जब रख देते हैं तो उत्तैलेन्य का कुछ अंश स्फट के रूप में निकल आता और निकाल लिया जाता है। प्रांगविक अम्ल को विक्षार विलयन की क्रिया से निकाल लेने पर उत्तैलेन्य की और मात्रा प्राप्त होती है। उत्पादन और स्फटन से यह संशोधित होता है।

उत्तैलेन्य एक स्फटात्मक सान्द्र है, जो ८०° श० पर पिघलता है। यह पट्ट के रूप में उत्पादित होता है और वाष्प में उत्पत है। यह जल में अविलेय पर सुषव और दक्षु में शीघ्र विलेय है।

उत्तैलेन्य बहुत धूएँ के साथ जलता है। जारण से एक महत्व का संयोग व्युत्तैलिक (phthalic) अम्ल वा व्युत्तैलिक अजलेय बनता है जो संश्लिष्ट नील और अन्य रंजकों के निर्माण में उपयुक्त होता है।

उत्तैलेन्य व्युत्तैलिक अम्ल
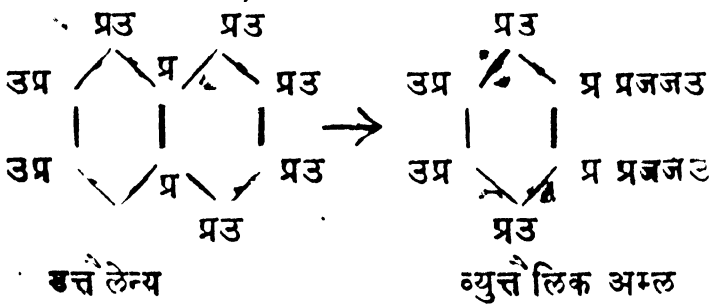
उत्तैलेन्य के गुण धूपेन्य के गुण से होते हैं। धूपेन्य के समान ही इसके लवणजनीयन, भूयीयन और शुल्बायन होते हैं और एक ही प्रकार के सृष्ट बनते हैं। उत्तैलेन्य के सीधे नीरजयन और दुराम्रीयण से अ-नीर उत्तैलेन्य और अ-दुर-उत्तैलेन्य प्राप्त होता है, भूयीयन से अ-भूय-उत्तैलेन्य और शुल्बायन से उत्तैलेन-अ-शुल्बायिक अम्ल प्राप्त होते हैं। यदि शुल्बायन १६०-१८०° श० पर हो तो उससे प्रधानतः उत्तैलेन्य-ब-शुल्बायिक अम्ल प्राप्त होता है।

अ-भूय-उत्तैलेन्य त्रपु और उदनीरिक अम्ल के प्रह्रासन से अ-उत्तैरल तिक्की प्राप्त होता है।

ब–उत्तैरलव के तिक्ताद्य शुल्बीय और तिक्ताति के साथ निपीड में तपाने से ब–उतैरल–तिक्ती प्राप्त होता है।

उत्तैलेन्य–अ–शुल्बायिक अम्ल के दह् क्षारक के साथ द्रावण से अ–उत्तैरलव और उसी प्रकार उत्तैलेन्य-ब–शुल्बायिक अम्ल के क्षारक के साथ द्रावण से ब–उत्तैरलव प्राप्त होते हैं।

उपयोग। उत्तैलेन्य कीट-नाश के लिए प्रतिपूय के रूप में और अनेक व्युत्पन्नों के निर्माण में जो औद्योगिक महत्व के हैं प्रयुक्त होता है। रंजकों के निर्माण में उत्तैरलव और उत्तैरल-तिक्ती प्रयुक्त होते हैं।

भूउ₂ — अ-उत्तैरल तिक्की

शुज₃उ — उत्तैलेन्य अ-शुल्बायिक अम्ल

जउ — ब-उत्तैरलव

द्रुयजीवायीतन

(भूउ₄)₂ शुज₄ और भूउ₃

क्षार के साथ द्रावण

जउ — अ-उत्तैरल

भूउ₂ — ब-उत्तैरल तिक्की

द्रुयजीवायीतन और सैन्डमेयर की प्रतिक्रिया

नी — ब-नीर-उत्तैलेन्य
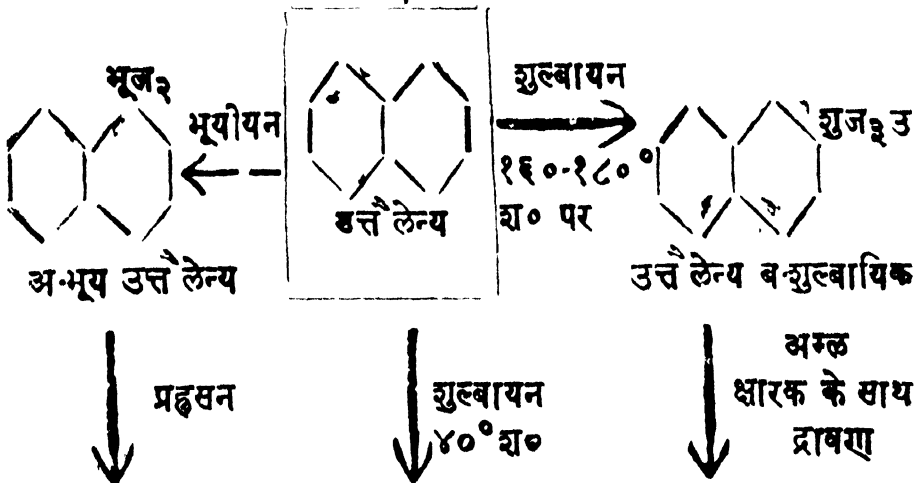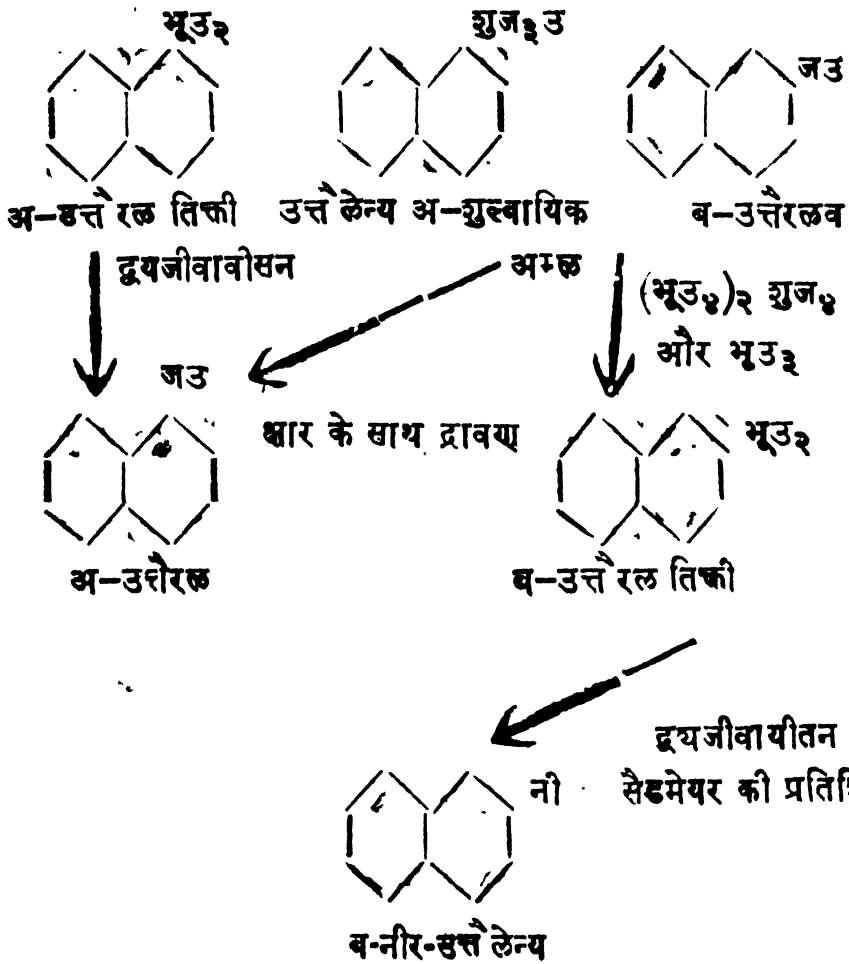
विक्षामेन्य, (Anthracene) $प्र_{14}$ $उ_{10}$ । सौरभिक उदांगारों का एक दूसरा वर्ग है जिस वर्ग में विक्षामेन्य है । इसकी संरचना सूत्र निम्नलिखित है ।
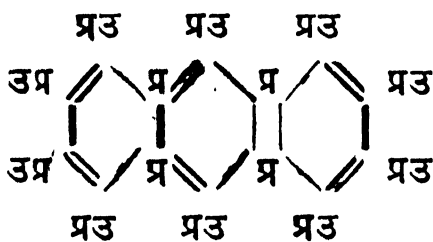
यह स्फटात्मक सान्द्र है और अनेक गुणों में धूपेन्य और उत्तै-लेन्य के समान है। धूपेन्य और उत्तैलेन्य के समान ही यह अनेक व्युत्पन्नों की माला बनता है।

अनेक रंजकों, विमंजिष्ठी (magenta) रंजकों, के निर्माण का यह प्रारम्भिक पदार्थ है।

सरलेन्य (Terpenes), कर्पूर। एक दूसरे वर्ग के उदांगार हैं जिन्हें सरलेन्य कहते हैं। पौधों और बीजों से प्राप्त उत्पत तैलों के ये प्रमुख संघटक हैं। इन उदांगरो के सूत्र $प्र_{५}उ_{८}$, $प्र_{१०}उ_{१६}$ वा $प्र_{१५}उ_{२४}$ है। तारपीन एक सु ज्ञात उत्पत तैल है जिसमें सरलेन्य, निसरलेन्य $प्र_{१०}उ_{१६}$ (pinene) रहते हैं। कृत्रिम सुगंधों के निर्माण का विरालेन्य आधार है। कर्पूर एक विरालेन्य का व्युत्पन्न है और व्यापार में बड़ी मात्रा में निसरलेन्य से निर्माण होता है।

विषमचक्रिक (Heterocyclic) संयोग। कुछ विवृत्त शृङ्खलव वलय संयोग ऐसे होते हैं जिनके वलय में केवल प्रांगार परमाणु रहते है। ऐसे संयोगों को **समचक्रिक** (homocyclic) संयोग कहते हैं। कुछ संयोग ऐसे होते हैं जिनके वलय में प्रांगार परमाणुओं के अतिरिक्त भूयाति, वा शुल्वारि वा जारक के भी परमाणु होते है। ऐसे संयोगों को **विषमचक्रिक** (heterocyclic) संयोग कहते हैं। समचक्रिक संयोगों के उदाहरण धूपेन्य, उत्तैलेन्य, विक्षामेन्य, और उनके व्युत्पन्न है। विषमचक्रिक संयोगों की संख्या बहुत बड़ी है और इनमें अनेक ऐसे है जिनका महत्व व्यापार में बहुत अधिक है। सरलतम विषमचक्रिक संयोग जिनमें केवल प्रांगार और भूयाति के परमाणु विद्यमान है। शुष्मैल (pyrrol), शुष्मेयी (pyridine), विज्वरवी (quinoline) और स-विज्वरवी (isoquinoline)

शुष्मैल शुष्मेयी

विज्वरवी स-विज्वरवी
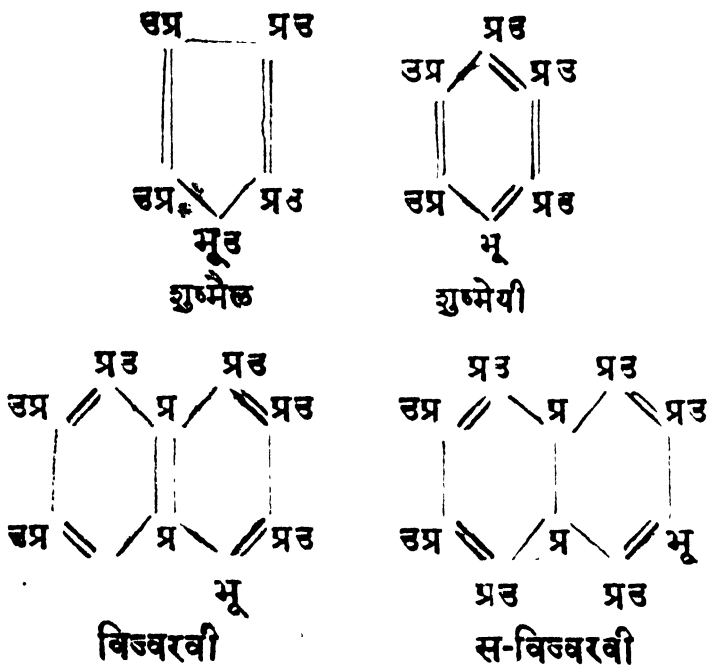
ये मूल संयोग है जिनके व्युत्पन्न महत्व के प्राकृतिक पैठिक पदार्थ क्षारल हैं। ये क्षारल उद्भिद् पदार्थों से प्राप्त होते हैं। इसी वर्ग के पदार्थों में म्लेच्छी (caffeine) और देवान्नी (theobromine) हैं जो चाय के पत्तो और कोको के बीजो में होते हैं। और जिनसे उनमें उत्तेजक गुण आ जाता है। विज्वरी, विषतिन्दुकी (strychnine) और प्रमीली (morphine) इसी क्षारल वर्ग के संयोग हैं।

जिन संयोगों में प्रांगार और शुल्बार वा प्रांगार और जारण के परमाणु वलय में होते है वे गंधदर्शेन्य (thiophene) और बुसीन्य (furfurane) और उनके व्युत्पन्न हैं।

गन्ध दर्शेन्य बुसीन्य
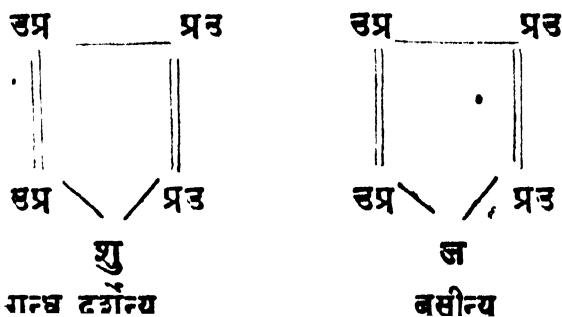
प्रश्न

१—समचक्रिक और विषमचक्रिक संयोगों का क्या आशय है? प्रत्येक का दो उदाहरण दो।

२—उत्तैलेन्य क्या है और कहाँ पाया जाता है? इसके कुछ व्युत्पन्नो का वर्णन करो।

३—उत्तैलेन्य और धूपेन्य पर भूयिक और शुल्बारिक अम्लों और नीरजी की क्रियाओं की तुलना करो।

४—अ-और ब-उत्तैरलव और अ-और ब-उत्तैरल-तिक्ती के संरचना सूत्रो को लिखो। किन बातों में उत्तैरल तिक्ती विनीली और दक्षुल तिक्ती से विभिन्न है।

५—(१) उत्तैलेन्य, (२) विक्षामेन्य, (३) शुष्मेयी और (४) गंधदर्शैन्य के संरचना सूत्रों को लिखो।

६—निम्न पदार्थों के उपयोग क्या है?

(१) उत्तैलेन्य
(२) विक्षामेन्य
(३) तारपीन

अनुक्रमणिका और शब्दावली

अनुविद्ध saturated ५८
आगणन estimation २८
आगल syrupy ६९
अणुवीक्ष microscope ९३
आतसिक linoleic १६१
आतंजन coagulation २०२
आदाता receiver १६
आद्य primary १२८
आदिष्ट substituted १८
आदेश substitution ५८
आश्लग viscous ६६
आपीत yellowish २५
आवर्तन rotation २०५
आविलता turbidity ११६
आवेजक catalyst ९४
आवेप vibration २०४
आसवन distillation ११
आहरि greenish ६६
अंगारवाति coalgas ६१
ईक्षुधु saccharose २२०
ईक्षुध्वीय saccharosate २२०
ईक्षुशर्करा cane sugar २१८
उग्रगन्धन acrolein १८५
उत्कौलिक malic २
उत्तापन ignition २७
उत्पत volatile ८,१४
उत्स्फोट explosive ६०
उत्सादन sublimation ६
उत्तैल naphtha ८१
उत्तैलेन्य naphthalene २६७
उदजन hydrogen ३
उदजनीभवन hydrogenation १८३
उदजारल hydroxyl ८०
उदजारेय hydroxide २८
उदनीरिक hydrochloric ५३
उदनीर्य hypochlorous ५३
उदश्यामिक hydrocyanic २५
उदाज hydrazo २४६
उदंच pump १६
उद्यास resin १
उन्दचूष hygroscopic १८५
उपकल्पना hypothesis १९
उपलम्भन detection २२,१६
उपलभाश opalescent १६६
उपस्नेहन lubricating १७
उपसंकोच constriction १४
ऊर्ध्ववाहुनाल U-tube २९
ऊन-सुषवोद under proof १६
अशोषण non-drying १८१
एकक member ४०,५४
एक-शर्कराधु mono-saccharose २१४
एक-शर्करेय mono-saccharide २१४
एकोदिक monohydric ८०

कट्विक picric २५६
कठोरभवन hardening १८४
कणात्मक granulated ६४
कणिकाधु granulose २२४
कच्छवाति marsh gas ६०
कन्द bulb १४
कळा minute २६
क्रकचधूलि sawdust १६५
कार्यक्षम efficient २३८
काष्ठवाति wood gas ६१
काष्ठासुत pyroligneous ८१
काष्ठांगार wood charcoal ८१
काष्ठेन्य xylene १४३
कांच-उर्णा glass wool १९५
काश्रिता optical activity २०४
किण्व yeast ९२
किण्वन fermentation ९२
किण्वेद zymase ९४
किण्वक wort ९६
किळटिशृंग galalith १४४
कूपी bottle २९
केश. capillary १९
खदिरव catechol २५६
खंडधु sucrose २१९
गन्त्र engine ६६
गन्धदर्शेन्य thiophene २७२
गन्धैळ fusel oil ६७
गुटिका bead १३
गुटिकावंश Hempel's column १३
गोंद gum १
गोळीकोश cartridge २२६
घनादेव thrombase ९५
घृतिक butyric १६२
चकाशिनी luminous ६५
चक्रिक cyclic ५
चतु:नीर प्रोदीन्य tetra-chloromethane ११८
चाक्षुष optical २००
चीनमृत्स्ना porcelain ८
चूर्णातु calcium २८
चूषितकूपी aspirator bottle २९
चंचुकी beaker ११
छदवक mycoderma aceti ९६
जनंगिवरता spermaceti १८१
जम्बुवभ्रळ iodoform ११७
जम्बुधु iodal ११७
जळमान hydrometer ९८
जाळी मल्लक guage cap १४
जार-अम्ल oxyacid १३०
जार-शुक्लेन्य oxy-acetylene
जीव-चूर्णक quick-lime ८२
जीव-बळ vis vitalis २
जीवाणुघ्न sterilisation १४४

मधुजारल	glyoxal	१३३
मधुतिग्मिक	glyoxalic	१३२
मधुम	glucose	३८
मधुरल	glyceryl	१८०
मधुरव	glycerol	११, १८४
मधुरी	glycerine	१८४
मधुरेय	glyceride	१८५
मधुव	glycol	१३२
मधुविक	glycollic	१३२
मधुसिक्थल	myricyl	१८१
मध्य-न्यावशिक	meso tartaric	२०९
मण्ड	starch	१, २२३
महातु	platinum	२५
मंजीठ	magenta	१४१
मात्रिक	empirical	३८
मार्त्तैल	petrol	६७
मार्त्तैली	vaseline	६७
मातृतरल	mother liquor	८
मिथुन	couple	२४६
मिश्रित	mixed	११
मिह	urea	३, १९०
मूल	radicle	५२
मूषा	crucible	२६
मृत्तैल	petroleum	६५
म्राक्षि	olein	१८०
म्राक्षीय	oleate	१८०
म्लेच्छी	caffeine	२७२

यव	barley	९६
यवशर्करा	malt sugar	९४
यव्य	maltase	९५
यव्येद	malt	६४
यविरा	beer	९६
युविक	pyruvic	२००
रजत	silver	२५
रन्ध्री	porous	८
रसायन	chemistry	१
—अप्रांगार	inorganic	१
—औद्योगिक	industrial	१
—कृषि	agriculture	१
—जीव	Bio-	१
—प्रांगारिक	organic	१
—भौतिक	physical	१
—विद्युत्	electro-	१
—वैश्लेषिक	analytical	१
रसायनज्ञ	chemist	२
रूपक	nickel	२६
रज्जुस्फोट	cordite	१६६
रक्त-लोहित	pink	१९६
रंज शार्कर	caramel	२२१
लवणजन	halogen	२५
लवणीय	halide	२५
लाघुणल	allyl	१८६
लाक्षी	lacquer	८४
लेपी	paint	१८१
वकभांड	retort	२०

सरूप isomorphous १०
साधित्र apparatus १६
सान्द्रीभवनांक solidifying point ४४
सिक्थ wax ५, ६७
सिक्थिक cerotic १८१
सिक्थवर्त्ती candle ६७, १८२
सीसांकनी lead pencil २०
सुविजावि aldoxime ११७
सुव्युद aldehyde ११४
सुषव alcohol २
सुषवमिति alcoholmetry ६८
सुषवोद proof spirit ६८
सृष्ट product ३३
स्तम्भ stand २६
स्थाम stand २६
स्थूल coarse २६
स्नेह fat १
स्नैहिक fatty, aliphatic
स्फट तूल gun cotton २१४
स्फुरणांक flash point ६७
स्फटन crystallisation ४।७ ५, १५०
स्वफेन soap २
स्वफेनकरण saponification १८२
सं symmetrical ७४
संकलन addition ७२
संकेन्द्रित concentrated ११
संघटक constituent ६०
संघनक condenser १५
संधर clamp १०
संपरीक्षा experiment १०
संमुद्रित sealed ३५
संयुज valent ५०
संयुजता valency ५०
संयुतमूल compound radicle ५२
संयोग compound २
संयोजन combination २
संवर्णीय molybdate २७
संस्थापना constitution ४
संक्षारक corrosive १५२
संक्षेत्र prism २०४
शकर sugar १
शराव dish
शर्कराक saccharomyces
शलाका rod १३
शल्किक tannic १४४
श्यानांक freezing point ५३
श्यानेक्षीय cryoscopic ३६
श्यामीय cyanate ३
शिखिपिधा stopcock १२
श्वताभ albuminoid २१०
श्लिषि glue
श्लिष्टिभूत gelatinised २२६